ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला-हिन्दी ग्रन्थाङ्क ४५

संस्कृत साहित्यमें आयुर्वेद

लेखक
श्री अत्रिदेव विद्यालंकार

•

भूमिका लेखक
डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी डी. लिट.

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

भूमिका

संस्कृतका साहित्य बहुत ही महान् है। सहस्रों वर्षोंसे कवियोंने अनेक शास्त्रोंका मंथन करके, प्रकृतिकी शोभाका छककर पान करके और मानव-हृदयकी अतल गहराईमें डुबकी लगाकर विचित्र कल्प-लोकका निर्माण किया है। इस देशका नक्षत्र-तारा-खचित नीलाकाश, नदी-निर्झरों और तालोंसे भरे हुए पर्वत और मैदान तथा वृक्ष, लता और तृण-शाद्वलोंसे श्यामायमान वन-भूमि कवियोंके चित्तमें मादक उल्लासका संचार करती रही हैं। सदा मनुष्य के राग-विह्वल हृदयमें स्नान करके निकलनेके कारण बाह्य प्रकृतिकी शोभा भारतीय काव्योंमें नित्य-नवीन रूपमें निखरती रही है। वह उद्दीपनके रूपमें मनुष्यके हृदयमें राग-विरागको उत्तेजित करती रही है, अन्योक्तियोंके आवरण में स्वाभिमान और विवेकका मार्ग बताती रही है और स्वभावोक्तिके रूपमें प्रकृतिको मानव-चित्तमें प्रत्यक्ष रूपसे और गम्भीर भावसे प्रभावित करती रही है। प्रत्येक कविके चित्त-गङ्गामें स्नान करनेके बाद उसकी कान्ति नई शोभाके रूपमें निखरी है, मानो **"प्रत्यग्रमज्जनविशेषविविक्तकान्तिः"** कोई अनुरागवती प्रिया हो। संस्कृत कविके उल्लास-मुखर चित्तमें जो शास्त्राभ्यासका संस्कार होता है वह इस शोभामें नवीन आभरणोंकी योजना करता है। इसलिए संस्कृत कविताके प्रेमीको कविताके कल्प लोकमें विभिन्न शास्त्रों की सुचिंतित विचार-धाराके दर्शन हो जाते हैं। ये शास्त्रीय विचार काव्य का मुख्य प्रतिपाद्य नहीं होते, परन्तु उसकी विवेचनाके विना संस्कृत काव्य की शोभा ठीक ठीक हृदयङ्गमा भी नहीं हो पाती। यही कारण है कि विभिन्न शास्त्रोंके प्रेमी इन काव्योंसे तत्तद् शास्त्रोंकी गम्भीर चिन्तनप्रणाली का आनन्द भी घलुएमें पाते रहते हैं। इतिहास, पुरातत्त्व, ज्योतिष, भूगोल, मूर्तिकला, चित्रकला, सौंदर्य-विज्ञान, मनस्तत्त्व, अध्यात्म, दर्शन आदि

भिन्न-भिन्न विषयोंकी शास्त्रीय दृष्टियोंसे इन काव्योंका रसास्वादन किया गया है। मेरे मित्र श्री अत्रिदेवजीने आयुर्वेदकी दृष्टिसे इन काव्योंका बड़ा सुन्दर अध्ययन प्रस्तुत किया है। इस पुस्तकके पाठकोंको ज्ञात होगा, कि प्रचलित आयुर्विज्ञान, स्वास्थ्य-विज्ञान और भेषज-विज्ञानकी कैसी सूक्ष्म जानकारी संस्कृत कवियोंकी रचनाओंमें उपलब्ध होती है।

मेरा विश्वास है कि संस्कृतके पुराने काव्योंके अध्ययनसे आयुर्वेदकी उन वनस्पतियोंके निर्णयमें कुछ सहायता मिल सकती है जिनके विषयमें आजके वैद्योंमें मतभेद है। इसी तरह आयुर्वेदीय निघंटुओंके अध्ययनसे संस्कृत काव्योंमें उल्लिखित और परवर्ती टीकाओंमें "वृक्षविशेषः" कह कर व्याख्यात तरु-लताओंकी जानकारी ठीक-ठीक हो सकती है। बहुत बार संस्कृत काव्योंमें उल्लिखित तरु-वल्लरियोंकी प्रकृति ठीक-ठीक न पहचाननेके कारण हम काव्यकी शोभाका अनुभव ही नहीं कर पाते। जिसने शिरीष-पुष्पको नहीं देखा उसका हृदय **"कृतं न कर्णार्पितमण्डनं सखे, शिरीषमामण्डविलम्बिकेशरं"** कहकर शकुन्तलाके चित्रको अपूर्ण समझनेवाले दुष्यन्तकी मनोदशाको कैसे समझ सकता है? इसीलिए मेरे विचारसे पुराने काव्योंके अध्ययनके लिए पुराने शास्त्रोंकी जानकारी आवश्यक है। अत्रिदेव जीने एक नवीन मार्गका उद्घाटन किया है। मेरा विश्वास है कि संस्कृत साहित्यके पारखी सहृदयोंको यह प्रयत्न आनन्ददायक सिद्ध होगा। अत्रि-देवजी आयुर्वेद साहित्यके शोधक विद्वान् हैं, उनकी लेखनीसे इस विषयका सुन्दर विवेचन हुआ है, इसमें कोई सन्देह नहीं। भगवान्से प्रार्थना है कि उनको दीर्घायुष्य और सुन्दर स्वास्थ्य देकर अधिकाधिक साहित्य-सेवाका अवसर प्रदान करे। तथास्तु।

काशी
६–३–५६

—हजारीप्रसाद द्विवेदी

दो शब्द

अपना काव्य सम्पूर्ण बनानेके लिए कविको अपने व्यापक ज्ञानका उपयोग करना पड़ता है। ऐसा कोई शब्द नहीं, ऐसा कोई अर्थ नहीं, ऐसा कोई न्याय नहीं और ऐसी कोई कला भी नहीं, जो कि काव्यका अंग न बने, इसलिए कविके सिरपर बहुत बोझ होता है। यथा—

न स शब्दो न तद्वाच्यं न स न्यायो न सा कला।
जायते यन्न काव्याङ्गमहो भारो महान् कवेः॥

भाषा चाहे जो हो, कविको सब विद्याओं और कलाओंकी जानकारी होना ज़रूरी है। संस्कृत साहित्यके कवियोंकी यही विशेषता रही कि उनका ज्ञान सर्वतोन्मुखी था—कोई भी विषय उनकी प्रतिभासे नहीं बचा था। इसीसे उनकी रचनामें ज्योतिष, आयुर्वेद, पुराण, इतिहास सबका उल्लेख मिलता है।

हिन्दीके प्राचीन कवियोंकी रचनामें भी इसी प्रकारका व्यापक ज्ञान मिलता है; उदाहरणके लिए विहारीसतसई तथा पद्मावतमेंसे आयुर्वेदका एक एक उदाहरण यहाँ उपस्थित किया है—

यह बिनसत नख राखि कै जगत बड़ो जस लेहु।
जरी विषम जुर ज्याईये आय सुदर्शन देहु॥

—विहारी सतसई–३००

इसमें विषम ज्वरके लिए आयुर्वेदके प्रसिद्ध सुदर्शन चूर्णका उल्लेख स्पष्ट रूपमें है।

पार न पाव जो गन्धक पिया, सो हरतार कहो किमि जिया।
सिद्ध गोटिका जापहँ नाहीं, कौनु धातु पूँछहुँ ते पाँही॥

—पद्मावत २९४

इसमें आयुर्वेदके रसशास्त्रका उल्लेख स्पष्ट दीखता है।

प्रस्तुत पुस्तकमें 'संस्कृत साहित्यमें वनस्पतियाँ' यह शीर्षक श्री बापालाल भाईकी उदारतासे दी गई स्वीकृतिके रूपमें उनकी पुस्तकके आधारपर

लिया है। वैसे यह स्वतन्त्र एक निबन्ध-पुस्तकका विषय है। यदि समय मिला तो शीघ्र ही पाठकोंके हाथमें इसे पुस्तक रूपमें देनेका प्रयत्न करूँगा।

पुस्तकके संकलनमें प्रेरणा तथा सहायता एवं प्रकाशनमें सहयोग देनेवाले विद्वानों एवं मित्रोंका आभार मानना मैं अपना सुखद कर्त्तव्य मानता हूँ। पुस्तकके रूपमें इन विचारोंको गुम्फित करनेकी सूझ डाक्टर श्री वासुदेव-शरणजी अग्रवालसे मिली थी। इसमें उन्होंने अपनी पुस्तक-सामग्रीका उपयोग स्वच्छन्द रूपमें करनेकी सुविधा दे दी थी। पुस्तकके संकलनको डाक्टर श्री राजबलीजी पाण्डेय एवं डाक्टर श्री हजारीप्रसादजी द्विवेदीने देखा और सुना—साथ ही इसके प्रकाशनके लिए उत्साहित किया। श्री द्विवेदीजीने मेरी प्रार्थनापर इसके लिए प्रारम्भिक शब्द लिखकर मुझे विशेष अनुगृहीत किया।

प्रकाशनकी समस्याको भारतीय ज्ञानपीठके लोकोदय ग्रन्थमालाके सम्पादक श्री लक्ष्मीचन्द्रजी जैन एम० ए० ने सुलझा दिया। आप स्वयं हिन्दी और संस्कृतके अच्छे विद्वान् हैं। पुस्तककी भाषाको सुसंस्कृत बनानेमें श्रीमान् लक्ष्मीशंकरजी व्यास एम० ए० ने पर्याप्त मात्रामें सहायता दी है जिससे हम उनके प्रति आभार मानते हैं।

अन्तमें सब कवियोंके प्रति अपनी श्रद्धा-भक्तिके पुष्प चढ़ाना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ जिनकी अमर रचनाओंमेंसे आयुर्वेदके शाश्वत फूल चुन चुनकर यह अनश्वर माला गूँथी है। इस मालाको आयुर्वेदके सच्चे विद्वानोंके गलेमें पहिनानेमें यदि मैं सफल हो सका तो मैं अपने इस श्रमको सार्थक मानूँगा। संस्कृतके प्रसिद्ध कवि भवभूतिने उत्तररामचरितमें कहा है कि—

सर्वथा व्यवहर्त्तव्ये कुतो ह्यवचनीयता।
यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः॥

—अत्रिदेव

विषय-सूची

संस्कृत साहित्यमें आयुर्वेद

संस्कृत साहित्यमें वनस्पतियाँ

आयुर्वेद साहित्यमें काव्य

संस्कृत साहित्यमें आयुर्वेद

विषय-प्रवेश

संस्कृतका एक प्रसिद्ध आभाणक है कि **कवयः क्रान्तदर्शिनः**—कवि लोग क्रान्तदर्शी होते हैं; जिस वस्तुको सामान्य लोग नहीं देख सकते, कवियोंकी दृष्टि उसके भी आगे पहुँच जाती है; इसीसे हिन्दीमें प्रसिद्ध हो गया कि **जहाँ न जाए रवि वहाँ जाए कवि**। कवि सूक्ष्मसे सूक्ष्म और स्थूलसे स्थूल वस्तुका सजीव चित्रण अपनी वाणीसे उपस्थित कर देता है। जिस मोक्षका दर्शन सामान्य जनके लिए असम्भव है, कवि उसको भी अपनी वाणीसे आँखोंके सामने उपस्थित कर देता है। इसीसे उसे भूत, भविष्य, वर्त्तमान—तीनों कालोंका ज्ञाता कहते हैं।

कविके बनाये काव्यमें संसारकी सब वस्तुओंकी झाँकी मिल जाती है। ईश्वरको भी कविके रूपमें कहा गया है [**कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः**]। वेद उसका काव्य है, जो कि कभी नहीं मरता और न कभी जीर्ण-शीर्ण होता है [**पश्य देवस्य काव्यं यो न ममार न जीर्यति**]। इसी तरह कालिदास आदि कवियोंके बनाये काव्योंमें संसारमें घटनेवाली सब घटनाओंकी समीक्षा, उनकी जानकारी मिलती है। व्यास ऋषिके बनाये महाभारतमें धर्म, अर्थ, कामके सम्बन्धमें सम्पूर्ण जानकारी आ गई है; ऋषिका कहना है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके सम्बन्धमें इससे बाहर कुछ बचा ही नहीं, जो कि बहुत अंशोंमें सत्य भी है।

इसी प्रकार कवि कालिदासके काव्योंमें भूगोल, इतिहास, पुराण, ज्योतिष, आयुर्वेद, राजनीति आदि सब बातोंका उल्लेख मिल जाता है। इसीसे कविकी रचना—नाटक—के सम्बन्धमें कहा जाता है कि—

न तच्छास्त्रं न सा विद्या न तच्छिल्पं न ताः कलाः।
नासौ योगो न तज्ज्ञानं नाटके यन्न दृश्यते॥—नाट्यशास्त्र

ऐसा कोई शास्त्र नहीं; ऐसी कोई विद्या नहीं; ऐसा कोई शिल्प नहीं, ऐसी कोई कला नहीं, ऐसा कोई योग नहीं, ऐसा कोई ज्ञान नहीं, जो नाटकमें न दीखता हो, जिसकी झाँकी नाटकमें नहीं देखी जाती। इसीसे नाटकोंमें, काव्योंमें अन्य वस्तुओंके साथ-साथ आयुर्वेदसे सम्बन्धित वचन भी मिलते हैं। कुछ वचन तो ऐसे हैं जो कि समान रूपसे सर्वत्र ही एक ही रूपमें आये हैं; यथा—घोड़ोंके साथ बन्दरोंकी उपस्थिति, घुड़सालमें बन्दर रखना, सेनाके घोड़ोंके साथ बन्दरोंका जाना; इसका उल्लेख, रत्नावली, मृच्छकटिक, कादम्बरीमें तथा अन्य स्थानोंपर आता है। इसी आधारपर जायसीका यह वचन **तुरग रोग हरि माथे जाये** है। इसीको और अधिक विस्ताररूपसे पञ्चतन्त्रकी एक कथामें स्पष्ट किया है कि शालिहोत्रने बताया है कि घोड़ोंके जलनेके उपचारमें बन्दरोंकी वसा बहुत लाभप्रद है[1]। इसलिए तथा अन्य दूसरे कारणोंसे यह प्रसिद्धि संस्कृत काव्योंमें बराबर मिलती है कि मन्दुरा [घुड़साल] में बन्दर रखने चाहिएँ। इसी प्रकारसे अन्य वचन भी संस्कृत काव्योंमें आते हैं। इन वचनोंसे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि इन काव्योंके रचयिता कविलोग आयुर्वेदके विद्वान् थे, अपितु इतना ज़रूर कहा जा सकता है कि आयुर्वेद-चिकित्सा-सम्बन्धी ये विचार जन-सामान्यमें प्रचलित थे।

सामान्यतः कवि कालिदासका जितना साहित्य हमको मिलता है, उतना साहित्य किसी एक कविका नहीं उपलब्ध है। भारवि और माघका तो एक-ही-एक काव्य प्राप्त है; श्रीहर्षका भी मात्र नैषध काव्य मिलता है। इसलिए कालिदासके ग्रन्थोंमें इस प्रकारके वचनोंका अत्यधिक रूपमें मिलना स्वाभाविक ही है। दूसरे कवियोंकी रचनामें भी इस प्रकारके वचन कहीं न कहीं मिल ही जाते हैं। इसी प्रकारके वचनोंको इस पुस्तकमें संग्रह करनेका यत्न किया है। साथ ही इस पुस्तकके लिखनेका एक उद्देश्य यह भी

---

१. अपरीक्षितकारकमें चन्द्र नाम राजाकी कथा—कपीनां मेदसा दोषो वह्निदाहसमुद्भवः। अश्वानां नाशमभ्येति तमः सूर्योदये यथा॥'

है कि इसके द्वारा आयुर्वेदमें खोज-कार्य भी हो सके। मेरी अपनी यह मान्यता है कि आयुर्वेदमें खोज या गवेषणा-कार्य इतिहास या प्राचीन संस्कृतिकी खोजके ढंगपर ही करना चाहिए; यही एक रास्ता सरल और निरापद है। इस पद्धतिमें भिन्न-भिन्न स्थानों पर मिलनेवाले अवशेषोंको, उसके आस-पास मिलनेवाली सामग्रीको, वहाँकी दन्तकथाओं तथा किंवदन्तियोंको एकत्रित करके, उनका सूत्र पकड़ते हुए एक लक्ष्य या एक निष्कर्ष पर पहुँचनेका यत्न किया जा सकता है। इससे वस्तु या सचाईका पता सही-सही रूपमें प्रायः चल जाता है!

यही बात आयुर्वेदके साथ भी है। उदाहरणके लिए-कादम्बरीमें आया सूतिका-गृहका वर्णन चरक संहिताके सूतिका-गृहके वर्णनसे बहुत कुछ मिलता है; चरक संहितामें आये उत्तम शकुनोंकी सूचीमें वर्धमानका नाम आना और कादम्बरीमें वर्धमानकी पंक्तियोंका उल्लेख, और आज देहातोंमें दर्वाजोंपर वर्धमान [शरावों] का टँगा होना एक ही वस्तु, एक ही संस्कृति, एक ही उद्देश्यको सूचित करते हैं। इसीप्रकार चैत्र मासमें नीमकी कोपलोंको खानेका उल्लेख नैषधमें तथा धर्म-शास्त्रमें मिलनेके साथ-साथ लोकमें भी यह प्रथा आज भी जीवित रूपमें दीखती है; इसलिए इस संस्कृति या प्रथाका महत्त्व ज़रूर होगा या है[1]। इस महत्त्वकी जाँच आज की जानी चाहिए; क्योंकि यह प्रथा प्राचीन समयमें इतनी अधिक जन-साधारणमें प्रचलित थी, जिसके कारण श्रीहर्ष जैसे कविको अपने काव्यमें इसका उल्लेख करना सरल हुआ।

इसी प्रकारके लोक-प्रचलित जन-सामान्यमें आनेवाले रीति-रिवाजोंका जो उल्लेख संस्कृत-काव्योंमें मुझे मिला वह मैंने इसमें संग्रह करनेका यत्न किया है। संस्कृत-काव्योंका साहित्य बहुत विस्तृत, अगाध और अपरिमित है; सारेको पढ़ना, देखना, आलोडन करना सामान्य गृहस्थ मुझ-जैसे व्यक्ति

१. देखिये—'चरक संहिताका अनुशीलन' पृष्ठ ६२ पर तथा 'क्लिनि-कल मैडिसिन' में पृष्ठ १०७४ पर।

की शक्तिसे बाहरकी वस्तु है; इसपर मार्ग भी बिलकुल नया है। कवि कालिदासके लिए तो वाल्मीकिने तथा दूसरे कवियोंने मणियोंमें छेद बना दिये थे—जिससे सूत्र रूपसे घुसनेका रास्ता उनको मिल गया था। मेरे लिए तो ऐसी कोई बत्ती या प्रकाश भी नहीं, जिसकी ओर दृष्टि रखकर मैं चलूँ, रास्ता बिलकुल नया और अपरिचित है; संस्कृत साहित्य एक अपार समुद्र या बीहड़ जंगल है, उसमें रास्ता ढूँढ़ निकालना सरल नहीं, फिर भी अपने सीमित साधन और सामग्रीके सहारे अपनी शक्तिके द्वारा चलनेका यत्न कर रहा हूँ। यद्यपि स्पष्ट रूपमें इस प्रकारका श्रम किसी पण्डितका मेरे देखनेमें नहीं आया, तथापि दूसरी दृष्टियोंसे संस्कृतके काव्योंमें कार्य हुआ है; जिनको पढ़नेसे ही मेरे मनमें इस प्रकारका कार्य करनेकी इच्छा हुई है।[1] आयुर्वेदका अपना प्राचीन साहित्य जो आज हमको प्रकाशित रूपमें मिलता है, वह बहुत थोड़ा है। चरक संहिता सबसे प्राचीन पुस्तक है; फिर सुश्रुत संहिता है; अष्टाङ्गसंग्रह और अष्टाङ्गहृदय तो कुशाण-काल या गुप्त-कालके हैं। 'नावनीतक' जो कि 'बावर पाण्डुलिपि' के नामसे प्रचलित है, वह भी इसी समयके लगभगका है, रसशास्त्रका विषय तो ग्यारहवीं, बारहवीं शताब्दीका है। ऐसी अवस्थामें इतने थोड़े आयुर्वेद साहित्यके ज्ञान के आधार पर ही इस पुस्तिकाका कलेवर खड़ा करना पड़ा है।

साहित्यमें आयुर्वेद

सामान्यतः कवियोंमें कालिदासका स्थान सबसे ऊँचा माना जाता है; कालिदासकी रचनाएँ भी भाग्यसे सभी उपलब्ध हैं। आदिकवि वाल्मीकि के रामायणमें और भगवान् व्यासके बनाये महाभारतमें भी आयुर्वेदके के वचन मिलते हैं। महाभारतमें भीष्मके शरशय्या पर पड़े रहनेपर शल्य-

---

१ ऐसी पुस्तकोंमें—डाक्टर वासुदेवशरणजी अग्रवालका लिखा 'हर्षचरितका सांस्कृतिक अध्ययन', डाक्टर मोतीचन्दका लिखा 'सार्थवाह' एवं श्रीभगवतशरण उपाध्यायका लिखा 'कालिदासका भारत' मुख्य हैं।

चिकित्सकों [**शल्योद्धरणकोविदः**] का उनके पास पहुँचनेका जहाँ हमको उल्लेख मिलता है, वहाँ कृष्णात्रेयका नाम चिकित्सकके रूपमें तथा गन्धमादनका नाम ओषधियोंके सम्बन्धमें भी मिलता है। वेद और उपनिषदोंमें भी आयुर्वेदके वचन ढूँढ़े जा सकते हैं; परन्तु इस प्रसंगमें मैंने उन सबको छोड़ दिया है; क्योंकि **आयुर्वेदका इतिहास** [हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा प्रकाशित] पुस्तकमें इनकी चर्चा कर चुका हूँ। इसलिए इस पुस्तकमें मैंने दूसरे कवियोंके साहित्यमें से आयुर्वेदके वचन चुननेका यत्न किया है। इसमें भी **नभः पतन्त्यात्मसमं पतत्रिणः** इस न्यायके अनुसार ही काम किया है।

पाणिनि

पाणिनिका समय सन्दिग्ध है; यूरोपीय विद्वान् इनका समय ईसासे चौथी सदी पूर्व मानते हैं; परन्तु दूसरे विद्वान् [डाक्टर भाण्डारकर आदि] पाणिनिको बुद्धसे पहिले मानते हैं; और इनका समय ईसासे ७०० वर्ष पूर्व स्वीकार करते हैं।

पाणिनिके लिए महाभाष्यमें दाक्षिपुत्र नाम आता है, दूसरा नाम शालातुरीय आया है; इससे स्पष्ट है कि इनकी माताका नाम दाक्षि था और जन्मस्थानका नाम शालातुर [वर्त्तमानकालका लाहुर-पेशावरके आसपास छोटा गाँव] था। पाणिनिका अध्ययन तक्षशिलामें हुआ था। पाणिनिने पाटलिपुत्र में भी उपाध्याय वर्षसे विद्याध्ययन किया था। परन्तु मन्दबुद्धि होनेसे वहाँ से छोड़कर अन्यत्र अध्ययन किया था। पीछेसे पाटलिपुत्रमें आकर वररुचि-जो कि सहाध्यायी था, उसे परास्त किया। पाणिनिके पाटलिपुत्रमें होनेके सम्बन्धमें राजशेखरने लिखा है कि पाटलिपुत्रमें पाणिनिकी परीक्षा ली गई और उसमें उत्तीर्ण होनेपर उनकी ख्याति चारों ओर फैल गई। पञ्चतन्त्रमें उल्लेख है कि पाणिनिकी मृत्यु सिंहके द्वारा हुई।

पाणिनिका व्याकरण तो प्रसिद्ध है; उनके नामसे पातालविजय या जाम्बवतीजय काव्य भी कहा जाता है। यहाँ पर जो भी आयुर्वेदके वचन उद्धृत हैं वे सब अष्टाध्यायीके सूत्रोंके उदाहरण रूप ही हैं।[2]

रोगोंके नाम—उपताप [७।३।६१], **उपतापो रोगः**; रोग और स्पर्श

---

१. **अत्रोपवर्षवर्षाविह पाणिनिपिङ्गलाविह व्याडिः।**
वररुचिपतञ्जली इह परीक्षिताः ख्यातिमुपजग्मुः॥—काव्यमीमांसा।

२. **ये सब उदाहरण** India as known to Panini—**डॉ० वासुदेवशरण अग्रवालकी पुस्तकसे हैं।**

[३।३।१६] **रुजत्यसौ रोगः; स्पृशतीति स्पर्श उपतापः।** सम्भवतः स्पर्श उन रोगोंके लिए आता हो जो कि छूतके द्वारा फैलते हैं : जिनको सुश्रुतमें औपसर्गिक रोग कहा है [**औपसर्गिकरोगांश्च संक्रमन्ति नरान्नरम्**]।रोगका नाम गद है; इसलिए रोगको दूर करनेवालेको— चिकित्सकको—'अगदङ्कार' कहते हैं [६।३।७०] इस सूत्रपर वार्त्तिक है—**अस्तुसत्यागदस्य कार इति वक्तव्यम्।**

वनस्पतिके लिए ओषधि तथा तैय्यार की हुई दवाईके लिए औषध शब्द दिया है [५।४।३७] **औषधं पिबति। औषधं ददाति। अजाताविति किम्? ओषधयः क्षेत्रे रूढा भवन्ति।** [काश्यप संहितामें इसे अन्य रूपमें कहा है, यथा—**औषधं द्रव्यसंयोगं ब्रुवते दीपनादिकम्। हुतव्रततपो दानं शान्ति-कर्म च भेषजम्॥ औषधभेषजेन्द्रियाध्यायः**]।

चिकित्साके अर्थमें अपनयन शब्द आता है [५।४।४९] **रोगो व्याधिः अपनयनं प्रतीकारः चिकित्सेत्यर्थः।** इसीलिए **प्रवाहिकातः कुरु; छर्दि-कातः कुरु** का अर्थ है–प्रवाहिकाकी चिकित्सा करो; छर्दिकी चिकित्सा करो।

दोषोंके नाम—पाणिनिके सूत्र **तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ** [५।१।३८] पर कात्यायनका एक वार्तिक है—**तस्य निमित्तकरणे वात-पित्तश्लेष्मेभ्यः शमनकोपनयोरुपसंख्यानम्।** इससे **वातस्य शमनं कोपनं वा, वातिकम्, पैत्तिकम्, श्लैष्मिकम्** ये रूप बनते हैं। दूसरा वार्तिक है—**सन्निपाताच्चेति वक्तव्यम्।** इससे **सान्निपातिकम्** शब्द बनता है।

रोगोंके नाम—रोग कहनेकी अपेक्षामें इक् प्रत्यय करनेसे [३।३।१०८] प्रवाहिका, प्रच्छर्दिका, विचर्चिका शब्द बनते हैं। वात और अतिसार शब्द से इन् प्रत्यय करनेपर [५।२।१२९] 'वातकी' 'अतिसारकी' रूप बनते हैं। उपताप-रोग; रोगके नामके साथ इनि प्रत्यय होने पर [५।२।१२८] कुष्ठी, किलासी शब्द बन जाते हैं।

ऋतुसम्बन्धी रोग—रोग और आतपके अर्थमें शरद् शब्दके साथ 'ठञ्' प्रत्यय होनेसे [४।२।१३] **शारदिको रोगः, शारदो रोगः** ये दो रूप बनते हैं, अन्यत्र शारदं इस तरह रूप बनेगा।

[1]**क्षेत्रीय रोग**—असाध्य और अप्रत्याख्येय रोगके लिए पाणिनिने क्षेत्रीय शब्दका प्रयोग किया है [५।२।९२]। सामान्यतः क्षेत्रीय शब्दसे कुलज [Hereditary] रोग लिये जाते हैं—जिन रोगोंकी इस शरीरमें चिकित्सा न की जा सके, परन्तु दूसरे शरीरमें चिकित्सा की जाये। काशिकाकारने परक्षेत्रका अर्थ जन्मान्तरशरीर किया है; इसमें क्षेत्रीय रोगका उदाहरण कुष्ठ दिया है। सुश्रुतमें कुष्ठ रोग असाध्य माना है; यदि मनुष्य कुष्ठ रोगसे मरता है, तो अगले जन्ममें भी कुष्ठ रोग लेकर उत्पन्न होता है [नि० ५।३०]। मेरी दृष्टिमें परक्षेत्रका अर्थ दूसरा व्यक्ति है; अर्थात् दूसरे स्वस्थ व्यक्तिके संसर्गमें आनेसे रोगी व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है, और स्वस्थ व्यक्ति रुग्ण हो जाता है। सामान्य जनतामें यह मान्यता है कि गोनोरिया [सुजाक] से पीड़ित व्यक्ति यदि स्वस्थ स्त्रीके संपर्कमें आता है, तो उसका रोग उस स्त्रीमें चला जाता है, और वह स्वस्थ हो जाता है; वह तो वास्तवमें स्वस्थ नहीं होता; परन्तु स्त्री जरूर संक्रमित-रुग्ण हो जाती है। स्त्रीके रुग्ण होनेसे यह भावना हो जाती है कि उसका रोग स्त्रीमें आ गया है। [2]दूसरा अर्थ असाध्य अर्थमें भी हो सकता है—जैसे कहा जाता है कि इस जन्ममें तो यह असाध्य है, अगले जन्ममें अच्छा भले हो—जैसे दमेके लिए।

शरीरके अंगोंके नाम—प्रपद [५।२।८]; जानु [५।२।१२९]; ऊरु [५।४।७७]; सक्थि [५।४।११३]; स्फिक् [६।२।१८७]; उदर, नाभि; कुक्षि, बाहु, उर, पर्शु [६।२।१७७]; मन्या [३।२।६६]; कर्ण, नासिका;

---

१. **प्लेग, इन्फ्लुयञ्जा या कौलरा रोग प्रारम्भमें जितने भयानक रूपमें मारक रहते हैं, अपने पीछेके कालमें उतने मारक नहीं रहते, इसी प्रकार चेचकमें भी उत्तरोत्तर तीव्रता घटती जाती है; पहलेके रोगी प्रायः मरते हैं; और पीछेके प्रायः बचते हैं; सम्भवतः इनको क्षेत्रीय कहा हो।**

२. **अप्रत्याख्येयके स्थानपर प्रत्याख्येय पाठ माननेसे कुलज रोगोंके लिए असाध्य जो वचन चरकमें कहा है, वह संगत हो जाता है; यथा—**

ये चापि केचित् कुलजा विकारा भवन्ति तांश्च प्रवदन्त्यसाध्यान् ॥

अक्षिभ्रु [५।४।७७]; मुख [६।२।१६७]; दन्त, जिह्वा, ललाट, मूर्धा, शीर्ष, अस्थि, नाड़ी, तंत्री [५।४।१५६]; हृदय-हृत् [६।३।१५०]; यकृत [६।१।१६३]; केश-लोम-नख, त्वचा, वस्ति [६।३।५६] आदि शब्द आते हैं।

रोगोंके नाम भी बड़ी मात्रामें मिलते हैं; यथा—अतिसार [५।२।१२९;] अर्श [५।२।१२७]; आस्राव [३।१।१४१]; कुष्ठ [८।३।९७]; न्युब्ज [७।३।६१]; पामा [५।२।१००]; सिध्म [५।२।९७]; स्पर्श [३।३।१६]; हृद् रोग [६।३।६१]।

भास

मालविकाग्निमित्रकी प्रस्तावनामें सूत्रधारके मुखसे पुछवाना कि "प्रख्यात कीर्त्तिवाले भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि कवियोंके प्रबन्धोंको छोड़कर कालिदासकी कृतिका इतना आदर क्यों हो रहा है?'—कुछ अर्थ रखता है। इस प्रश्नसे अच्छी तरह मालूम पड़ता है कि कालिदासके समय में भासके नाटकोंका अतिशय आदर था। कालिदासके पीछेके कवियोंने भी भासके नाटकोंका बहुत आदर किया। बाणभट्टका कहना है कि भासने सूत्रधारसे प्रारम्भ किये गये, बहुत-सी भूमिकावाले तथा पताकासे सुशोभित मन्दिरोंके समान अपने नाटकोंसे खूब हीं यश पाया। राजशेखरने भी भासके नाटकोंकी अग्निपरीक्षा तथा स्वप्नवासवदत्ताके न जलनेकी बात लिखी है[1]। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन कालमें भासके नाटकोंकी अच्छी प्रसिद्धि थी।

सन् १९१२ में महामहोपाध्याय गणपति शास्त्रीने स्वप्नवासवदत्ता आदि तेरह नाटकोंको भासकृत मानकर प्रकाशित किया है। परन्तु दूसरे विद्वान् केवल स्वप्नवासवदत्ताको ही भास कृत मानते हैं; क्योंकि अभिनवगुप्तने अपनी अभिनव भारतीमें इसी रूपकका उल्लेख किया है। कुछ विद्वान् इन नाटकोंके कतिपय अंशको भासका मानते हैं, शेषको किसी केरलके विद्वान्‌की पूर्ति समझते हैं।

---

[1]प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्त्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः? —मालविकाग्निमित्र

सूत्रधारकृतारम्भैः नाटकैः बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव॥ —हर्षचरित

भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥ —राजशेखर

समय—श्रीगणपति शास्त्रीने भासको चाणक्य और पाणिनिसे भी प्राचीन सिद्ध करनेका यत्न किया है। शूरोंको उत्साहित करनेके लिए चाणक्यने **अपीह श्लोकौ भवतः** लिखकर जिन श्लोकोंको प्रमाण कोटिमें रक्खा है, उनमेंसे एक श्लोक प्रतिमा नाटकमें पाया जाता है[1]। प्रतिमा नाटकमें ही रावणने बार्हस्पत्य अर्थ-शास्त्रका उल्लेख किया, परन्तु चाणक्य के अर्थशास्त्रका उल्लेख नहीं किया[2]। क्योंकि सम्भवतः भासके समय तक चाणक्यका अर्थशास्त्र न हो। प्रयोगोंमें अपाणिनीयता भासको पाणिनिसे पहिले होना सिद्ध करती है। इन बातोंके आधारपर भासका समय कमसे कम ईसासे पूर्व पाँचवीं सदी माना गया है।

दूसरे विद्वान् इसको इतना प्राचीन नहीं मानते। वे भासको अश्वघोष और कालिदासके बीचमें रखते हैं। इन विद्वानोंकी सम्मतिमें अश्वघोष कालिदाससे पहिले हैं; बीचमें भास हुए। भासके नाटकोंमें उपलब्ध प्राकृत शब्दोंके रूप प्राकृत वैयाकरणोंकी सम्मतिमें अत्यन्त प्राचीन हैं। भासने अस्मिके अर्थमें ह्मिका, कालिदासने म्हिका प्रयोग किया है। 'हमारे' अर्थमें भासने अम्हअं तथा अम्हाणंका प्रयोग किया है, कालिदासने अम्हअंका ही प्रयोग किया है। इस तरहसे भासका समय तीसरी सदी मानते हैं; आज-कल यही मत मान्य है।

ग्रन्थ—प्रतिमा नाटक, अभिषेक नाटक, पञ्चरात्र, मध्यम व्यायोग, दूतघटोत्कच, कर्णभार, दूतवाक्य, ऊरुभङ्ग, बालचरित, चारुदत्त, अविमारक, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्ता।

चरित्र-चित्रणमें भासने अपनी नाटक-कलाको खूब निखारा है, भासके

---

१. **"नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।**
तत्तस्य मा भून्नरकं च गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्॥"

२. **भोः काश्यपगोत्रोऽस्मि। साङ्गोपाङ्गं वेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं माहेश्वरं योगशास्त्रं बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं मेधातिथेर्न्यायशास्त्रं प्राचेतसं श्राद्धकल्पं च॥**—प्रतिमानाटक।

नाटकोंका प्रारम्भ नान्दीसे न होकर सूत्रधारके द्वारा ही होता है। वाक्य छोटे परन्तु भाव भरे, कृत्रिमतासे दूर, कविता प्रशंसनीय है। भास मानव-हृदयके विकारोंके सच्चे पारखी हैं।

आयुर्वेद-वचन

शत्रुओंके लिए विषप्रयोग—सुश्रुतमें कहा है कि राजा लोग शत्रुके देशमें तृण-जल-मार्ग-अन्न-धूम-वायुको विषसे दूषित कर देते हैं; इनको इनके दूषित लक्षणोंसे पहिचानकर इनका शोधन करना चाहिए [सुश्रुत क० अ० ३।६]। सुश्रुतमें प्रत्येक वस्तुके विषसे दूषित होनेके लक्षण और चिकित्सा दी है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायणमें भासने यौगन्धरायण-द्वारा शत्रु-देशमें इन वस्तुओंको विषसे दूषित करनेका उल्लेख किया है; यथा—

यौगन्धरायणः—वसन्तक ! गच्छ भूयः स्वामिनं पश्य। विज्ञाप्यतां च स्वामी–या सा प्रयाणं प्रतीह प्रस्तुता कथा, तस्याः श्वः प्रयोगकाल इति। कुतः, **स्थानावगाहयवसशय्याभागेष्वाश्रयेषूपन्यस्तौषधिव्याजो नलागिरिर्मन्त्रौषधिनियमसम्भृतः पुराणकर्मव्यामोहितः। अनुकूलमारुत-भोक्तव्यः सज्जितो धूपः।** —प्रतिज्ञायौगन्धरायण–तृतीय अंक।

घृतसे पित्त नष्ट होता है—चरकमें पढ़ते हैं कि पित्तकी शान्तिके लिए घृत उत्तम है, [**तस्यावजयनम्—सर्पिष्पानम् सर्पिषा च स्नेहनम्—चरकः वि० अ० ६।१५**]।

अविमारक नाटकमें भी इसीको विदूषकके मुखसे कहलवाया है; यथा—

विदूषकः—नहि घृतवचनेन पित्तं नश्यति, मम हस्तगतं कुरु।

—अविमारक-पाँचवाँ अंक।

वातशोणित—[वातरक्त] के रोगीको किसी भी प्रकारसे शान्ति नहीं मिलती जैसा कि अत्रिपुत्रने कहा है—

करोति दुःखं तेष्वेव तस्मात् प्रायेण सन्धिषु ।
भवन्ति वेदनास्तास्ता अत्यर्थं दुःसहा नृणाम् ॥ चि० २६।१५।

इसी बातको कविने स्वप्नवासवदत्तामें कहा है—

सुप्रच्छन्नायां शय्यायां निद्रां न लेभे। यथा वातशोणितमभिमत इवेति प्रेक्ष्ये। भोः सुखं नाम आमयपरिभूतमकल्यवर्त्तञ्च। अंक ४।

अश्वघोष

अश्वघोष कवि, उपदेशक, आचार्य और संन्यासी थे; ये साकेतके रहनेवाले थे[1]। इनकी माताका नाम सुवर्णाक्षी था[2]। इनका जन्म ब्राह्मण कुलमें हुआ था, ब्राह्मण धर्मकी शिक्षा-दीक्षा इनको मिली थी; इन्होंने वेद, उपनिषद्, रामायण और महाभारतका अध्ययन किया था। काम-शास्त्र, राजशास्त्र, दण्डनीति तथा सांख्य-योग, काव्य, व्याकरणमें निपुण थे। बौद्ध धर्मकी दीक्षा पूर्णयशस्से ली थी; जो कि पार्श्वके शिष्य थे। पार्श्व अपने समयके प्रधान विद्वान् थे। कहा जाता है कि कनिष्क महाराज-द्वारा संगठित चौथी बौद्ध समितिके [जो ईस्वी सन् १०० के आसपास जालन्धरमें हुई थी] ये प्रधान थे। बौद्ध धर्ममें दीक्षित होनेपर बौद्धधर्मके प्रचारमें अपनी सारी शक्ति लगा दी थी; इसके लिए उसने काव्य और संगीतका सहारा लिया। किंवदन्तीके अनुसार इनके संगीतसे मुग्ध होकर घोड़ोंका हिनहिनाना रुक जाता था, इसीसे इनको यह नाम दिया गया।

समय—चीनी परम्परागत कथाओंके अनुसार अश्वघोष कनिष्कके समकालीन हैं, इनको ही अभिधर्मकी व्याख्या-विभाषाका लेखक कहा जाता है। अश्वघोष कृत शारिपुत्र प्रकरणकी पाण्डु-लिपिकी लिपिको देखनेसे पता चलता है कि यह कनिष्क या हुविष्कके समय की है। इसके लिए एक किंवदन्ती लोकमें प्रसिद्ध है कि कनिष्कने पाटलिपुत्रपर आक्रमण किया था। पाटलिपुत्रके शासकने हार मानकर छः करोड़ रुपया देना स्वीकार किया।

---

१. श्री सूर्यनारायण चौधरीजीके अनुवाद [सौन्दरनन्द, बुद्धचरित] के आधार तथा श्री बलदेव उपाध्यायजीके 'संस्कृत कवि-चर्चा' के आधारपर आश्रित।

२. **आर्यसुवर्णाक्षीपुत्रस्य साकेतकस्य भिक्षोराचार्यस्य भदन्ताश्वघोषमहाकवेर्महावादिनः कृतिरियम्।** कविकृत सौन्दरनन्दका अन्तिम वाक्य।

इसमेंसे तीन करोड़ रुपये भगवान् बुद्धके भिक्षा-पात्रमें दिये और शेष तीन करोड़ अश्वघोषको। अश्वघोषने अपनी शेष आयु कनिष्कको बौद्ध धर्मका उपदेश देनेमें बिताई। संक्षेपमें सब कथाएँ अश्वघोषका सम्बन्ध कुशानवंशी कनिष्कके साथ जोड़ती हैं। इसीलिए अश्वघोषका समय ईसाकी पहिली शताब्दीका उत्तरार्द्ध या दूसरी शताब्दीका पूर्वार्द्ध मानना ठीक है। कनिष्कका अपना समय निश्चित नहीं है। डाक्टर जौन्स्टनका कथन है कि कविका काल ५० ईस्वी पूर्व और १०० ईस्वीके बीच है।

अश्वघोष और कालिदास—दोनों कवियोंकी रचनामें यद्यपि साम्य है परन्तु कालिदासकी भाषा-लालित्य तथा प्रसाद-गुणयुक्त संस्कृत है, इसलिए यह मान्यता है कि अश्वघोष कालिदाससे पूर्व हुए। कालिदासने लोगोंके आनन्द तथा विद्वानोंके परितोषके लिए काव्य और नाटक लिखे, अश्वघोषने मोक्ष-विमुख, विषयोंमें रत लोगोंके लिए साहित्यका निर्माण किया। उदाहरणके लिए देखिये—

कालिदास	अश्वघोष
मार्गाचलव्यतिकाराकुलितेव सिन्धुः शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ। —कुमार० ५।८५	**तं गौरवं बुद्धगतं चकर्ष भार्यानुरागः पुनराचकर्ष। सोऽनिश्चयान्नापि ययौ न तस्थौ, तरंस्तरंगेष्विव राजहंसः॥** —सौ० ३।४२
मनोरथानामगतिर्न विद्यते। —कुमार० ५।६४	**प्रमदानामगतिर्न विद्यते।** —सौ० ८।४४
एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च। —रघु० २।४७	**आदित्यपूर्वं विपुलं कुलं ते नवं वयो दीप्तमिदं वपुश्च॥** —बु. च. १०।२३
अलं महीपाल तव श्रमेण। —रघु० २।३४	**मोघं श्रमं नार्हसि मार कर्त्तुम्** —बु. च. १३।५७

गीता और उपनिषद्से भी इनकी रचना, इनके भाव और उपमाएँ साम्य रखती हैं; यथा—

गीता-उपनिषद्

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता । —गीता

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा
भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम् ।
संयोग एषां न त्वात्मभावात्
आत्माप्यनीशः सुखदुःखहेतोः ॥
—[1]श्वेताश्वतर १।२

स यदा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धो दिशं दिशं पतित्वाऽन्यत्रायतनमलब्ध्वा बन्धनमेवोपश्रयते ।
—छान्दोग्य०

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति
न चैकान्तमनश्नतः ।
न चातिस्वप्नशीलस्य
जाग्रतो नैव चार्जुन ॥
युक्ताहारविहारस्य
युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य
योगो भवति दुःखहा ॥
—गीता

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः —गीता

इन्द्रियेणेन्द्रियार्थो हि समनस्केन गृह्यते । —चरक शा० । १।२२

अश्वघोषकी रचना

दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो
नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम् ।
दिशं न कञ्चिद् विदिशं न कञ्चिद्
स्नेहक्षयात् केवलमेति शान्तिम् ॥
—सौ० १६।२८।

प्रवृत्तिदुःखस्य च तस्य लोके
तृष्णादयो दोषगणा निमित्तम् ।
नैवेश्वरो न प्रकृतिर्न कालो
नापि स्वभावो न विधिर्यदृच्छा ॥
—सौ० १६।१७।

सूत्रेण बद्धो हि यथा विहङ्गो
व्यावर्तते दूरगतोऽपि भूयः ।
अज्ञानसूत्रेण तथावबद्धो
गतोऽपि दूरं पुनरेति लोकः ॥
—सौ० ११।५९।

तस्मादभ्यवहर्तव्यं
स्वशक्तिमनुपश्यतः ।
नातिमात्रं न चात्यल्पं
मेयं मानवशादपि ॥
अत्याक्रान्तो हि कायाग्नि—
गुरुणान्नेन शाम्यति ।
अवच्छन्न इवाल्पोऽग्निः
सहसा महतेन्धसा ॥
—सौ० १४।६,७।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो—सौ० १३।३०

१. इस संबंधमें विशेष चर्चा 'चरकसंहिताका अनुशीलन' पृष्ठ ६१ पर है ।

अश्वघोषके ग्रन्थ—ये हैं बुद्धचरित, सौन्दरनन्द महाकाव्य, शारिपुत्र प्रकरण, सूत्रालंकार, महायान श्रद्धोत्पाद शास्त्र, वज्रसूची उपनिषद। इनमेंसे प्रथम दो ही काव्योंसे यहाँ वचनोंका संग्रह किया है।

आयुर्वेदके वचन

आयुर्वेदको आत्रेयने बनाया—चरक संहिताके प्रत्येक अध्यायकी पुष्पिकामें—**इति ह स्माह भगवानात्रेयः** यह वाक्य आता है। अष्टाङ्गसंग्रहके प्रत्येक अध्यायमें **इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः** यह मिलता है। नावनीतकमें ऋषियोंकी गणनामें सुश्रुत आदिके साथ अत्रिका भी नाम आता है। चरक संहितामें हिमालयकी तराईमें एकत्र हुए ऋषियोंमें आत्रेय और भिक्षु आत्रेय नामके दो ऋषि भी हैं। आत्रेय-द्वारा भिक्षु आत्रेयका खण्डन भी चरकमें [सू० अ० २५।२४] मिलता है। इससे स्पष्ट है कि आत्रेय-भिक्षु, आत्रेयसे पृथक् हैं[1]।

बुद्धचरितमें भी आयुर्वेदका कर्त्ता आत्रेयको माना है। आगे कहा है कि पूर्वजोंने जो कर्म नहीं किये, वे कर्म उनके पुत्रोंने या पिछले व्यक्तियोंने किये हैं, यथा—

वाल्मीकिरादौ च ससर्ज पद्यं जग्रन्थ यन्न च्यवनो महर्षिः।
चिकित्सितं यच्च चकार नात्रिः पश्चात्तदात्रेय ऋषिर्जगाद॥[2]

—बु० च० १।४३

१. इस सम्बन्धमें विशेष चर्चा 'चरक-संहिताका अनुशीलन' में की गयी है।

२. अत्रि भी आयुर्वेदके ज्ञाता थे, जैसा संग्रहके वचनसे ज्ञात होता है—

ऊर्ध्वमेति मदनं त्रिवृताधो वस्तुमात्रक इति प्रतिपाद्ये।
मद्विधो यदि वदेदथवात्रिः कथ्यतां क इव कर्मणि भेदः॥

—संग्रह उ० ५०

तस्मात्प्रमाणं न वयो न वंशः कश्चित्क्वचिच्छ्रैष्ठ्यमुपैति लोके ।
राज्ञामृषीणां च हि तानि तानि कृतानि पुत्रैरकृतानि पूर्वैः ॥१।४६॥

रस और विपाक—पिप्पलीका रस कटु है, परन्तु विपाक मधुर है। इसीसे पिप्पली अपने विपाकसे वृष्य गुण करती है [द्रव्य गुणसंग्रहकी टीका] इसी तथ्यको अश्वघोषने बड़ी सुन्दरतासे कहा है—

द्रव्यं यथा स्यात्कटुकं रसेन तच्चोपयुक्तं मधुरं विपाके ।
तथैव वीर्यं कटुकं श्रमेण तस्यार्थसिद्ध्यै मधुरो विपाकः ॥

—सौ० १६।६३

जिस प्रकार द्रव्यविशेषका रस कडुआ होता है पर उसका विपाक मधुर और मीठा फल देता है [**कटुतिक्तकषायाणां विपाकः प्रायशः कटुः** चरक सू० २६।६३ में प्रायः इसी अपवादके लिए है] उसी प्रकार थकावट के कारण उद्योग कटु—अप्रिय होता है; किन्तु लक्ष्यकी सिद्धि होनेपर सुखद फल देता है। गीतामें इसीको सात्त्विक सुख कहा है—

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥१८।३७ ।

वीर्य ही शक्ति है—चरकमें वीर्यका लक्षण—जिससे कार्य होता है, उस शक्तिको वीर्य कहते हैं, [**येन कुर्वन्ति तद् वीर्यम्—सूत्र० अ०२६**] इसीको अश्वघोषने इस प्रकारसे कहा है—

वीर्यं परं कार्यकृतौ हि मूलं वीर्यादृते काचन नास्ति सिद्धिः ।
उदेति वीर्यादिह सर्वसंपन्निर्वीर्यता चेत्सकलश्च पाप्मा ॥सौ० १६।९४

कार्य करनेका मूल वीर्य—उद्योग-शक्ति है, वीर्यके बिना किसी प्रकारकी सफलता नहीं होती। सभी प्रकारकी सम्पदा वीर्यसे ही—शक्तिसे ही मिलती है; निर्वीर्यता सम्पूर्ण पाप है।

वात-पित्त-कफका प्रकोप ही रोगका कारण—शारीरिक सभी विकार वात-पित्त-कफके बिना नहीं होते। जिस प्रकार दिनभर उड़ने-वाला पक्षी अपनी छायाको पार नहीं कर सकता, उसी प्रकार शारीरिक कोई

भी विकार इनके बिना नहीं होता [चरक, सूत्र० १६।१६]। वात-पित्त-कफ ही शरीरको धारण करनेवाले हैं-[सुश्रुत]। इसीको कविने कहा है—

यथा भिषक् पित्तकफानिलानां य एव कोपं समुपैति दोषः।
शमाय तस्यैव विधिं विधत्ते व्याधत्त दोषेषु तथैव बुद्धः॥सौ० १६।६६

जिस प्रकार वैद्य कफ-पित्त-वायुमें से जिस दोष-विशेषका प्रकोप होता है उसकी शांतिका उपाय करता है, वैसे ही बुद्धने राग-द्वेष-मान आदि दोषोंके लिए उपाय बताये।

कफकी वृद्धि स्नेहसे होती है और शान्ति रूक्ष वस्तुओंसे, [चरक०वि० अ०६।१६] उसी प्रकार रागकी वृद्धि मैत्रीसे होती है [सौ०१६।५९] और रागकी शान्ति धैर्यसे होती है [६०]। जिस प्रकारसे पित्तकी वृद्धि तीक्ष्ण वस्तुओंसे होती है और शान्ति शीत उपचार से होती है [चरक० वि० अ० ६।१८] उसी प्रकार द्वेषकी वृद्धि अशुभ विचारोंसे होती है [६१] और द्वेषकी शान्ति मित्रतासे होती है [६२]। जिस प्रकार वायुकी वृद्धि रूक्ष वस्तुओंसे होती है और शान्ति स्निग्ध वस्तुओंसे होती है, [चरक० वि० अ० ६।१७] उसी प्रकार मोहकी वृद्धि मैत्री और अशुभ चिन्तनसे होती है [६३] और मोहकी शान्ति, कार्य-कारणका सिद्धान्त-चिन्तन करनेसे होती है। यही शान्तिका मार्ग है [६४]।

रोग, रोगका कारण और औषध चिकित्सा—रोगीको जान लेना चाहिए, उसे पता होना चाहिये कि उसे शिकायत क्या है? [**ज्ञापकत्वं च रोगाणम्—चरक**] रोगका कारण क्या है और उसकी चिकित्सा—शान्तिके उपाय क्या हैं, यह ज्ञान रोगीको होना चाहिए। इसके जाननेसे वह जल्दी स्वस्थ हो जाता है। मिलिन्द प्रश्नमें भी इसी तरहका उपदेश है। इसी बातको अश्वघोषने कहा है—

यो व्याधितो व्याधिमवैति सम्यक् व्याधेर्निदानं च तदौषधं च।
आरोग्यमाप्नोति हि सोऽचिरेण मित्रैरभिज्ञैरुपचर्यमाणः॥सौ० १६।४०।

शरीरसे ही व्याधियाँ और बुढ़ापा आदि दुःख हैं—आयुर्वेद-शास्त्रमें पञ्चमहाभूत और आत्माके संयोगका नाम पुरुष है। पुरुष ही इस शास्त्रका अधिष्ठान है। इस पुरुषके साथ जिन वस्तुओंका संयोग होनेसे दुःख होता है, उनका नाम व्याधियां हैं **[विविधं दुःखमादधातीति]**। ये व्याधियां चार प्रकारकी हैं—आगन्तुज, शारीरिक, मानसिक और स्वाभाविक [जरा-मृत्यु आदि; सुश्रुत सूत्र १।२२-२५]। सब झगड़ा शरीरके साथ ही है, शरीर न रहे तो सबसे मुक्ति।

काये सति व्याधिजरादिदुःखं क्षुत्तर्षवर्षोष्णहिमादि चैव।
रूपाश्रिते चेतसि सानुबन्धे शोकारतिक्रोधभयादि दुःखम्॥ १६।१३।

संसारमें प्रवृत्तिका कारण—इस विषयमें सब ग्रन्थोंमें विचार मिलते हैं। सुश्रुतमें उस समयके भिन्न-भिन्न विचारोंको एक श्लोकमें दिखाया है—

स्वभावमीश्वरं कालं यदृच्छां नियतिं तथा।
परिणामं च मन्यन्ते प्रकृतिं पृथुदर्शिनः॥ शा०अ० १।११।

चरक संहितामें ये विचार भिन्न-भिन्न ऋषियोंके मुखसे कहलाये हैं; यथा—काशिपति वामकने एकत्र हुए ऋषियोंसे पूछा कि पुरुष किससे उत्पन्न होता है। रोग किससे उत्पन्न होते हैं? जिससे पुरुषकी उत्पत्ति है, क्या उसीसे रोग उत्पन्न होते हैं? इस प्रश्नका उत्तर ऋषियों ने भिन्न-भिन्न रूपमें दिया। यथा—मौद्गल्य पारीक्षिने कहा कि पुरुष आत्मासे उत्पन्न होते हैं और रोग भी आत्मासे ही उत्पन्न होते हैं। शरलोमाने कहा कि यह ठीक नहीं; आत्मा स्वयं अपनेको दुःखोंके साथ क्यों जोड़ेगा? इसलिए रज और तमसे भरा हुआ मन ही शरीर और रोगोंकी उत्पत्तिका कारण है। हिरण्याक्षने कहा कि आत्मा रसजन्य नहीं, अतीन्द्रिय मन भी रसजन्य नहीं। इसलिए छः धातुओंसे पुरुष उत्पन्न होता है और छः धातुओंसे रोग उत्पन्न होते हैं। कौशिकने कहा—यह ठीक नहीं; क्योंकि माता-पिताके बिना छः धातुओंसे कैसे कोई उत्पन्न हो सकता है? पुरुषसे पुरुष, गौसे गौ होती है। पितासे प्रमेह आदि होते हैं।

भद्रकाप्यने कहा कि अन्धे पितासे अन्धा पुत्र नहीं होता; इसलिए उत्पत्तिमें कारण माता-पिता नहीं; अपितु कर्म ही कारण है। भरद्वाजने कहा कि कर्त्ता से पहिले कर्मकी सत्ता नहीं। ऐसा कोई अकृत कर्म नहीं, जिसका फल पुरुष हो; इसलिए स्वभाव ही उत्पत्तिका कारण है। काङ्कायनने कहा कि यदि स्वभावसे ही सब कुछ होता है, तो आरम्भ फल व्यर्थ है। इसलिए इन सबोंको बनानेवाला प्रजापति है। भिक्षु आत्रेयने कहा कि यह कैसे सम्भव है कि प्रजापति-प्रजाका हितैषी होकर अपनी संततिको दुःखसे पीडित करे। इसलिए पुरुषकी उत्पत्तिमें कारण काल ही है। कालसे ही रोग उत्पन्न होते हैं। काल ही सबका कारण है [चरक संहिता सू०अ०२५।३—२५]।

इन सब वादोंका उल्लेख उपनिषद्में भी आता है—

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम्।
संयोग एषां न त्वात्मभावात् आत्माप्यनीशः सुखदुःखहेतोः॥

—श्वेताश्वतर

इसी विचारको कविने इस प्रकार प्रकट किया है—

प्रवृत्तिदुःखस्य च तस्य लोके तृष्णादयो दोषगणा निमित्तम्।
नैवेश्वरो न प्रकृतिर्न कालो नापि स्वभावो न विधिर्यदृच्छा॥
अस्तीति केचित्परलोकमाहुर्मोक्षस्य योगं न तु वर्णयन्ति।
अग्नेर्यथा ह्यौष्ण्यमपां द्रवत्वं तद्वत् प्रवृत्तौ प्रकृतिं वदन्ति॥५७॥
केचित्स्वभावादिति वर्णयन्ति शुभाशुभं चैव भवाभवौ च।
स्वाभाविकं सर्वमिदं च यस्मादतोऽपि मोघो भवति प्रयत्नः॥५८॥
अद्भिर्हुताशः शममभ्युपैति तेजांसि चापो गमयन्ति शोषम्।
भिन्नानि भूतानि शरीरसंस्थान्यैक्यं च गत्वा जगदुद्वहन्ति॥५९॥
यत्पाणिपादोदरपृष्ठमूर्ध्ना निर्वर्त्तते गर्भगतस्य भावः।
यदात्मनस्तस्य च तेन योगः स्वाभाविकं तत्कथयन्ति तज्ज्ञाः॥६०॥
कः कण्टकस्य प्रकरोति तैक्ष्ण्यं विचित्रभावं मृगपक्षिणां वा।
स्वभावतः सर्वमिदं प्रवृत्तं न कामकारोऽस्ति कुतः प्रयत्नः॥६१॥

सर्गं वदन्तीश्वरतस्तथान्ये तत्र प्रयत्ने पुरुषस्य कोऽर्थः ।
य एव हेतुर्जगतः प्रवृत्तौ हेतुर्निवृत्तौ नियतः स एव[1] ॥६२॥
केचिद् वदन्त्यात्मनिमित्तमेव प्रादुर्भवं चैव भवक्षयं च ।
प्रादुर्भवं तु प्रवदन्त्ययत्नाद्यत्नेन मोक्षाधिगमं ब्रुवन्ति ॥६३॥
—बुद्धचरित ९ ।

इस प्रकारसे उस समयके वादोंका उल्लेख स्पष्ट रूपसे बुद्धचरित-एवं सौन्दरनन्दमें आ जाता है ।

पुनर्जन्मके सम्बन्धमें—चरकमें परलोकैषणाको स्पष्ट करनेके लिए पुनर्जन्मके विषयमें लिखा है—'इस विषयमें संशय क्यों है ? यहाँसे मरनेके बाद फिर हम जन्म लेंगे या नहीं ।' यह संशय किसलिए है ? कुछ लोग प्रत्यक्षको ही प्रमाण मानते हैं और पुनर्जन्मके परोक्ष होनेसे नास्तिक बुद्धिका आश्रय लेते हैं । दूसरे शास्त्रको प्रमाण मानकर पुनर्भवको स्वीकार करते हैं । इसमें श्रुतिके निम्न मत हैं—कोई माता-पिताको जन्मका कारण मानते हैं । कुछ स्वभावको कारण मानते हैं । कुछ परनिर्माणको कारण मानते हैं, दूसरे यदृच्छाको कारण मानते हैं । इसलिए संशय है कि पुनर्भव है अथवा नहीं'
—सूत्र० अ० ११।६।

अश्वघोषने भी इस प्रश्नको इन्हीं दृष्टियोंसे देखा है । देखिये—
पुनर्भवोऽस्तीति च केचिदाहुर्नास्तीति केचिन्नियतप्रतिज्ञाः ।
एवं यदा संशयितोऽयमर्थस्तस्मात्क्षमं भोक्तुमुपस्थिता श्रीः ॥सौ० ९।५५
अस्तीति केचित्परलोकमाहुर्मोक्षस्य योगं न तु वर्णयन्ति ।
अग्नेर्यथा ह्यौष्ण्यमपां द्रवत्वं तद्वत्प्रवृत्तौ प्रकृतिं वदन्ति ॥सौ० ९।५७

---

१. तुलना कीजिये—चरकके निम्न श्लोकोंसे—
जायन्ते हेतुवैषम्याद् विषमा देहधातवः ।
हेतुसाम्यात् समस्तेषां स्वभावोपरमः सदा ॥
प्रवृत्तिहेतुर्भावानां न निरोधेऽस्ति कारणम् ।
केचित् तत्रापि मन्यन्ते हेतुं हेतोरवर्त्तनम् ॥ सूत्र अ० १६ ।२७-२८

चरकमें मोक्षका मार्ग योग बताया है [सूत्र०अ०१०।३३; और शा० अ०५।१२। **तत्र मुमुक्षूणामुदयनानि व्याख्यास्यामः। इत्यादि**]। चरकमें आस्तिक मतका प्रबल समर्थन है, इसमें श्रुतिको भी प्रमाण माना है; यथा—

नास्तिकस्यास्ति नैवात्मा यदृच्छोपहतात्मनः।
पातकेभ्यः परं चैतत्पातकं नास्तिकग्रहः॥
तस्मान्मतिं विमुच्यैताममार्गप्रसृतां बुधः।
सतां बुद्धिप्रदीपेन पश्येत्सर्वं यथायथम्॥ सू०अ०११।१६।

आहार-सम्बन्धी विचार—आयुर्वेद ग्रन्थोंमें आहारके सम्बन्धमें कुछ वचन दिये हैं जो बहुत महत्त्वपूर्ण हैं, यथा—[१] भोजन अप्राप्तकाल, अतीत कालमें नहीं करना चाहिये, मात्रामें कम या मात्रामें अधिक नहीं करना चाहिये [सुश्रुत-सू०अ०४६।४७१; चरक-वि०अ०२।७]। [२] भोजन मात्रामें करना चाहिये। मात्रा मनुष्यकी जठराग्निके ऊपर निर्भर करती है। जितना खाया हुआ भोजन सुखसे पच जाये, वह उस व्यक्तिके लिए आहार-की मात्रा है [चरक०सू०अ०५।४]। [३] मनुष्यको प्रतिदिन समिधारूपी हितकारी अन्न-पान द्वारा जठराग्निमें हवन करना चाहिये, हवन करते समय मात्रा और कालका विचार करना चाहिये। जो मनुष्य प्रतिदिन अन्तराग्नि में हवन करता है, प्रतिदिन भगवान्का स्मरण करता है, दान करता है, पान-भोजनमें सात्म्यको जानता है, ऐसे मनुष्यको शायद ही कोई रोग होता है [चरक० सू० अ० २७।३४७-३४९]। [४] हितकारी भोजन करनेवाला मनुष्य ३६००० दिनों तक [एक सौ वर्ष] नीरोग होकर जीता है। [५] लालचके वश या बिना जाने आहारका सेवन नहीं करना चाहिए। परीक्षा करके, हितकारी अन्नको खाना चाहिए; क्योंकि शरीर आहारसे बना है [चरक०सू०अ०२८]।

इन्हीं वचनोंको कविने भी गूँथा है। देखिए—

आचर्यं द्युतिमुत्साहं प्रयोगं बलमेव च।
भोजनं कृतमत्यल्पं शरीरस्यापि कर्षति॥

यथा भारेण नमते लघुनोन्नमते तुला ।
समातिष्ठति युक्तेन भोज्येनेयं तथा तनुः ॥
तस्मादभ्यवहर्त्तव्यं स्वशक्तिमनुपश्यता ।
नातिमात्रं न चात्यल्पं मेयं मानवशादपि[1] ॥
अत्यन्तमपि संहारो नाहारस्य प्रशस्यते ।
अत्याक्रान्तो हि कायाग्निर्गुरुणान्नेन शाम्यति ॥
अवच्छन्नं इवाल्पोऽग्निः सहसा महतेन्धसा ।
अनाहारो हि निर्वाति निरिन्धन इवानलः[2] ॥
यस्मान्नास्ति विनाहारात्सर्वप्राणभृतां स्थितिः ।
तस्माद्दुष्यति नाहारो विकल्पोऽत्र तु वार्यते[3] ॥
नह्येकविषयेऽन्यत्र सज्यन्ते प्राणिनस्तथा ।
अविज्ञाते यथाहारे बोद्धव्यं तत्र कारणम्[4] ॥

---

१. अमात्रत्वं पुनर्द्विविधमाचक्षते हीनमधिकं च । तत्र हीनमात्रमाहारराशिं बलवर्णोपचयक्षयकरमतृप्तिकरमुदावर्तमनायुष्यमनौजस्यं...... वातविकाराणामायतनमाचक्षते । अतिमात्रं पुनः सर्वदोषप्रकोपणमिच्छन्ति कुशलाः । चरक० वि० २।७–८ ।

२. तुलना कीजिये—नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
—गीता ६।१६।

३. प्राणाः प्राणभृतामन्नमन्नं लोकोऽभिधावति ।
वर्णप्रसादः सौस्वर्यं जीवितं प्रतिभा सुखम् ॥
तुष्टिः पुष्टिर्बलं मेधा सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम् ।—चरक सू० अ० २७।३५१।
अन्न-पानेन्धनैश्चाग्निर्ज्वलति व्येति चान्यथा ।।—चरक सू.अ.२७।३४४।

४. न रागान्नाप्यविज्ञानादाहारमुपयोजयेत् ।
परीक्ष्य हितमश्नीयाद् देहो ह्याहारसंभवः ॥—चरक सू० अ. २८।४५।
प्राणधारणार्थमेककालं यथोपपन्नोऽभ्यवहारः ॥
—चरक शा. अ. ५।१२।

चिकित्सार्थं यथा धत्ते व्रणस्यालेपनं व्रणी ।
क्षुद्विघातार्थमाहारस्तद्वत्सेव्यो मुमुक्षुणा ॥
भारस्योद्वहनार्थं च रथाक्षोऽभ्यज्यते यथा ।
भोजनं प्राणयात्रार्थं तद्वद् विद्वान् निषेवते ॥—सौ० १४।४-१२

चैत्ररथ वन—प्राचीन कालमें भारतमें बहुतसे वन थे। रामायण और महाभारतमें बहुतसे वनोंके नाम आते हैं। बौद्ध कालमें बुद्धके समयमें भी बहुतसे वन थे। बुद्धका जन्म और निर्वाण वनमें ही हुआ। इन्हीं वनोंमें से एक वन **चैत्ररथ** वन है। चैत्ररथ वनको चित्ररथ गन्धर्वने बनाया था। भगवद्गीतामें भगवान्ने अपनी विभूति बताते हुए गन्धर्वोंमें अपनेको चित्र-रथ बताया है [गीता अ० १०]। चित्ररथ गंधर्वके साथ अर्जुनकी मैत्रीका उल्लेख महाभारतके वन पर्वमें है।

चैत्ररथ वन कैलाशमें है। इसका उल्लेख कालिदासने अपने मेघदूत [उत्तरमेघ] में तथा रघुवंशमें किया है।[1] कालिदासकी भाँति अश्वघोषने भी इसका उल्लेख अपने काव्योंमें किया है। इसी चैत्ररथ वनमें महर्षि आत्रेयने अन्य ऋषियोंके साथ बैठकर अर्थवती कथा-गोष्ठी की थी। अश्वघोष और कालिदासके अतिरिक्त अन्य संस्कृत कवियोंके ग्रंथोंमें चैत्ररथ वनका उल्लेख नहीं मिलता। चरकमें—

एते श्रुतवयोवृद्धा जितात्मानो महर्षयः ।
वने चैत्ररथे रम्ये समीयुर्विजिहीर्षवः ॥

अश्वघोषने भी कहा है—

हा चैत्ररथ हा वापि हा मन्दाकिनि हा प्रिये ।
इत्यार्ता विलपन्तोऽपि गां पतन्ति दिवौकसः ॥
—सौन्दरनन्द ११।५०।

ययातिश्चैव राजर्षिर्वयस्यापि विनिर्गते ।
विश्वाच्याप्सरसा सार्धं रेमे चैत्ररथे वने ॥ —बु०च० ४।७८।

---

१. संभाव्य भर्त्तारममुं युवानं मृदुप्रवालोत्तरपुष्पशय्ये ।
वृन्दावने चैत्ररथादनूने निर्विश्यतां सुन्दरि यौवनश्रीः ॥ —रघु० ६।५०।
एको ययौ चैत्ररथप्रदेशान्सौराज्यरम्यानपरो विदर्भान् ॥ —रघु० ५।६०।

भगवान् बुद्धके लिए महाभिषक्—बुद्धके सिवाय भिषक्–भैषज्य गुरु आदि शब्द संस्कृत कवियोंकी रचनामें नहीं आते। बौद्धोंके बनाये ग्रन्थों में ही ऐसे शब्द मिलते हैं। बौद्धोंसे इतर कवियोंकी रचनामें किसी भी ऋषिके लिए ऐसे शब्द नहीं हैं।

बुद्धके लिए अष्टांगसंग्रहमें भैषज्यगुरु शब्द आता है—

ॐनमो भगवते भैषज्यगुरवे वैडूर्यप्रभराजाय तथागतायार्हते सम्यक् संबुद्धाय। तद्यथा ॐ भैषज्ये भैषज्ये महाभैषज्ये भैषज्यसमुद्गते स्वाहा॥

—संग्रह०सू०अ०२७।

अश्वघोषने कहा है—

अनर्थभोगेन विघातदृष्टिना प्रमाददंष्ट्रेण तमोविषाग्निना।
अहं हि दष्टो हृदिमन्मथाग्निना विधत्स्व तस्मादगदं महाभिषक्॥सौ०

चित्रघटकी उपमा—चरक संहितामें अकाल मृत्युके निश्चय करनेमें उदपानघट और चित्रघटका उल्लेख आता है [चरक०वि०अ०३। ४२]। अश्वघोषने भी इसी उपमाको इसी अर्थमें लिया है। देखिये—

शरीरमामादपि मृन्मयाद्घटादिदं तु निःसारतमं मतं मम।
चिरं हि तिष्ठेद् विधिवद्धृतो घटः समुच्छ्रयोऽयं सुधृतोऽपि भिद्यते॥

—सौ० ६।११।

चित्रप्रदीपकी उपमा—चरकसंहितामें संतानरहित पुरुषकी तुलना चित्र प्रदीप–चित्रमें चित्रित प्रदीपसे की है [चि०अ०२।१।१८]। यही उपमा इसी अर्थमें कविने भी व्यवहृत की है—

पाणौ कपालमवधाय विधाय मौण्ड्यं मानं निधाय विकृतं परिधाय वासः।
यस्योद्भवो न धृतिरस्ति न शान्तिरस्ति चित्रप्रदीप इव सोऽस्ति च नास्ति चैव॥

—सौ० ७।४८।

शरीरके निर्माणमें चार भूत—सामान्यतः पृथ्वी-अप-तेज-वायु और आकाश इन पंचमहाभूतोंसे शरीर बनता है [सुश्रुत शा० १।११]। आत्माके निकल जाने पर केवल पाँच भूत बचते हैं, इसलिए इस मृत शरीर-को पञ्चतत्त्व कहते हैं [चरक०शा०१।८४] परन्तु गर्भमें शरीर-निर्माणको

बताते हुए चरकमें आकाशको छोड़ कर चार भूतोंका ही उल्लेख है; क्योंकि आकाश सर्वत्र व्याप्त ही रहता है। यथा—

भूतैश्चतुर्भिः सहितः सुसूक्ष्मैर्मनोजवो देहमुपैति देहात्। शा०अ०२।२१।
भूतानि चत्वारि तु कर्मजानि यान्यात्मलीनानि विशन्ति गर्भम्॥

—शा० अ० २।३५।

अश्वघोषने भी आकाशको छोड़कर शेष चारों भूतोंका ही उल्लेख किया है—

यदम्बुभूवाय्वनलाश्च धातवः सदा विरुद्धा विषमा इवोरगाः।
भवन्त्यनर्थाय शरीरमाश्रिताः कथं बलं रोगविधौ व्यवस्यसि॥ —सौ० ६।१२

रोग दो प्रकारके हैं—अधिष्ठान भेदसे रोग दो प्रकारके हैं—शारीरिक और मानसिक [चरक०वि०अ०६।३]। इनमें मानसिक दोष दो हैं, रज और तम। शारीरिक दोष तीन हैं—वात, पित्त और कफ।

अश्वघोषने भी इसी रूपमें रोगोंका वर्णन किया है—

द्विविधा समुदेति वेदना नियतं चेतसि देह एव च।
श्रुतविध्युपचारकोविदा द्विविधा एव तयोश्चिकित्सकाः॥
तदियं यदि कायिकी रुजा भिषजे तूर्णमनूनमुच्यताम्।
विनिगृह्य हि रोगमातुरो न चिरात्तीव्रमनर्थमृच्छति॥[1]

---

१. **प्राज्ञो रोगे समुत्पन्ने बाह्येनाऽभ्यन्तरेण वा।**
कर्मणा लभते शर्म शस्त्रोपक्रमेणन वा॥

—चरक सू० अ० ११।५६

महाभारतमें भी दो प्रकारके रोगोंका उल्लेख है—

द्विविधो जायते व्याधिः शारीरो मानसस्तथा।
परस्परं तयोर्जन्म निर्द्वन्द्वं नोपलभ्यते॥
शारीराज्जायते व्याधिः मानसो नात्र निश्चयः।
मानसाज्जायते व्याधिः शारीर इति निश्चयः॥
शारीरमानसे दुःखे योऽतीते नानुशोचति।

—महा० शा० राजधर्म० १६।

अथ दुःखमिदं मनोरमं वद वक्ष्यामि यदत्र भेषजम् ।
मनसो हि रजस्तमस्विनो भिषजोऽध्यात्मविदः परीक्षकाः ॥
—सौ० ९।३–५।

जिस प्रकार छोटा वृक्ष सुगमतासे काटा जा सकता है, बढ़ने पर वही कठिनाईसे कटता है; उसी तरह जो व्यक्ति रोगके प्रारम्भमें ही या रोगकी तरुणावस्थामें ही चिकित्सा करा लेता है वह देर तक सुख अनुभव करता है। जो व्यक्ति—रोग साध्य है—यह समझ कर उपेक्षा करता है, वह कुछ समय पीछे अपनेको मृतकी भाँति जानता है [चरक]।

वैद्य रोगीको अच्छा करनेके लिए अप्रिय कटु औषध भी देता है, उसी प्रकार हितकारी वचनोंको तुम्हें भी मानना चाहिए—

अनिष्टमप्यौषधमातुराय ददाति वैद्यश्च यथा निगृह्य ।
तद्वन्मयोक्तं प्रतिकूलमेतत्तुभ्यं हितोदर्कमनुग्रहाय ॥—सौ० ५।४८।
अप्रियं हि हितं स्निग्धमस्निग्धमहितं प्रियम् ।
दुर्लभं तु प्रियहितं स्वादु पथ्यमिवौषधम् ॥ —सौ० ११।१६।

धातुओंके प्रकोपका ही नाम रोग है—दोषोंकी विषमता ही रोग है [**रोगस्तु दोषवैषम्यम्**]। वात, पित्त और कफ—ये तीन शारीरिक दोष हैं। ज्वर, अतीसार, शोफ, श्वास, मेह, कुष्ट आदि इन्हींके विकार हैं [चरक वि० ६।५]। इसीको कविने कहा है—

ततोऽब्रवीत्सारथिरस्य सौम्य धातुप्रकोपप्रभवः प्रवृद्धः ।
रोगाभिधाना सुमहाननर्थः शक्तोऽपि येनैष कृतोऽस्वतन्त्रः ॥
—बु० च० ३।४२।

नित्यं प्राणभृतां देहे वातपित्तकफास्त्रयः ।
विकृता प्रकृतिस्था वा तान्बुभुत्सेत पण्डितः ॥ —चरक सू०अ०१८।५५।

केशोंकी श्रेष्ठता—दीर्घायु कुमारोंके लक्षण बताते हुए केशोंके विषयमें अत्रिपुत्रने कहा है कि—"बाल अलग अलग—एक-एक, मृदु, थोड़े, स्निग्ध मजबूत मूलवाले और काले प्रशस्त हैं [शा०अ०८।५५]। कविने भी ऐसे ही बालोंको प्रशस्त बताया है—

महोर्मिमन्तो मृदवोऽसिता शुभाः पृथक् पृथक् मूलरुहा समुद्गताः ।
प्रवेरितास्ते भुवि तस्य मूर्धजा नरेन्द्रमौलीपरिवेष्टनक्षमाः ॥
—बु० च० ८।५२।

उद्यानके वृक्ष—कालिदासकी भाँति अश्वघोषने भी बहुतसे वृक्षोंका उल्लेख किया है। यहाँ उपवनसे सम्बन्धित तथा आयुर्वेदग्रन्थोंमें उल्लिखित वृक्षोंका ही नामोल्लेख प्रासंगिक है। आम्रमंजरी [**गृहीत्वा चूतवल्लरीम्** ४।४।४१], नीलकमल [४।४३], अशोक [४।४५], तिलक [४।४६], कुरुबक [४।४७], सिन्दुवारक [४।४९]।

पक्षियोंमें कोकिल तथा चक्रवाकका उल्लेख किया।

पुरुष छः धातुओंसे बना है—पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश और आत्मा इन छः धातुओंके संयोगको पुरुष कहते हैं [चरक शा०अ० १।१६]। अश्वघोषने भी इन छः धातुओंके ज्ञानसे ही मुक्ति बताई है, क्योंकि ये ही शरीरको बनाती हैं—

धातून्हि षड् भूसलिलानलादीन्सामान्यतः स्वेन च लक्षणेन ।
अवैति यो नान्यमवैति तेभ्यः सोऽत्यन्तिकं मोक्षमवैति तेभ्यः ॥—सौ. १।४८

चरकमें भी यही बात कही गयी है—

षड्धातवः समुदिताः पुरुष इति शब्दं लभन्ते, तद्यथा—पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशं ब्रह्म चाऽव्यक्तमिति । एत एव च षड्धातवः समुदिताः पुरुष इति शब्दं लभन्ते । —चरक शा० अ० ५।५।

यह पुरुष लोकसंमित है, दोनोंमें समानता है। दोनोंमें समानता रहनेके कारण सम्पूर्ण लोकको अपनेमें जो देखता है और अपनेको जो सब लोकमें देखता है, उसमें सत्य बुद्धि उत्पन्न होती है।[1] इसीसे उसमें

---

१. **यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।**
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥
सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥—गीता ६।२९-३०।

मोक्षके लिए प्रवृत्ति-ज्ञान होता है। लोक शब्दसे सामान्य रूपमें पड्धातुओंका समुदाय ही विवक्षित है। इस समानता ज्ञानका लाभ—

लोके विततमात्मानं लोकं चात्मनि पश्यतः।
परावरदृशः शान्तिर्ज्ञानमूला न नश्यति॥
पश्यतः सर्वभावान् हि सर्वावस्थासु सर्वदा।
ब्रह्मभूतस्य संयोगो न शुद्धस्योपपद्यते॥ चरक शा० ५।

इसीका नाम मोक्ष है, जिसे कविने बताया है।

धातुसाम्य—धातु [दोष] की समताका नाम आरोग्य है और दोषोंकी विषमताका नाम रोग है [संग्रह]। इसी बातको अराड् और बुद्धके परस्पर कुशलक्षेम पूछनेमें कविने दिखाया है। यथा—

तावुभौ न्यायतः पृष्ट्वा धातुसाम्यं परस्परम्।
दारव्योर्मध्ययोर्वृष्योः शुचौ देशे निषेदतुः॥ बु० च० १२।३।

आपसमें मिलनेपर राजी-खुशी पूछनेके लिए जिस प्रकार आजकल कुशल या स्वास्थ्य शब्दका प्रयोग होता है; उसी प्रकार अश्वघोषके समय **'धातुसाम्य'** शब्दका व्यवहार होता था। धातुसाम्यको ही अत्रिपुत्रने आयुर्वेद शास्त्रका प्रयोजन कहा है—"**धातुसाम्यक्रिया चोक्ता तन्त्रामस्य प्रयोजनम्**—चरक. सू. १।५५। धातुसाम्य ही कार्य है। कालिदासने धातुसाम्यके स्थान पर कुशल शब्दका व्यवहार किया है, यथा—**अव्यापन्नः कुशलमबले पृच्छति त्वां वियुक्तः**—"मेघदूत उ. ४१। धातुसाम्यका अर्थ ही आरोग्य है; जैसा कि अत्रिपुत्रने कहा है—**विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते**—चरक. सू. ९।४।

विप्रत्यय, अभिसंप्लव, अभ्यवपात, अहंकार, संशय—शब्द चरक संहिताकी भांति इन्हीं अर्थोंमें बुद्धचरितमें भी आते हैं; यथा—

अग्निवेशने पूछा—हे भगवन्! प्रवृत्ति और निवृत्तिका क्या कारण है और मोक्षका उपाय क्या है? भगवान् आत्रेयने कहा—मोह, इच्छा, द्वेष, धर्म, अधर्म और कर्म, इनके कारणसे प्रवृत्ति होती है। इनके कारणसे अहंकार, संग, संशय, अभिसंप्लव; अभ्यवपात, विप्रत्यय, अविशेष एवं अनुपाय होते हैं। छोटे वृक्षको

जिस प्रकार बड़ी शाखाओं वाला वृक्ष मार देता है—उसे बढ़ने-पनपने नहीं देता; उसी प्रकार ये पुरुषको घेर लेते हैं और मोक्षमें प्रवृत्त नहीं होने देते। इनसे दबा हुआ मनुष्य अपने वास्तविक रूपको नहीं पहिचानता। इनमें— जाति, रूप, वित्त, वृत्त, बुद्धि, शील, विद्या, अभिजन, वय, वीर्य, प्रभावसे मैं सम्पन्न हूँ, ऐसा समझना **अहंकार** है। मन-वाणी और कर्मसे मोक्षके लिए काम न करना **संग** है। कर्मफल—मोक्ष, पुनर्जन्म, पुरुष (ईश्वर) आदि हैं या नहीं, यह **संशय** है। सब अवस्थाओंमें अपनेको ब्रह्मसे अभिन्न मानना, मैं बनानेवाला हूँ, स्वभावसे ही मैं सिद्ध हूँ, शरीर-इद्रिय-बुद्धि-स्मृतिमें अपनेको ही राशिपुरुष समझना [अनात्मामें आत्मत्व समझना] **अभिसंप्लव** है। माता-पिता, भाई-पत्नी, पुत्र-बन्धु, मित्र-भृत्य मेरे हैं और मैं इनका हूँ—यह **अभ्यवपात** है। कार्यमें अकार्य, शुभ-अशुभ, हित-अहितमें विपरीत बुद्धिका होना **विप्रत्यय** है। ज्ञान अज्ञानमें, प्रकृति-विकृतिमें, प्रवृत्ति और निवृत्तिमें एक समान बुद्धि रखना **अविशेष** है। प्रोक्षण, अनशन, अग्निहोत्र, त्रिषवण [त्रिकाल सन्ध्या], अभ्युक्षण, आवाहन, यजन—याजन, सलिल-प्रवेश, अग्नि-प्रवेश आदि कार्योंका करना **अनुपाय** है। जिस प्रकारसे वृक्ष पक्षियोंके बैठनेका स्थान होता है, उसी प्रकारसे धी, धृति, स्मृति, अहंकारसे भरा हुआ दुनियादारीमें फँसा; अभिसंप्लुत बुद्धि वाला अभ्यवपात—अन्यथादृष्टि एवं अविशेषग्राही; विमार्गमें जानेवाला यह मनुष्य मन-शरीरके सब दोषोंके कारण सब दुःखोंसे पीड़ित होता है। इस प्रकार अहंकार आदि दोषोंसे विभ्रमित हुआ मनुष्य प्रवृत्तिको नहीं छोड़ता और यही प्रवृत्ति पापका मूल है [शा०अ०५।१०]।

इस सारे ज्ञानको अराड्ने भगवान् बुद्धको इसी रूपमें दिया है। कविने इसे कवितामें सरलतासे अंकित किया है—

विप्रत्ययादहङ्कारात्संदेहादभिसंप्लवात् ।
अविशेषानुपायाभ्यां सङ्गादभ्यवपाततः ॥
तत्र विप्रत्ययो नाम विपरीतं प्रवर्त्तते ।
अन्यथा कुरुते कार्यं मन्तव्यं मन्यतेऽन्यथा ॥

ब्रवीम्यहमहं वेद्मि गच्छाम्यहमहं स्थितः ।
इतीहैवमहंकारस्त्वनहंकार वर्तते ॥
यस्तु भावानसंदिग्धानेकीभावेन पश्यति ।
मृत्पिण्डवदसंदेह संदेहः स इहोच्यते ॥
य एवाहं स एवेदं मनो बुद्धिश्च कर्म च ।
यश्चैवैष गणः सोऽहमिति यः सोऽभिसंप्लवः ॥
अविशेषं विशेषज्ञ प्रतिबुद्धाप्रबुद्धयोः ।
प्रकृतीनां च यो वेद सोऽविशेष इति स्मृतः ॥
नमस्कारवषट्कारौ प्रोक्षणाभ्युक्षणादयः ।
अनुपाय इति प्राज्ञैरुपायज्ञ प्रवेदितः ॥
सज्जते येन दुर्मेधा मनोवाग्बुद्धिकर्मभिः ।
विषयेष्वनभिष्वङ्ग सोऽभिष्वङ्ग इति स्मृतः ॥
ममेदमहमस्येति यद् दुःखमभिमन्यते ।
विज्ञेयोऽभ्यवपातः स संसारे येन पात्यते ॥

—बुद्धचरित १२।२४-३२ ।

यह ज्ञान चरक संहिताके सन्दर्भका प्रतिरूप ही है। दोनोंकी शब्द-रचना, पारिभाषिक शब्द और उनका स्पष्टीकरण एक समान है।

कोयलकी कूकसे भरे विकसित वन; नवयौवन और वसन्तका समय मनुष्यको उत्फुल्ल बना देता है, यह बात कविने अत्रि-पुत्र की भाँति कही है; यथा—

निरीक्षमाणस्य जलं सपद्मं वनं च फुल्लं परपुष्टजुष्टम् ।
कस्यास्ति धैर्यं नवयौवनस्य मासे मधौ धर्मसपत्नभूते ॥

—सौन्दर० ४।२३ ।

चरकसंहितामें—

सुखाः सहायाः परपुष्टघुष्टाः फुल्ला वनान्ताः विशदान्नपानाः ।
वयो नवं जातमदश्च कालो हर्षस्य योनिः परमा नराणाम् ॥

—चरक० चि० २।३।२९-३० ।

———

कालिदास

परिचय—कालिदासका समय सुनिश्चित नहीं है। सामान्यतः इनका सम्बन्ध विक्रमादित्यके साथ जोड़ा जाता है, जिसका मुख्य आधार निम्न श्लोक है—

धन्वन्तरिः क्षपणकोऽमरसिंहशंकु-वेतालभट्ट-घटकर्परकालिदासाः ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥

परन्तु विक्रमादित्यका समय भी निश्चित नहीं। कुछ लोग विक्रमादित्य शब्द-समूहको उपाधि-रूपमें मानते हैं, दूसरे इसको नाम रूपमें स्वीकार करते हैं। मुख्यतः चार राजाओंके साथ यह उपाधि जोड़ी गई है। १—यशोधर्मन् के साथ, जिसने हूणवंशके राजा मिहिरकुलको पराजित करके विक्रमादित्यकी उपाधि धारण की थी और नया संवत् चलाया था। परन्तु यशोधर्मन्को कभी भी शकारि नहीं कहा गया। २—गुप्तकालमें स्कन्दगुप्त के साथ कालिदासका सम्बन्ध जोड़ते हैं, क्योंकि स्कन्दगुप्तका भी विरुद विक्रमादित्य था। परन्तु डाक्टर रामकृष्ण भाण्डारकर आदि चन्द्रगुप्त द्वितीयको कालिदासका आश्रयदाता मानते हैं। रघुवंशमें वर्णित रघुकी विजयका वर्णन चन्द्रगुप्त द्वितीयकी विजयसे बहुत मिलता है। इन्दुमतीके स्वयंवरमें उपस्थित मगध राजाके लिए जो विशेषण कहे गये हैं, वे चन्द्रगुप्तमें पूरे-पूरे घटते हैं। किन्तु इनसे पूर्व ही मालवामें राज्य करनेवाले विक्रमादित्यका पता चलता है, इसलिए इनको विक्रम संवत्का प्रवर्तक माननेमें आपत्ति उठती है। ३—ईस्वी पूर्व शताब्दीमें शकोंको परास्त करने वाले, विद्वानोंको विपुल दान देनेवाले, उज्जयिनीनरेश राजा विक्रमादित्यके अस्तित्वका पता चलता है। राजा हालकी गाथासप्तशतीमें [रचनाकाल प्रथम शताब्दी] एक प्रतापी राजाका नाम विक्रमादित्य आता है [५।६४]। मेरुतुङ्गाचार्यकी बनाई पट्टावलीसे पता चलता है कि

उज्जयिनीके राजा गर्दभिल्लके पुत्र विक्रमादित्यने शकोंसे उज्जयिनीका राज्य लौटाया था। यह घटना महावीरके निर्वाणके ४७० वर्ष में [५२७–४७० = ५७ ईस्वी पूर्व] हुई थी। शकोंके आक्रमणको विफल बनाकर इन्होंने शकारि उपाधि धारण की थी। विक्रमादित्य मालवागणराज्यके मुखिया थे। इसलिए विक्रम संवत्को मालवा संवत् भी कहते हैं।
४—बौद्ध कवि अश्वघोषका समय निश्चित है। कुषाणनरेश कनिष्कके समकालीन होनेसे इनका समय ईस्वी सन् प्रथम शताब्दीका उत्तरार्द्ध है। इनके और कालिदासके काव्योंमें बहुत समानता है। बुद्धचरित तथा सौन्दरनन्द काव्यमें कालिदासके बहुतसे श्लोकोंका प्रभाव स्पष्ट दीख पड़ता है। इस दृष्टिसे भी कालिदासका समय, ईस्वी पूर्व प्रथम शतक होता है। [देखिये अश्वघोष]।

इनके सिवा श्री वैलंडे गोपाल ऐय्यरने अपनी पुस्तक 'प्राचीन भारतका तिथिक्रम' [क्रोनोलॉजी ऑफ एन्शंट इण्डिया, पृष्ठ १७५] में विक्रमसंवत्का प्रवर्त्तक सौराष्ट्रके महाक्षत्रप चाष्टन्को प्रतिपादित किया है। विक्रम संवत् वास्तवमें मालव संवत् है। कुषाणों-द्वारा इस संवत्का आरम्भ नहीं हो सकता। क्षत्रपोंके अतिरिक्त किसी अन्य दीर्घजीवी राजवंशका पता नहीं चलता जिसने मालवा प्रान्त पर अधिकार किया हो। रुद्रदामन्के गिरनार लेखमें हम पढ़ते हैं कि सब वर्णोंने अपनी रक्षाके लिए उसको अपना अधिपति चुना था। अतः यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मालवा और गुजरातकी सब जातियोंने उनको अपना राजा चुना था; इसके पूर्व भी उन्होंने रुद्रदामन्के पिता जयदामन् और उसके पितामह चाष्टन्को चुना था। पश्चिमके सब राजाओंने अपनी एकताको स्थायी रखनेके लिए चाष्टन्के आगे सिर झुकाकर उसके नेतृत्वमें अपनेको एकत्र किया था। यह घटना ईस्वी सन् से ५७ वर्ष पूर्व हुई। तभीसे मालवमें संवत् प्रचलित हुआ।

स्वर्गीय डाक्टर काशीप्रसाद जायसवाल जैन अनुश्रुतियोंके आधार

पर विक्रमादित्यको गौतमीपुत्र शातकर्णी मानते हैं। प्रथम शताब्दी ईस्वी पूर्वमें मालवामें मालव गण था, जैसा कि वहांके प्राप्त सिक्कोंसे सिद्ध होता है। शातकर्णी और मालवकी संयुक्त शक्तिने शकोंको पराजित किया। इसलिए मुख्य भाग लेनेवाले शातकर्णीको 'विक्रमादित्य' के विरुदसे अलंकृत किया गया। परन्तु गौतमीपुत्र शातकर्णीने शकोंको ही केवल नहीं हराया था, अपितु शक, छहरात, अवन्ति आदि अनेक प्रान्तों पर राज्य भी किया था। साहित्य या उत्कीर्ण लेखोंसे भी यह स्पष्ट नहीं होता कि किसी सातवाहन राजाने विक्रमादित्यकी उपाधि धारण की थी। सातवाहन राजाओंका तिथिक्रम अभी तक अनिश्चित है। अधिक मान्यता यही है कि कण्वोंके पश्चात् साम्राज्यवादी सातवाहनोंका प्रादुर्भाव हुआ है, जो पहली शताब्दी ईस्वी पूर्वके उत्तरार्द्धमें हुआ। इसलिए आंध्र वंशका तेईसवां राजा गौतमीपुत्र शातकर्णी प्रथम शताब्दी ईस्वी पूर्वमें नहीं रक्खा जा सकता। सातवाहन राजाओंके लेखोंमें जो तिथियाँ दी हैं, वे उनके राज्य-वर्षों की हैं; उनमें विक्रम संवत् या अन्य किसी क्रम-बद्ध संवत्का उल्लेख नहीं है। आन्ध्रवंशके सत्रहवें राजा हालके समयमें लिखित ग्रन्थ—गाथा सप्तशतीमें विक्रमादित्यके अस्तित्व और यशका उल्लेख मिलता है, इसलिए इस वंशका तेईसवां राजा गौतमी-पुत्र शातकर्णी कभी विक्रमादित्य नहीं हो सकता।

निष्कर्ष—जिस विक्रमादित्यके साथ कालिदासका सम्बन्ध है, उसका नाम विक्रमादित्य है और उपाधि 'साहसाङ्क' है; यथा—

[अ] **आर्ये रसभावविशेषदीक्षागुरोः विक्रमादित्यस्य साहसाङ्कस्याभिरूप-भूयिष्ठेयं परिषत्। अस्याञ्च कालिदासप्रयुक्तेनाभिज्ञानशाकुन्तलेन नवेन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभिः [नान्द्यन्ते]।**

[आ] **भवतु तव बिडौजाः प्राज्यवृष्टिः प्रजासु**
त्वमपि विततयज्ञो वज्रिणं भावयेथाः।

गणशतपरिवर्तैरेवमन्योन्यकृत्यै-
नियतमुभयलोकानुग्रहश्लाघनीयैः ॥ —भरत-वाक्य

विक्रमादित्यकी राजधानी मालवा प्रदेशकी उज्जयिनी थी। विक्रमादित्यको शकारिके नामसे सम्बोधित किया जाता था। इनका संवत् ईस्वी सन् से ५७ वर्ष पूर्व था। ये ही कालिदासके आश्रयदाता थे।[1]

कालिदासके ग्रन्थ—सामान्यतः ऋतुसंहार, कुमारसम्भव, रघुवंश, मेघदूत, विक्रमोर्वशीय, मालविकाग्निमित्र और अभिज्ञानशाकुन्तल, इन छः काव्योंको ही कालिदासकी रचना माना जाता है।

राजशेखर [१०शतक] तीन कालिदासोंका संकेत करता है।[2] इसका कारण यही है कि कालिदासकी ख्याति होनेसे पिछले कवियोंने भी अपने कुछ ग्रन्थ कालिदासके नाम पर जोड़ दिये या अपना नाम ही कालिदास रख दिया। इसीसे कुछ लोग ऋतु-संहारको कालिदासकी कृति नहीं मानते, दूसरे इसको कविकी बाल्यकालीन रचना मानते हैं; क्योंकि इसमें कालिदासकी कमनीय शैली या वाग्वैदग्धताका परिचय नहीं मिलता। कुमारसम्भवके सतरह सर्गोंमें कवि-द्वारा लिखे आठ ही सर्ग माने जाते हैं; नवेंसे सतरह सर्ग तक पीछे किसी कविके बनाये कहे जाते हैं। रघुवंश कविकी सर्वोत्कृष्ट और अन्तिम रचना है। मेघदूत एक खण्डकाव्य है। इसकी लोकप्रियता तथा व्यापकताका निदर्शन इसकी विपुल टीका-सम्पत्तिसे [लगभग पचास टीकाओंसे] स्पष्ट है। तिब्बती और सिंहली भाषाओंमें भी इसका अनुवाद हुआ है।

---

१. श्री राजबली पाण्डेयजी, एम० ए०, डि०-लिट्० के विक्रमादित्य लेखके आधारपर तथा उसमें उद्धृत स्वर्गीय पं० केशवप्रसादजी मिश्रके यहाँ सुरक्षित अभिज्ञानशाकुन्तलकी हस्तलिखित प्रति [प्रति-लेखन काल अगहन सुदी ५, संवत् १६९९ विक्रमी] के वचन।

२. एको न जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्।
श्रृंगारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ॥

शेष तीन नाटक हैं। इनमें शाकुन्तलकी ख्याति सब नाटकोंमें अधिक है। इसके लिए निम्न श्लोक बहुत प्रसिद्ध है—

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम्॥

सम्भवतः विक्रमोर्वशीय और मालविकाग्निमित्रके पीछे इस नाटककी रचना हुई हो, तभी इसमें चरम सौष्ठव और पूर्णता मिलती है।

इन्हीं ग्रन्थोंमें से आयुर्वेदके वचन संग्रह किये हैं। यथा—

आयुर्वेदके वचन

हंसोदक—दिनमें सूर्यकी किरणोंसे गरम किया, रातमें चन्द्रमाकी किरणोंसे शीतल हुआ, समय पर पका, निर्दोष तथा अगस्त्य नक्षत्रके द्वारा निर्मल जल, हंसोदक कहा जाता है। इस प्रकारका जल स्नान-पान और अवगाहन कार्यके लिए अमृतके समान है [चरक-सू०अ०६।४७]।

कालिदासने रघुवंशमें अगस्त्य नक्षत्रसे पानीकी निर्मलताको सूचित किया है—

[१] **भ्रूभेदमात्रेण पदान्मघोनः प्रभ्रंशयां यो नहुषं चकार।**
तस्याविलाम्भःपरिशुद्धिहेतोर्भौमो मुनेः स्थानपरिग्रहोऽयम्॥

—रघु० १३।३६।

[२] **प्रससादोदयादम्भः कुम्भयोनेर्महौजसः।**
रघोरभिभवाशङ्कि चुक्षुभे द्विषतां मनः॥ —रघु० ४।२१।

मुखकी कान्ति—मुखकी कान्तिके वर्णनके लिए शकाङ्गनाओंकी कपोलकान्तिका उल्लेख संग्रहमें पलाण्डुके वर्णनमें आया है; यथा—

यस्योपयोगेन शकाङ्गनानां लावण्यसारादि विनिर्मितानाम्।
कपोलकान्त्या विजितः शशाङ्को रसातलं गच्छति निर्विदेव॥—संग्रह

कालिदासने भी यवन-स्त्रियोंके मुखको सुन्दर बताया है। यथा—

यवनीमुखपद्मानां सेहे मधुमदं न सः।
बालातपमिवाब्जानामकालजलदोदयः॥—रघु० ४।६१।

विष भी अमृत हो जाता है और अमृत भी विष हो जाता है--मद्य और विष भी युक्तिपूर्वक बरतनेसे अमृत होते हैं। अन्न भी अयुक्तिपूर्वक प्रयोग करनेसे मारक हो जाता है।

किन्तु मद्यं स्वभावेन यथैवान्नं तथा स्मृतम् ।
अयुक्तियुक्तं रोगाय युक्तियुक्तं यथाऽमृतम् ॥
प्राणाः प्राणभृतामन्नं तदयुक्त्या निहन्त्यसून् ।
विषं प्राणहरं तच्च युक्तियुक्तं रसायनम् ॥

—चरक० चि० अ० २४।५६–६०।

कालिदासने विषके अमृत होनेमें और अमृतके विष होनेमें ईश्वरकी इच्छा कारण मानी है—

स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम् ।
विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ॥—रघु० ८।४६।

आयु शेष रहने पर औषध काम करती है—मरणासन्न रोगी की—जिस रोगीमें अरिष्ट लक्षण उपस्थित हों, उसकी चिकित्सा करनेका निषेध आयुर्वेदमें है; क्योंकि इससे लोकमें अपवाद मिलता है। इसीसे आयु शेष होने पर ही चिकित्सा करनी चाहिए—

असिद्धिमाप्नुयाल्लोके प्रतिकुर्वन् गतायुषः ।
अतोऽरिष्टानि यत्नेन लक्षयेत् कुशलो भिषक् ॥—सुश्रुत. सू. अ २८।७।
पादाः समेताश्चत्वारः सम्पन्नाः साधकैर्गुणैः ।
व्यर्था गतायुषो द्रव्यं विना नास्ति गुणोदयः ॥—चरक. इन्द्रिय० ११।२९।

कालिदासने भी आयु शेष रहनेपर ही प्रतिकार करना कहा है। यथा—

नृपतेर्व्यजनादिभिस्तमो नुनुदे सा तु तथैव संस्थिता ।
प्रतिकारविधानमायुषः सति शेषे हि फलाय कल्प्यते ॥—रघु० ८।४०।

गर्भवती स्त्रीके लक्षण—कालिदासने गर्भवतीके लक्षणोंमें मुख, स्तन तथा उसकी रुचिका विशेष रूपमें उल्लेख किया है। आयुर्वेद-ग्रन्थोंमें इन लक्षणोंका उल्लेख है। यथा—

१–श्रद्धा प्रणयनश्चोच्चावचेषु भावेषु, चक्षुषोः ग्लानिः, स्तनमण्डलयोश्च कार्ष्ण्यमत्यर्थम्। २–सा यद्यदिच्छेत्तत्तदस्यै दद्यात्।

—चरक; शा. अ. ४।

कालिदासने भी इन्हीं लक्षणोंका उल्लेख किया। इसीलिए दिलीप सदा यह जानना चाहता था कि राजमहिषी किस वस्तुकी चाह करती है, जिससे उसकी इच्छा पूरी की जाये। देखिये—

[१] आविलपयोधराग्रं लवलीदलं पाण्डुराननच्छायम्।
कानि दिनानि वपुरभूत्केवलमलसेक्षणं तस्याः॥ विक्र० ५।५।

[२] शरीरसादादसमग्रभूषणा मुखेन सालक्ष्यत लोध्रपाण्डुना।
तनुप्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी॥–रघु० ३।२।

[३] न मे ह्रिया शंसति किञ्चिदीप्सितं स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी।
इति स्म पृच्छत्यनुवेलमादृतः प्रियासखीरुत्तरकोशलेश्वरः॥–रघु० ३।५।

रामने भी गर्भवती सीताकी इच्छाको जान कर ही वनमें भेजा था—
तामङ्कमारोप्य कृशाङ्गयष्टिं वर्णान्तराक्रान्तपयोधराग्राम्।
विलज्जमानां रहसि प्रतीतः पप्रच्छ रामां रमणोऽभिलाषम्॥–रघु. १४।२।

एक ही श्लोकमें तीनों लक्षण जड़ दिये।

स्तनोंमें कृष्णता—

दिनेषु गच्छत्सु नितान्तपीवरं तदीयमानीलमुखं स्तनद्वयम्।
तिरश्चकार भ्रमराभिलीनयोः सुजातयोः पङ्कजकोषयोः श्रियम्॥–रघु. ३।८।

क्षयरोग—चरकमें क्षयरोगका इतिहास अत्रिपुत्रने दिया है; यथा—रोहिणीके साथ अति आसक्ति करनेसे दक्षके शापसे चन्द्रमाको क्षय रोग हुआ। इस कथानकका उल्लेख जहाँ कालिदासने किया है, वहाँ पर अग्निवेषको अति स्त्रीसंसर्गसे क्षयरोग होनेका भी वर्णन किया है; साथ ही रोग प्रजामें न फैले, इसलिए उसके शवको घरकी वाटिकामें ही जला दिया था। यथा—

दक्षस्य शापेन शशी क्षयीव, प्लुष्टो हिमेनेव सरोजकोशः ।
वहन्विरूपं वपुरुग्ररेतश्चयेन वह्निः किल निर्जगाम ॥
—कुमार० ६।१७।

तं प्रमत्तमपि न प्रभावतः शेकुराक्रमितुमन्यपार्थिवाः ।
आमयस्तु रतिरागसंभवो दक्षशाप इव चन्द्रमक्षिणोत् ॥ ४८ ॥
दृष्टदोषमपि तन्न सोऽत्यजत् संगवस्तु भिषजामनाश्रवः ।
स्वादुभिस्तु विषयैर्हृतस्ततो दुःखमिन्द्रियगणो निवार्यते ॥ ४९ ॥
तस्य पाण्डुवदनाल्पभूषणा सावलम्बगमना मृदुस्वना ।
राजयक्ष्मपरिहानिराययौ कामयानसमवस्थया तुलाम् ॥ ५० ॥
व्योम पश्चिमकलास्थितेन्दु वा पङ्कशेषमिव घर्मपल्वलम् ।
राज्ञि तत्कुलमभूत्क्षयातुरे वामनार्चिरिव दीपभाजनम् ॥ ५१ ॥
स त्वनेकवनितासखोऽपि सन्पावनीमनवलोक्य संततिम् ।
वैद्ययत्नपरिभाविनं गदं न प्रदीप इव वायुमत्यगात् ॥ ५२ ॥
तं गृहोपवन एव संगताः पश्चिमक्रतुविदा पुरोधसा ।
रोगशान्तिमुपदिश्य मन्त्रिणः संभृते शिखिनि गूढमादधुः ॥ ५४ ॥
—रघु० १९।

चरकमें पढ़ते हैं—जब पुरुष अति प्रबल कामेच्छासे प्रेरित होकर स्त्रियोंमें अधिक आसक्ति करना प्रारम्भ करता है, तब अतिसम्भोगके कारण शुक्रका क्षय हो जाता है। शुक्रके क्षय होनेपर भी जब मनुष्यका मन स्त्रियों से नहीं हटता अपितु उनमें अधिक प्रवृत्त होता है, तब संकल्पके किये बिना ही [**अप्रणीतसंकल्पस्य**] मैथुन करते हुए इस पुरुषका शुक्र प्रवृत्त नहीं होता; क्योंकि शुक्रका क्षय बहुत बड़ी मात्रामें हो चुका होता है। इसीसे कहा है—

आहारस्य परं धाम शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः ।
क्षयो ह्यस्य बहून् रोगान्मरणं वा नियच्छति ॥—चरक० नि० अ० ६।११

हल्का पानी [लघुपयः]—पानी भारी और हल्काके भेदसे दो प्रकारका

है—वर्षाका नया जल भारी, अभिष्यन्दि है। शरद् ऋतुका जल लघु और अनभिष्यन्दि है। शरद् ऋतुका यह जल पथ्य है। राजाओंके एवं राजाओंके समान ऐश्वर्य-युक्त जीवन बिताने वाले तथा सुकुमार व्यक्तियोंके लिए शरद् ऋतुका पानी उत्तम है [चरक०सू०अ०२७]। पत्थरोंकी चपेटोंसे टकराने पर, तथा जोरसे ऊपरसे नीचे गिरनेके कारण पानीका शोधन होकर पानीमें लघुता आ जाती है; यथा—

उपलास्फालनाक्षेपविच्छेदैः खेदितोदकाः।

हिमवन्मलयोद्भूता पथ्याः······॥—संग्रह

इसी तरहके लघु पानीको पीनेकी सलाह कालिदासने मेघको दी है—

खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र

क्षीणः क्षीणः परिलघु पयः स्रोतसां चोपभुज्य ॥—मेघदूत पूर्व० १३।

गर्भाधान रात्रिमें करना चाहिए और उस समय मन्द दीपक रखना चाहिये—इस विषयकी विस्तृत चर्चा संस्कारविधि विमर्शमें [पृष्ठ ४०–८२ पर] की जा चुकी है। महाभारतमें भगवान् व्यासने विचित्रवीर्यकी स्त्रियोंमें गर्भाधान रात्रिमें ही किया था। इसीसे मेघदूत और कुमारसम्भवमें हम देखते हैं कि—

यत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजोच्छ्वासितालिङ्गिताना-

मङ्गग्लानिं सुरतजनितां तन्तुजालावलम्बाः।

त्वत्संरोधापगमविशदैश्चन्द्रपादैर्निशीथे

व्यालुम्पन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ताः ॥—मेघ.उ. ६।

वनेचराणां वनितासखानां दरीगृहोत्संगनिषक्तभासः।

भवन्ति यत्रौषधयो रजन्यामतैलपूराः सुरतप्रदीपाः ॥

—कुमार० १।१०।

अर्चिस्तुङ्गानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपान्

ह्रीमूढानां भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः ॥

—मेघ० उत्तर० ६।

गर्भका जरायुमें लिपटा होना—गर्भावस्थामें गर्भ एक झिल्लीके अन्दर लिपटा रहता है—

नोर्ध्वमीक्षणगतिर्न चाप्यधो नाभितो न पुरतो न पृष्ठतः ।
लोक एष तिमिरौघवेष्टितो गर्भवास इव वर्त्तते निशि ॥

—कुमार० ८।५६।

केशोंको धूप देना—प्राचीनकालमें केशोंकी रक्षाके लिए, इनमें उत्पन्न हुए कृमि-जूँ आदिको मारनेके लिए, केशोंको सुखानेके लिए अगरु, चन्दन आदि सुगन्धित वस्तुओंसे धुँवा दिया जाता था। यथा—

गात्राणि कालीयकचर्चितानि सपत्रलेखानि मुखाम्बुजानि ।
शिरांसि कालागुरुधूपितानि कुर्वन्ति नार्यः सुरतोत्सवाय ॥

—ऋतु० ४।५।

धूमोष्मणा त्याजितमार्द्रभावं केशान्तमन्तःकुसुमं तदीयम् ।
पर्याक्षिपत्काचिदुदारबन्धं दूर्वावता पाण्डुमधूकदाम्ना ॥

—कुमार० ७।१४।

हिमालयका वर्णन

कालिदासके कुमारसम्भवमें हिमालयका जैसा सुन्दर वर्णन मिलता है; उसीके जोड़का वर्णन नावनीतकम्में भी मिलता है। नावनीतक चौथी सदीका प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थ है, जो कि बावर पाण्डुलिपियोंमें से एक है।

कालिदासका वर्णन—

अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम् ।
एको हि दोषो गुणसंनिपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ॥ ३ ॥
आमेखलं सञ्चरतां घनानां छायामधः सानुगतां निषेव्य ।
उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयन्ते शृङ्गाणि यस्यातपवन्ति सिद्धाः ॥ ५ ॥
पदं तुषारस्रुतिधौतरक्तं यस्मिन्नदृष्ट्वापि हतद्विपानाम् ।
विन्दन्ति मार्गं नखरन्ध्रमुक्तैर्मुक्ताफलैः केसरिणां किराताः ॥ ६ ॥

यः पूरयन् कीचकरन्ध्रभागान् दरीमुखोत्थेन समीरणेन ।
उद्गास्यतामिच्छति किन्नराणां तानप्रदायित्वमिवोपगन्तुम् ॥ ८ ॥
वनेचराणां वनितासखानां दरीगृहोत्सङ्गनिषक्तभासः ।
भवन्ति यत्रौषधयो रजन्यामतैलपूराः सुरतप्रदीपाः ॥१०॥
—कुमार०

नावनीतकका वर्णन—

यः सेव्यते मुनिगणैरनिशं सशिष्यैः नैकैः समित्कुशफलोदकपुष्पहस्तैः ।
स्वर्गाङ्गनाभिरपि च प्रविमृष्टशाखाः कुञ्जेषु यस्य तरवः कुसुमार्थिनीभिः ॥
यत्र त्रिलोचनजटामुकुटैकदेश-नित्यस्थितोडुपतिदीधितिसंप्रयोगात् ।
शीतान्दिवापि हिमवत्स्फटिकोपलाभमब्बिन्दुकान्तमणयः प्रचुरं स्रवन्ति ॥
यस्याब्दमुक्तजलधौतशिलातलेषु कुञ्जेषु नैकविधवीगणनादितेषु ।
रम्येषु पुष्पफलदद्रुमसङ्कटेषु रात्रौ हुताशनवदौषधयो ज्वलन्ति ॥
चन्द्रांशुगौरतरकेसरभारभृद्भिः मत्तेभमस्तकतटक्षतजोक्षितांशैः ।
सिंहैः शिलोच्चयगुहावदनाट्टहासैर्न क्षम्यतेऽम्बुधरवृन्दरवोऽपि यत्र ॥
तस्मिन् गिरावविनमण्डलमण्डभूते सर्वातिथाविव जगद्विभवप्रदानैः ।
सर्वर्तुपुष्पफलवद्द्रुमरम्यसानावेते विधूततमसो मुनयो वसन्ति ॥
नावनीतक ।

चरकमें—

[१] कृतक्षणं शैलवरस्य रम्ये स्थितं धनेशायतनस्य पार्श्वे ।
महर्षिसङ्घैः वृतमग्निवेशः पुनर्वसुं प्राञ्जलिरन्वपृच्छत् ॥

[२] अपगतग्राम्यदोषं शिवं पुण्यमुदारं मेध्यमगम्यमसुकृतिभिः गङ्गाप्रभवममरगन्धर्वयक्षकिन्नरानुचरितमनेकरत्ननिचयमचिन्त्याद्भुतप्रभावं ब्रह्मर्षिसिद्धचारणानुचरितं दिव्यतीर्थौषधिप्रभवमतिशरण्यं हिमवन्तममराधिपाभिगुप्तं जग्मुः ॥ —चि०अ० १।३ ।

तीनों वर्णनोंमें कितना अधिक साम्य है, यह इससे स्पष्ट है ।

कुत्तोंमें पागलपन (अलर्क विष) कार्त्तिक मासमें आता है—

कफसे दूषित वायु संज्ञावह स्रोतोंका आश्रय लेकर जब संज्ञाको नष्ट करती है,

तब कुत्ते, शृगाल आदि जानवरोंमें उन्मत्तता आती है। तब यह अन्धा और बहरा बन जाता है और दूसरे प्राणीको काटनेके लिए दौड़ता है [सुश्रुत० कल्प० ७।४३]। कालिदासने बताया है कि यह अवस्था कार्तिक मासमें होती है। सामान्यतः शरद् या वसन्त कालमें यह स्थिति देखी जाती है; देखिये—

कटुस्वरैः प्रालपथाम्बरस्थिताः शिशोर्बलात्षड्दिनजातकस्य किम् ?
श्वानः प्रमत्ता इव कार्त्तिके निशि स्वैरं वनान्ते मृगधूर्तका इव ॥

—कुमार० १५।४१।

सर्पदष्टचिकित्सा—सर्पदष्ट चिकित्सामें बन्धन, आचूषण, दाह और छेदन ये चार कर्म सब स्थानोंमें उपयोगी हैं; यथा सुश्रुतमें पढ़ते हैं—

दहेद् दंशमथोत्कृत्य यत्र बन्धो न जायते ।
आचूषणच्छेददाहाः सर्वत्रैव तु पूजिताः ॥

—सुश्रुत० कल्प ५।५।

मालविकाग्निमित्रमें भी यही उपाय हम पढ़ते हैं; यथा—

तेन हि दंशच्छेदः पूर्वकर्मेति श्रूयते स तावदस्य क्रियताम् ।
छेद्यो दंशस्य दाहो वा क्षतेर्वा रक्तमोक्षणम् ।
एतानि दष्टमात्राणामायुष्याः प्रतिपत्तयः ॥ —मालवि० ४।४।

रक्तमोक्षणके लिए सुश्रुतमें कहा है कि रक्त निकलनेसे सब विष निकल जाता है। इसलिए सर्पसे काटे मनुष्यमें रक्तका स्राव करना चाहिये, यही इसकी सर्वोत्कृष्ट चिकित्सा है [सुश्रुत० क० अ० ५।१५]। मालविकाग्निमित्रमें जीव-सिद्धि द्वारा विदूषककी चिकित्सा की जाती है। साँपके काटनेमें दो दाँतके निशान होते हैं, इस बातको भी कालिदास नहीं भूले [**नन्वेते द्वे दंशनपदे**]। साँपके काटनेका निश्चय हो जाने पर विष-वैद्य-द्वारा चिकित्सा की जाती है। ध्रुवसिद्धिसे चिकित्सा किये जानेपर विषका भय जाता रहा है।

निर्मली पानीको साफ करती है—सुश्रुतमें मैले पानीको साफ करनेके लिए कतक (निर्मली), गोमेदक, विसग्रन्थि, शैवाल, वस्त्र, मुक्ता और

मणि वस्तुएँ बताई हैं [सुश्रुत० सूत्र० अ० ४५।१७]। मालविकाग्निमित्र में भी कतकके लिए पङ्कच्छिदः शब्दका प्रयोग मिलता है; यथा—

पङ्कच्छिदः फलस्येव निकषेणाविलं पयः ।
मन्दोऽप्यमन्दतामेति संसर्गेण विपश्चितः ॥—२।७ ।

भोजन समयपर करना चाहिए—समय निकल जानेपर भोजन करनेपर वायुके द्वारा अग्नि नष्ट हो जानेसे किया हुआ भोजन देरमें पचता है और फिर दूसरे भोजनकी चाह नहीं रहती [सुश्रुत० सूत्र० अ० ४६]। इसी बातको विदूषक मालविकाग्निमित्रमें कहता है—

अविध अविध । अस्माकं पुनर्भोजनवेलोपस्थिता । अत्रभवत उचित-वेलातिक्रमे चिकित्सका दोषमुदाहरन्ति ॥

दरिद्र रोगी चाहता है कि वैद्य ही मुझे औषध दे दे—सुश्रुत में रोगीके चार गुण बताते समय आयुष्मान्, सत्त्ववान्, साध्य रोगसे पीड़ित, द्रव्यवान् (धनी), आस्तिक, जितेन्द्रिय, वैद्यके वाक्यमें श्रद्धा करनेवाला कहा है [सू० अ० ३५।२१]। बिना साधनवाले रोगीकी चिकित्सा करना निषिद्ध है [विहीनः करणैश्च यः—चरक सि० अ० २।५]। कालिदासने मनुष्यकी सामान्य रुचिका निर्देश किया है—

विदूषकः—[जनान्तिकम्] दरिद्र इवातुरो वैद्येनौषधं दीयमान-मिच्छसि ।

वैद्य असाध्य रोगीकी चिकित्सा नहीं करते थे—मरणासन्न [मुमूर्षु] रोगीकी चिकित्सा न करे। असाध्य रोगकी चिकित्सा करनेमें वैद्य की अर्थ, विद्या, यशकी हानि और निन्दा होती है; इसलिए असाध्य रोगीकी चिकित्सा न करे [चरक सू० अ० १०।८]। कालिदासने भी इस बातको स्पष्ट किया है कि उस समय वैद्य असाध्य रोगकी चिकित्सा नहीं करते थे, यथा—

विदूषकः—भण विश्रब्धं यदसि वक्तुकामः। असाध्य इति वैद्येनातुर इव स्वैरं मुक्तो भवांस्तत्रभवत्याः॥ —विक्रमोर्वशीयम्।

रोगको वास्तवमें जानकर ही चिकित्सा करनी चाहिये—आप्तोपदेशसे, प्रत्यक्षसे और अनुमानसे बुद्धिमानको रोग भली प्रकार जानना चाहिये। सब अवस्थाओंमें सब कुछ सोच समझकर, तत्त्व—वास्तविक-रूपसे रोगका निश्चय करके पीछे कार्य-चिकित्सा प्रारम्भ करनी चाहिए। जो तत्त्ववित् ज्ञान—बुद्धि दीपककी सहायतासे रोगीके अन्दर नहीं पैठ जाता, वह रोगीकी चिकित्सा नहीं कर सकता [चरक० वि० अ० ४।१२-१४]। इसीको कालिदासने शाकुन्तलमें बतलाया है—

विकारं खलु परमार्थतः अज्ञात्वाऽनारम्भः प्रतीकारस्य।—शाकुन्तल।

पहिले रोगकी परीक्षा करनी चाहिए, पीछे औषधका निश्चय करना चाहिये और इसके बाद करणीय कार्यमें हाथ डालना चाहिए। [चरक]।

व्यायामसे मेद कम होती है—सुश्रुतका कहना है कि स्थूलता—मोटापेको कम करनेके लिए व्यायामसे बढ़कर कोई उत्तम साधन नहीं है। [चि० अ० २४।४१]। कालिदासने भी मृगया रूपी व्यायामका एक लाभ मेदका कम होना बताया है; साथ-साथ उसमें विनोद भी है—

मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः। —शाकुन्तल २।५

[1]**कालिदासकी वनस्पतियाँ**—कालिदासके ग्रन्थोंमें मनःशिला, गेरु आदि खनिज, सरल-देवदारु जैसे बड़े वृक्ष, रातको प्रकाशित होने वाली तथा न प्रकाशित होनेवाली औषधियाँ, लता-वल्लरी, पृथ्वीके ऊपर फैलने वाले लत्तर (प्रतान), लम्बी और छोटी घास (शैवाल); जलपृष्ठ पर

---

१ यह शीर्षक श्री भगवतशरण उपाध्यायकी पुस्तक 'कालिदासका भारत'—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी के आधार पर है।

तैरने वाले जलीय पौधे या नदी-कूल या सरोवर और तालाबकी कीचमें नरकटकी तरह उत्पन्न होनेवाली चीजोंका उल्लेख है।

औषधि शब्दका प्रयोग साधारण और विशिष्ट दोनों अर्थोंमें आता है। साधारण अर्थमें छोटे पौधोंके लिए और विशिष्ट अर्थमें औषधिशब्द दो अभिप्रायसे मिलता है। एकमें वे औषधियाँ हैं जो बिना स्नेहके भी रातमें प्रकाश करती हैं [रघु० ४।७५; कुमार० १।१०]। दूसरे विशिष्ट अर्थमें वे औषधियां हैं जो दवाके काम आती हैं। इसमें जहाँ संजीवनीका समावेश है, वहां विषवल्लरीका भी समावेश इसीमें है। 'अपराजिता' एक विशेष बूटी थी, जो अभिमंत्रित गुटिकाके रूपमें कलाई या भुजापर आगन्तुक अनिष्टकी रक्षाके लिए बाँधी जाती थी [शाकुन्तल]।

वृक्षोंमें देवदारु, सरल, भूर्ज ये नाम मुख्यतः मिलते हैं; इन तीनोंका मुख्य स्थान हिमालय है। ये वृक्ष ५००० से ८५०० फुट की ऊँचाई पर होते हैं। देवदारुके साथ ही चीड़ और कैलके वृक्ष भी रहते हैं। कैलास पर देवदारुकी उत्पत्ति बताना [२३००० फुट पर] आलंकारिक वर्णन लगता है।

इनके सिवा पटारमें होने वाले अश्वत्थ, सेमल [शाल्मली], सप्तच्छद [सप्तपर्ण], नमेरु, आम्र—सहकार, अशोक, जम्बू, पनस, मधूक [महुआ], तिन्तड़ी [ईमली], नक्तमाल [करंज], शमी, अर्जुन, कुटज, सल्लकी, लोध्र, तिलक, कदम्ब, अगरु, अक्ष [बिभीतक-बहेड़ा], कुरबक, अक्षोट [अखरोट], इंगुदी [हिंगोट], विकंकत [बैंकड़], सिन्धुवार [निर्गुण्डी], बन्धुजीव, कर्णिकार [अमलतास], कोविदार [कचनार], मन्दार [आक], पारिजात [हारसिंगार], वकुल [मौलसरी], केशर, किंशुल [पलाश-ढाक], कन्दली, ताल [ताड़], पूग [सुपारी], राजताली [श्रीताल], पुन्नाग [नागकेसर], खजूर, नारिकेल, असिपत्र, चन्दनवन, तमालवृक्ष, रक्तचन्दन, एला [छोटी इलायची], लवंग, मरिच का उल्लेख किया गया है। लौंग और मरिच बाहरसे आती थी [**द्वीपान्तरानीतलवङ्गपुष्पैः— रघुवंश ६।५१**]। ताम्बूल लता, एला और पूग मलाया

स्थलीमें [मलवारमें] प्रचुरतासे उत्पन्न होती थी। रघुकी दिग्विजयमें भारतवर्षके उत्तरसे पश्चिम, वंक्षु नदीसे कामरूप, कैलाससे लंका तक सारे देशके मुख्य-मुख्य वृक्षोंका उल्लेख कालिदासके ग्रन्थोंमें मिलता है।

पौदे और लताएँ—इसमें पाटल, केतकी या केतक [केवड़े] का भी उल्लेख है, जो एक हरा-भरा पौधा है। चमेली, कुन्द, यूथिका [जूही] माधवी लता, मालती, नवमल्लिका या वनज्योत्स्नाका उल्लेख है। प्रियगु [घेंऊला] के लिए श्यामा और फलिनी शब्द आता है। प्रियंगुकी उपमा प्रमदागात्रयष्टिसे दी है [**प्रिये प्रियंगुप्रियविप्रयुक्ता विपाण्डुतां याति विलासिनीव; ऋतु० ४।११**]। मेघदूतमें अंगोंकी तुलना प्रियंगुलतासे की है [**श्यामास्वङ्गं—उत्तरमेघ ४४**]। प्रियगुका उपयोग कालीयक, केशर और कस्तूरीके साथ अंगरागके लिए भी होता था [ऋतु० ६।१४]। इसके पुष्प श्वेत होते थे। रजत-पुष्पावली माधवी एक वसन्त लता है। ग्रीष्मऋतुमें इसमें फूल लगते हैं, जिनसे मधुर पुष्प-रस निकलता है। अतिमुक्तलताकी ओर कविका ध्यान बहुत रहा [ऋतु० ६।१९]। कुरबक [नीलझिण्टी] को भी कविने नहीं छोड़ा [ऋतु० ६।२०]। लवली जिसको हरफ़ा रेवड़ी कहते हैं, और जिसका वृक्ष होता है, वह भी कविसे नहीं बची। अंगूरकी लता द्राक्षा और ताम्बूल वल्ली का भी उल्लेख है। द्राक्षासे मद्य बनता था।

कालिदास घटनावश दो वल्लिवर्गोंमें भिन्नता प्रकट करते हैं—उद्यानलता और वनलता। इसमें श्यामा, माधवी, अतिमुक्ता उद्यानलता हैं; ताम्बूल वल्ली दूसरे वर्गकी लता थी। इनके सिवाय अर्क, चम्पक, शेफालिका, शिलीन्ध्र, जपापुष्प और कुंकुमका उल्लेख है।

तृणोंका भेद भी कविके ग्रन्थोंमें वर्णित है—तृण, शष्प, शाद्वल, स्तम्ब और कन्दलीका उल्लेख मिलता है। कीचक-बांस [विशेष प्रकारके बांस जिनसे ध्वनि निकलती है, वायुके झोंकेके कारण], जिसको तृणध्वजाके नामसे कहा है; का विशेष उल्लेख है। यह हिमालय जैसे पर्वत पर होता था। काश एक लम्बी घास है, जिसमें शरद् ऋतुके समय श्वेत फूल आते हैं [मुद्राराक्षसमें

शरद् ऋतु कौमुदीमहोत्सवका वर्णन]। भद्रमुस्ता [केवड़ी मोथ] वह है जिसे शूकर बहुत खाते हैं। कुश–दर्भ, उशीर, दूर्वादल, शैलेय [शिलारस] और सुगन्धतृणका उल्लेख है।

जलीय पौधे—कमलके लिए अरविन्द, पंकज, सरसिज, उत्पल आदि नाम आते हैं। ये सूर्यकी किरणोंसे खिलते हैं। कुमुद श्वेत—उजली और कुवलय–नीली भेदसे दो प्रकारका है। पंकजके कई भेद थे—श्वेत, रक्त, नील और पीत; सित पंकजको पुण्डरीक; रक्तको तामरस या कल्हार कहते थे, नील कमलको इन्दीवर या नीलोत्पल; और पीतवर्ण पंकजको कनक कहते थे। पीतवर्ण केवल मानसरोवरमें ही होता था। कमलका डण्ठल नीवार मानसरोवरकी ओर जाने वाले हंसोंके लिए पाथेय था। शैवाल, वेतस, निचुल, वानीर आदिका भी उल्लेख मिलता है।

प्राणिवर्ग—पशुवर्गमें वन्य पशुओंमें सिंह, हाथी, हाथीशिशु, बाघ [व्याघ्र], शूकर, गेंड़ा [खड्ग], महिष, सुरगाय, वृष, हरिण, कस्तूरी मृग [मृगनाभि], कृष्णसार, वानर, शृगाल, विडाल और शरभका उल्लेख किया गया है।

पालतू पशुओंमें हाथी, तुरंग, गौ, वृष–ककुद्मान–बलीवर्द, उष्ट्र, वामी [खच्चर] का उल्लेख किया गया है। शिकारके लिए कुत्ते भी पाले जाते थे [श्वगणि]।

कीड़ोंमें, सर्प–भोगी–फणी; दीमकके लिए वल्मी और वीरबहूटीके लिए इन्द्रगोपका उल्लेख मिलता है।

जलचर प्राणियोंमें—मगर–नक्रके साथ तिमय [तिमिङ्गिल मछली जिसका दूधके साथ खाना विशेषतः निषिद्ध है–चरक सू. अ. २६] जल-महिष का उल्लेख है। मीन-मत्स्य, सफरी, रोहित [रोही] आदि मछलियोंके नाम उनको भिन्न-भिन्न जातियोंको सूचित करते हैं।

पक्षियोंमें—मयूर, शिखण्डी, वर्हा, कलापी शब्द मोरके लिए आये हैं। मोर पाले भी जाते थे [**भवनशिखी–रघु. १४।१५; भवनशिखिभिः—**

मेघ पू० ३४], चकोर, चातक, गृध्र, गरुड़ [काल्पनिक पक्षी]; श्येन; सारिका, हारीत [कबूतर या तोता है; इसका मांस एरण्डके साथ विरोधी हो जाता है—**हारीद्रकमांसं हारिद्रसीसकावसक्तं हारिद्राग्निप्लुष्टं सद्यो व्यापादयति—चरक. सू. अ. २६।८६**], पारावत, कपोत, कोकिल, शुक, हंस [राजहंस], बलाका, सारस, कारण्डव, चक्रवाक, कलहंस, कुररी, क्रौञ्च, कंक [जिसके नामपर सुश्रुतमें कंकमुख यंत्र बनाया]; शलभ, मधुमक्खियाँ और भ्रमरका उल्लेख है।

भोजन-पान—यव, शालि, कलमा, तिल, गुडविकार—मत्स्यण्डिका, मोदक, दूध, घी, मक्खन, दही, पायस, मधुका उल्लेख कविके ग्रन्थोंमें है। मांस-मद्यका सेवन था। आम, कदली प्रिय फल थे। मद्य-पान पुरुष और स्त्री दोनों करते थे, मद्यसे स्त्रियोंमें एक विशेष आकर्षण आता था [**पुष्पासवाघूर्णितनेत्रशोभि—कुमार. ३।३८**]; इन्दुमती और पार्वतीके मद्यपान का उल्लेख है, नारियलका भी मद्य बनता था। मद्यके लिए आसव, मधु, मदिरा, वारुणी, कादम्बिनी और सीधु शब्द आते हैं। महुवेके फूलोंसे बना मद्य पुष्पासव, गन्नेके रससे बना सीधु और नारियलसे बना नारिकेलासव होता था। मद्यको सुगन्धित करनेके लिए पाटलके पुष्प और आमकी मंजरियोंका प्रयोग होता था। मद्यकी दुर्गन्ध दूर करनेके लिए बिजौरेकी [बीजपूरककी] छालका व्यवहार होता था[1]। पानके पत्तोंमें सुपारी चबाई जाती थी।

---

१ तत्र रात्रिविशेषमनुलेपनं माल्यं सिक्थकरण्डकं सौगन्धिकपुटिका मातुलुंगस्त्वचस्ताम्बूलानि च स्युः।

सायं लीढ्वा कामी मध्वक्तं मातुलुङ्गदलकल्कम्।
स्त्रीभुजपञ्जरस्थः खलेन नहि हेष्यते मरुता॥ जयमंगल।

तत्र मधुमैरेयासवान् विविधलवणफलहरितशाकतिक्तकटुकाम्लोपदेशान् वेश्याः पाययेयुरनुपिबेयुश्च॥ —कामसूत्र ४।३८॥

मत्स्यण्डिकासे मदका नाश किया जाता था[1]। मदिरा-पान एक प्रचलित रिवाज था। स्त्रियाँ आप भी पीती थीं और दूसरोंको भी पिलाती थी। पान पात्र [**चषकोत्तरेव—रघु० ७।४९**] सड़कके किनारे मद्यशाला [**सौण्डि-आपणं—शाकुन्तल**]; मद्यपानकी खुली भूमि [**नक्तपानभूमिषु—कुमार० ६।४२**] का भी उल्लेख है।

चरक तथा आयुर्वेदके दूसरे ग्रन्थोंमें भी इन पौधों, लता-वृक्ष, पशु-पक्षी, मद्य तथा आहार-द्रव्योंका उल्लेख है। आम इतना प्रिय एवं घरेलू वृक्ष होने पर भी चिकित्सामें इसका उपयोग नहींके बराबर है। मधु-मद्य का उपयोग चरकमें भी आया है [चि. अ. ८।१६५]। मद्य-पान विधिका वर्णन अष्टांगसंग्रह तथा चरक संहितामें है। स्त्रियोंके साथ मद्य पीनेके सम्बन्धका उल्लेख अष्टांगसंग्रहमें है [संग्रह-चि. अ. ९]। मद्यको सुगन्धित करनेके लिए आम्रमञ्जरी, कपूर, मृगनाभिका उपयोग होता था [**चूत-रसेन्दुमृगैः कृतवासम्—संग्रह**]। जलचर पक्षियोंके लिए चरकमें दो विभाग हैं, एक वारिशय—मछली, कछुए, मकर आदि; दूसरे अम्बुचारी—हंस, कारण्डव, वक, क्रौञ्च, कंकमुख आदि। इसी प्रकार दूसरे प्राणियोंके भी भेद किये गये हैं।

चरकमें ओषधि शब्द वनस्पति, वीरुद्, वानस्पत्य और ओषधि इन चार के लिए आया है। इनमें जिन ओषधियोंका केवल फल आता है, फूल नहीं आता है—वे वनस्पति हैं; यथा गेहूँ गूलर आदि। जिनमें पुष्प आकर फल आता है—वे वानस्पत्य हैं; यथा तिल और मूँग। जिनका फल आने तक ही अस्तित्व रहता है—वे ओषधियाँ हैं; यथा—गेहूँ आदि। प्रतान वाली

---

१ मद्यं पीत्वा यदि वा तत्क्षणमेव लेह्यात् शर्करां सघृताम्।
मदयति जातु न मद्यं मनागपि प्रथितवीर्यमपि॥

मदयति न हि मद्यं जातुचित्पीतमद्यं
पिबति घृतसमेतां शर्करामेव सद्यः॥ —अजीर्णामृतमञ्जरी

ओषधियाँ वीरुद् हैं, यथा गिलोय। कालिदासने ओषधि शब्दसे प्रकाशयुक्त जो ओषधियाँ ली हैं, उनका उल्लेख आयुर्वेद-ग्रन्थोंमें नहीं है। प्रकाशमान वनस्पतियोंका वर्णन किसी आयुर्वेद-निघण्टुमें भी देखनेको नहीं आया, परन्तु गंगामें वर्षाऋतुके अन्दर बहती हुई ऐसी लकड़ियाँ प्रायः आ जाती हैं, जो रातको चमकती रहती हैं।

इस प्रकार कालिदासकी रचनाओंमें आयुर्वेदकी झलक व्यापक रूपमें मिल जाती है।

*

विष्णुशर्मा

विष्णुशर्माका बनाया पञ्चतन्त्र, कथाओंका संग्रह है। पञ्चतन्त्रके भिन्न-भिन्न शताब्दियोंमें तथा भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें अनेक संस्करण हुए, जिनमें कुछ आज भी उपलब्ध हैं। इनमें सबसे प्राचीन संस्करण 'तंत्राख्यायिका' के नामसे प्रसिद्ध है, इसका मूल काश्मीर है। आजकलका प्रचलित पञ्चतन्त्र इसीके मूलरूपपर आधृत है।

पञ्चतन्त्रमें पांच तंत्र हैं—मित्रभेद, मित्र-लाभ, काकोलूकीय, लब्ध-प्रणाश और अपरीक्षितकारक। प्रत्येक तंत्रमें मुख्य कथा एक ही है, जिसके अंगको पुष्ट करनेके लिए अनेक गौण कथाएँ कही गई हैं।

दक्षिणके महिलारोप्य नामक नगरमें अमरकीर्त्ति नामक राजा रहते थे। उनके मूर्ख पुत्रोंको विद्वान्, नीतिकुशल, लोकव्यवहारज्ञ बनानेके लिए विष्णुशर्मा ब्राह्मणने इसकी रचना की थी।

समय—विशाखदत्त कृत मुद्राराक्षस नाटकमें चाणक्यका यह कहना कि '**अस्ति मम सहाध्यायी मित्रः विष्णुशर्मा नाम ब्राह्मण :**—मेरा सहपाठी विष्णुशर्मा नामक ब्राह्मण है; जो नीतिविद्यामें कुशल है। इससे अनुमान होता है कि ये भी चाणक्यके समकालीन होंगे।

पञ्चतन्त्र यों तो नीति, लोक-व्यवहार तथा सदाचारकी शिक्षा देता है, फिर भी इसमें विनोद मिलता है। इसके साथ ही कहीं-कहीं आयुर्वेदकी झलक भी मिल जाती है।

आयुर्वेदके वचन

सर्पकी वसाका नेत्र रोगोंमें उपयोग—आयुर्वेद-ग्रन्थोंमें काले साँपका उपयोग कई प्रकारसे आता है। यथा—१—काले साँपके मुखमें अंजनको एक मास तक रखकर पीछेसे उसका चूर्ण करे। इस चूर्णमें चमेली की डोड़ी और आधा भाग सैन्धव मिलाये [चरक चि. अ. २६।२५६]।

यह योग सुश्रुतमें भी मिलता है, केवल वहाँ पर साँपको कुशामें लपेटनेके लिए अधिक कहा है। २—काले साँपके सिरको दूधमें पकाये; इस दूधसे घी निकालकर इसमें चन्दन, खस, शर्करा, कमलका कल्क मिला कर इस घीका दूधमें पाक करे [संग्रह]। ३—काले तिलोंको साफ करके दूधसे भावना देकर सुखा ले। इसमें मिश्री, मुलैहठी, नमक और काले साँपके शिरकी अन्तर्धूम विधिसे जलाकर बनाई हुई मसी मिलाये [संग्रह]। ४—गोह, साँप, बकरी इसकी चर्बीसे सैन्धव, पिप्पली और रसौतको भावना दे [उसमें डालकर रख दें]। एक मास तक इस प्रकार रक्खे।

पञ्चतन्त्रमें साँपके पकानेसे निकले हुए धुवेंसे—वाष्पसे अन्धेको दृष्टि-प्राप्तिका उल्लेख किया गया है, यथा—

"अन्यदा कुब्जकेन परिभ्रमता मृतः कृष्णसर्पः प्राप्तः। तं गृहीत्वा प्रहृष्टमना गृहमभ्येत्य तामाह—सुभगे, लब्धोऽयं कृष्णसर्पः। तदेनं खण्डशः कृत्वा प्रभूतशुण्ठ्यादिभिः संस्कार्यास्मै विकलनेत्राय मत्स्यामिषं भणित्वा प्रयच्छ; येन द्रागविनश्यति।······················सापि प्रदीप्ते वह्नौ कृष्णसर्पं खण्डशः कृत्वा तक्रमादाय गृहव्यापारकुशला तं विकलाक्षं सप्रश्रयमुवाच-आर्यपुत्र; तवाभीष्टं मत्स्यमांसं समानीतम्। ते च मत्स्या वह्नौ पाचनाय तिष्ठन्ति। त्वं दर्वीमादाय क्षणमेकं तान्युच्चालय।·········अथ तस्य मत्स्यान्मन्थतो विषगर्भवाष्पेण संस्पृष्टं नीलपटलं चक्षुर्भ्यामगलत्। असावप्यन्धो बहुगुणं मन्यमानो विशेषान्नेत्राभ्यां वाष्पग्रहणमकरोत्। ततो लब्धदृष्टिर्जातो यावत्पश्यति तावत्तक्रमध्ये कृष्णसर्पखण्डानि केवलान्यवलोकयति॥"

—अपरीक्षितकारक

इसी प्रकार घोड़ोंके जलनेमें बन्दरोंकी वसाका उपयोग भी इसमें बताया है [अपरीक्षितकारक]। मद्यकी अवस्थाके लक्षण भी इसमें स्पष्ट हैं,—विकलता, भूमि पर गिरना, अप्रासंगिक बोलना, हाथोंको इधर उधर चलाना, वस्त्रोंको उतारना, तेजकी हानि और रागवृत्ति ये लक्षण मद्यपानमें होते हैं [मित्रभेद. १८८।१८९]।

———

हाल

इनकी गाथासप्तशती प्राकृतकी है। गोवर्धनाचार्यकी आर्यासप्तशती संस्कृतकी है। गाथा सप्तशतीमें से एक ही उदाहरण यहाँ उपस्थित है।

गर्भाधानमें स्थिति—न्युब्जावस्था या पार्श्वके भार लेटकर गर्भाधान नहीं करना चाहिए। न्युब्जावस्था [मुख नीचे किये] में वायु बलवान होती है; यह योनिको दबाती है। पार्श्वके भार लेटनेसे दक्षिण पार्श्वमें कफ रहता है, वह गिरकर गर्भाशयके मुखको बन्द कर देता है। वाम पार्श्वमें पित्त है; इसके दबनेसे पित्त और शुक्र विकृत होते हैं। इसलिए पीठके भार चित्त लेटकर गर्भ धारण करे [चरक शा. अ. ८]।

वात्स्यायन कामसूत्रमें पुरुषायित क्रियाका उल्लेख है। [अधिकरण २।८]. इसमें स्त्री न्युब्जावस्थामें रहकर पुरुषका आचरण करती है। चरकमें इस स्थितिका निषेध है; क्योंकि इसमें गर्भधृति नहीं होती।

गर्भधृति इस अवस्थामें नहीं हो सकती, इसी बातको कविने उल्टे घड़े का उदाहरण देकर बहुत सुन्दरतासे स्पष्ट किया है; देखिये—

किं गर्भवती भवती इति प्रियेण पृष्टा काचिदाह—

[विवरीअसुरअलेहल पुच्छसि मह कीह गब्भसंभूइम् ।

ओअत्ते कुंभमुहे जललवकणिआ वि किं ठाई ॥] ५४।७.

विपरीतसुरतलम्पट पृच्छसि मम किमिति गर्भसंभूतिम् ।

अपवृत्ते कुम्भमुखे जललवकणिकापि किं तिष्ठति ॥

[अपवृत्ते—अधोमुखीकुर्वते]।

भारवि[1]

भारविके सम्बन्धमें जीवनवृत्त बतानेवाला एक ही ग्रन्थ है। वही इनकी कृति है—किरातार्जुनीय। दक्षिणके ऐहोड़ शिलालेखमें इनका नाम मिलता है, इसलिए सम्भवतः ये दक्षिणके रहनेवाले थे। दण्डीने अवन्ति-सुन्दरी कथाके प्रारम्भमें अपने पूर्वजोंका नाम दिया है। दण्डीके चतुर्थ पूर्व पुरुषका नाम दामोदर था, जो नासिकके समीपकी अपनी जन्मभूमिको छोड़कर दक्षिणमें चले गये थे। अवन्तिसुन्दरी-कथाके सम्पादक पण्डित रामकृष्ण कविने दामोदर और भारविकी एकता मानी है परन्तु यह ठीक नहीं है। भारवि दण्डीके प्रपितामह नहीं थे, अपितु प्रपितामहके मित्र थे, क्योंकि भारविकी सहायतासे ही दामोदर राजा विष्णुवर्धनकी सभामें प्रविष्ट हुए। विष्णुवर्धन [सप्तमशतक] चालुक्यवंशी नरेश थे।

भारवि परमशैव थे। यह बात किरातार्जुनीयके कथानक तथा अवन्ति-सुन्दरी कथाके उल्लेखसे भी स्पष्ट होती है[2]। जिस प्रकार पाणिनिकी परीक्षा पाटलिपुत्रमें हुई थी, उसी प्रकार भारविकी परीक्षा उज्जयिनीमें हुई थी। कालिदास तथा भर्तृमेण्ठ आदि कवियोंकी भी परीक्षा उज्जयिनीमें हुई थी।[3]

स्थिति-काल—कालिदासके साथ भारविका नाम दक्षिणके चालुक्य-वंशी नरेश पुलकेशी द्वितीयके समयके ऐहोड़ शिलालेखमें मिलता है।

---

१. श्रीबलदेव उपाध्यायजी एम. ए, की पुस्तक 'संस्कृत साहित्यका इतिहास'के आधार पर।

२. श्री आनन्दराय मखि जिन्होंने 'जीवनानन्दम्' आयुर्वेद-सम्बन्धी नाटक लिखा है, वे भी दक्षिणके रहनेवाले और शिवभक्त थे।

३. श्रूयते चोज्जयिन्यां काव्यकारपरीक्षा—

इह कालिदासमेण्ठावत्रामररूपसूरभारवयः।
हरिचन्द्रचन्द्रगुप्तौ परीक्षिताविह विशालायाम्॥

इस शिलालेखका समय ५५६ शकाब्द [अर्थात् ६३४ ईस्वी] है। शिलालेखकी प्रशस्ति पुलकेशीके आश्रित रविकीर्त्ति जैन कविने की है; जो अपनेको कालिदास और भारविके समान कवि मानता है। गंग-नरेश दुर्विनीतके समयके शिलालेखसे जान पड़ता है कि दुर्विनीतने किराता-र्जुनीयके पन्द्रहवें सर्ग पर टीका की थी; क्योंकि यह सर्ग सबसे अधिक कठिन है, जिसका कारण इसमें चित्रकाव्य-रचनाका होना है। इन बातोंसे पता चलता है कि ६३४ ईस्वीके पहले भारवि हुए। उस समय तक दक्षिणमें इनका नाम प्रसिद्ध हो चुका था।

अवन्तिसुन्दरी-कथाके आधार पर भारवि विष्णुवर्धनकी सभाके पण्डित थे। विष्णुवर्धन पुलकेशी द्वितीयका अनुज था और वह ६१५ ईस्वीके आसपास महाराष्ट्र प्रान्तमें अपने भाईकी आज्ञासे राज्य करता था। इस दृष्टिसे मोटे रूपमें भारविका समय ६०० ईस्वीके आसपास आता है।

ग्रन्थ—भारविकी कीर्त्ति जिस ग्रन्थ पर निर्भर है, वह एकमात्र 'किराता-र्जुनीय' ही है। इसका कथानक महाभारत पर आश्रित है।

आयुर्वेदके वचन

किरातार्जुनीयमेंसे बहुत संग्रह तो नहीं हुआ परन्तु जिस प्रकार कविकी एक ही रचनासे कविकी कीर्त्ति चारों दिशाओंमें फैल गई है, उसी प्रकार भारविका एक वचन ही आयुर्वेदकी दृष्टिसे बहुत महत्त्वपूर्ण है—

परिणामसुखे गरीयसि व्यथकेऽस्मिन्वचसि क्षतौजसाम्।
अतिवीर्यवतीव भेषजे बहुरल्पीयसि दृश्यते गुणः ॥ २।४ ॥

अतिवीर्यशाली औषध (रसौषध) की मात्रा बहुत छोटी होती है; परन्तु उसमें गुण बहुत होते हैं। इसीसे श्रीगोपालकृष्णभट्टने रसौषधके लिए कहा है—

अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचेरप्रसङ्गतः।
क्षिप्रमारोग्यदायित्वादोषधिभ्योऽधिको रसः ॥ रसेन्द्र।

शूद्रक

शूद्रकने अपना परिचय आप दिया है—शूद्रक हस्तिशास्त्रमें परम प्रवीण थे। भगवान् शिवके अनुग्रहसे इनको ज्ञान प्राप्त हुआ था। बड़े ठाटसे इन्होंने अश्वमेध किया और पुत्रको सिंहासन पर बिठाकर एक सौ वर्ष और दस दिनकी आयु भोगकर अन्तमें अग्निमें प्रवेश किया। युद्धोंसे इनको प्रेम था, ये प्रमादरहित, तपस्वी तथा वेद जाननेवालोंमें श्रेष्ठ थे। राजाको हाथियोंके साथ बाहुयुद्ध करनेका शौक था। इनका शरीर ललाम एवं कमनीय था। नेत्र चकोरकी तरह तथा मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान था। ये द्विजोंमें श्रेष्ठ थे। [मृच्छकटिक–१।४-५]।

जिस प्रकार विक्रमादित्यके लिए अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार शूद्रकके लिए भी कई किंवदन्तियाँ सुनी जाती हैं। कादम्बरीमें विदिशा नगरीमें, कथासरित्सागरमें शोभावती और वेतालपञ्चविंशतिमें वर्धमान नामक नगरमें शूद्रकके राज्य करनेका वर्णन पाया जाता है। हर्षचरितमें लिखा है कि शूद्रक चकोरके राजा चन्द्रकेतुका शत्रु था। राजतंरगिणीकार कल्हण स्थिर निश्चयताके साथ शूद्रकका नाम स्मरण करते हैं। स्कन्द-पुराणके अनुसार विक्रमादित्यके सत्ताईस वर्ष पूर्व शूद्रकने राज्य किया था। श्रीचन्द्रबली पाण्डेयजीके अनुसार शूद्रक वाशिष्ठीपुत्र श्रीपुलमावि [राज्य आरोहण लगभग ई० सन् १३०, मृत्यु १५५ ई० सन्] ही हैं।

समय—वामनाचार्यने अपने काव्यालंकार सूत्रवृत्तिमें [**शूद्रकादि-विरचितेषु प्रबन्धेषु**] शूद्रकविरचित प्रबन्धका उल्लेख किया है इससे स्पष्ट है कि यह रचना [मृच्छकटिक] आठवीं शताब्दीसे पूर्वकी है। वामनके पूर्व आचार्य दण्डीने भी "**लिम्पतीव तमोऽङ्गानि**" यह पद्यांश मृच्छकटिकसे उद्धृत किया है [यह पद्य भासके चारुदत्तमें भी है—**भास**

नाटकचक्रमें; चारुदत्त १।१६] इसलिए सातवीं सदीसे पहले ही इनकी स्पष्ट स्थिति है। मृच्छकटिकमें मनुके सिद्धान्तका उल्लेख है [९।३६] इसलिए मनुस्मृतिसे पीछे यह बना है, मनुस्मृतिका काल विक्रमसे पूर्व द्वितीय शतक माना जाता है। मृच्छकटिकके नवें अंकमें कविने बृहस्पति को मंगल [अंगारक] का विरोधी बताया है [६।३३]। परन्तु वराह-मिहिरने इनको मित्र माना है [बृहज्जातक ६।३३]। यही सिद्धान्त आज भी मान्य है। वराहमिहिरकी मृत्यु ५८६ में हुई थी, इसलिए शूद्रकका समय छठी सदीके पहले ही होना चाहिए।

इससे यह स्पष्ट है कि शूद्रक भासके पीछे तथा वराहमिहिर [६ठी शती] के पूर्ववर्त्ती थे, अर्थात् मृच्छकटिक पाँचवी शताब्दीमें बना।

ग्रन्थ—शूद्रकका बनाया एक ही ग्रन्थ—मृच्छकटिक प्राप्त है। कथा मनोरञ्जक है। इस प्रकरणमें उस समयकी समाज-स्थिति तथा जीवनका परिचय मिलता है। द्यूतकर्म, चौर्यकर्म, संवाहन, रथ चलाना आदि कलाओंका इसमें अच्छा ज्ञान मिलता है। ब्राह्मणके लिए यज्ञोपवीतका उपयोग इसमें बहुत विचित्र बताया है। चरित्र-चित्रणमें शूद्रक सिद्धहस्त हैं। मृच्छकटिकमें शौरसेनी, मागधी, अवन्ती भाषा, शकारी ढक्क भाषा भी संस्कृतके साथ आती है।

आयुर्वेदके वचन

साँपके काटनेपर बन्ध—साँपके काटनेपर अंगके ऊपर दंश स्थान से ऊपरमें जो बन्धन बाँधा जाता है, उसे **अरिष्टा** कहते हैं। अरिष्टा बाँधने से विष ऊपर नहीं जाता। सबसे प्रथम उपचार साँपके काटनेपर अरिष्टाका बाँधना है; इसके बाँध देनेसे विष ऊपर नहीं जाता। यह अरिष्टा वस्त्र का टुकड़ा, चर्म, अन्तर्वल्कल; या अन्य किसी कोमल वस्तुका [आजकल रबड़का] होता है [**न गच्छति विषं देहमरिष्टाभिर्निवारितम्—सुश्रुत कल्प. अ. ५।३.४**]।

मृच्छकटिकका शर्विलक ब्राह्मण भी चोरी करते हुए इस बातको भली प्रकार जानता है। इसीसे अपने यज्ञोपवीतका उपयोग इस कार्यको करते हुए यज्ञोपवीतकी महत्ताको बताता है—

"यज्ञोपवीतं हि नाम ब्राह्मणस्य महदुपकरणद्रव्यम्, विशेषतोऽस्मद्-विधस्य। कुतः?

एतेन मापयति भित्तिषु कर्ममार्ग-
मेतेन मोचयति भूषणसंप्रयोगान्।
उद्घाटको भवति यन्त्रदृढे कपाटे
दष्टस्य कीटभुजगैः परिवेष्टनं च॥ ३।१६

..................**धिक्कष्टम्। अहिना दष्टोऽस्मि [यज्ञोपवीतेन अंङ्गुलीं बद्ध्वा विषवेगं नाटयति; चिकित्सां कृत्वा] स्वस्थोऽस्मि।**

मत्स्य, मांस और स्त्री—आयुर्वेदमें स्त्रियोंमें रजोदर्शन न होनेपर या कष्टार्त्तव होनेपर मांस, मछली, कुलत्थ खानेको कहा है [**आर्तवादर्शने नारी मत्यान्सेवेत नित्यशः—योगरत्नाकर**]। जिन प्रान्तोंमें मछली खाने का रिवाज है, वहाँ कन्याओंकी उत्पत्ति भी अधिक है। यथा बंगालमें।

मृच्छकटिकमें हम शकारको वसन्तसेनाके लिए मत्स्य मांस उपस्थित करते हुए देखते हैं; यथा—

[१] **एषा नाणकमोषिका मकशिका मत्स्याशिका लासिका— १।२३**
[२] **रमय च राजवल्लभं ततः खादिष्यसि मत्स्यमांसकम्।**
एताभ्यां मत्स्यमांसाभ्या श्वानो मृतकं न सेवन्ते॥ १।२६

संवाहन—शरीरका दबाना एक कला है। सुश्रुतमें कहा है कि पैरोंसे शरीरका दबवाना युक्तिसे करवाना चाहिये [**पादाघातं च युक्तितः—सुश्रुत. चि. अ. २४**] व्यायाम करनेके पीछे या अन्य थकानके पीछे; दिनभरके कामके पीछे; रातमें नाई या अन्य व्यक्तियोंसे शरीरकी चापी [संवाहन] करवाई जाती है। जिस प्रकार घोड़ेको मलनेसे उसकी थकान दूर होती है;

उसी तरह संवाहन क्रियासे मनुष्यका श्रम दूर होता है। वात्स्यायन कामसूत्रमें इसको कला नाम दिया है [उत्सादने संवाहने केशमर्दने च कौशलम्—कामसूत्र १।१।१६]।

मृच्छकटिकमें संवाहक नामका एक पात्र है, जो इसी वृत्तिसे अपना निर्वाह करता है; देखिए—

संवाहकः—शृणोत्वार्या। आर्ये पाटलिपुत्रं मे जन्मभूमिः गृहिपतिदारकोऽहम्। संवाहकस्य वृत्तिमुपजीवामि।

वसन्तसेना—सुकुमारा कला खलु शिक्षितार्येण।

संवाहक—आर्ये कलेति शिक्षिता। आजीविकेदानीं संवृत्ता।

पैरों पर तेल लगाना—आयुर्वेदमें तैलका प्रयोग शरीरके लिए बहुत उपयोगी बताया है। शिरमें, कानोंमें तथा पैरके तलुओंपर नित्य प्रति तेल लगानेका विधान वाग्भटमें है। पैरोंपर तेल लगानेसे पैरोंमें खरत्व [रूखापन], स्तब्धता, कड़ापन, थकान, झनझनाहट-सुप्ति, तुरन्त शान्त हो जाते हैं। पैरोंमें सुकुमारता आती है, पैर मजबूत होते हैं, दृष्टिमें निर्मलता आती है और वायुकी शान्ति होती है। गृध्रसी, पैरोंमें बिवाई फटना, शिरा-स्नायुका संकुचित होना ये सभी शिकायतें, पैरोंपर तेल लगानेसे नहीं होतीं।

मृच्छकटिकमें भी हम देखते हैं कि वसन्तसेनाकी माता पैरोंपर तेल लगाकर धूपमें बैठी है। यथा—

विदूषकः—एषा पुनः का, पुष्पप्रावारकप्रावृतोपानद्युगलनिक्षिप्ततैलचिक्कणाभ्यां पादाभ्यामुच्चासन उपविष्टा तिष्ठति।

---

१. मर्दनं द्विविधम्—पादाभ्यां हस्ताभ्यां च। तत्र पादाभ्यां यन्मर्दनं तदुत्सादनमुच्यते; हस्ताभ्यां यत् शिरोऽभ्यङ्गकर्म तत्केशमर्दनम्। केशानां तत्र मृद्यमानत्वात् तैरेव व्यपदेशः। शेषाङ्गेषु मर्दनं संवाहनम्।—जयमंगल।

उत्सादनके लाभ—उत्सादनाद् भवेत्स्त्रीणां विशेषात् कान्तिमद्वपुः॥

—सुश्रुत।

चेटी—आर्य, एषा खलु अस्माकमार्याया माता । ४र्थ अंक ।

घुड़साल और बन्दर—संस्कृतके प्रायः नाटकों और काव्योंमें घुड़-सालमें बन्दर रखनेका उल्लेख मिलता है। जायसीका वचन कि "**तुरंग रोग हरि माथे जाये**'–घोड़ेकी बीमारी बन्दरके सिर जाती है। घोड़े और बन्दरका क्या सम्बन्ध है, यह कुछ स्पष्ट नहीं। पञ्चतन्त्रमें एक कथा जरूर है; जिसमें घोड़ोंके जलनेमें बन्दरोंका उपयोग करनेका उल्लेख मिलता है[1]।

रत्नावलीमें मन्दुरामें बन्दरोंके रखनेका उल्लेख है। कादम्बरीमें सेनामें घोड़ोंके साथ बन्दरोंकी उपस्थिति लिखी है। इसी प्रकार वसन्तसेनाके महलमें भी घुड़सालमें बन्दर रक्खे हैं, यथा—

"अयमपरः पाटच्चर इव दृढबद्धो मन्दुरायां शाखामृगः ॥" मृच्छ-कटिक. ४र्थ. ।

सम्भवतः बन्दरोंकी उपस्थितिसे कोई संक्रामक बीमारी नहीं होती। जिस प्रकार गाय-बकरियोंमें रहने वाले गड़रियोंमें क्षय रोग नहीं होता, पारा वत वाले मकानोंमें सोने वाले पुरुषोंमें क्षय रोग नहीं होता, उसी प्रकार सम्भवतः बन्दरोंकी उपस्थिति घोड़ोंकी बीमारीको रोकती होगी।

पक्षियोंका पालना—सुश्रुतमें पक्षी पालनेके लिए दो उद्देश्य बताये हैं। एक—घरकी शोभाके लिए पक्षियोंको पालना चाहिए; दूसरा–अपनी रक्षाके लिए [कल्प-१।३३]। विषयुक्त अन्नकी परीक्षामें पक्षियोंका बहुत महत्त्व है [·········विषापहा । खगाश्च शारिकाक्रौञ्चशिखिहंसशुकादयः ॥ चरक

---

१. अत्रान्तरे राजा सविषादः शालिहोत्रान् वैद्यान् आहूय प्रोवाच—भोः प्रोच्यतामेषामश्वानां कश्चिद् दाहोपशमनोपायः। तेऽपि शास्त्राणि विलोक्य प्रोचुः–देव, प्रोक्तमत्र विषये भगवता शालिहोत्रेण यत्—

कपीनां मेदसा दोषो वह्निदाहसमुद्भवः ।
अश्वानां नाशमभ्यैति तमः सूर्योदये तथा ॥

पञ्चतंत्र. अपरीक्षितकारक

चि. अ. २३।५३]। विषान्नको देखकर चकोरकी आँख पलट जाती है; जीव-जीवक विषयुक्त अन्नसे मर जाता है। कोकिलका स्वर बदल जाता है, क्रौञ्च को मद आता है, मोर उद्विग्न होता है और शुक-सारिका चिल्लाती हैं।

मृच्छकटिकमें भी वसन्तसेनाके घरमें पक्षियोंकी एक सुन्दर शाला हमको मिलती है—

"आश्चर्यं भोः इहापि सप्तमे प्रकोष्ठे सुश्लिष्टविहंगवाटीसुखनिषण्णानि अन्योन्यचुम्बनपराणि सुखमनुभवन्ति पारावतमिथुनानि। दधिभक्तपूरितोदरो ब्राह्मण इव सूक्तं पठति पञ्जरशुकः। इयमपरा स्वामिसम्माननालब्धप्रसरेव गृहदासी अधिकं कुरकुरायते मदनसारिका। अनेकफलरसास्वादप्रतुष्टकण्ठा कुम्भदासीव कूजति परपुष्टा। आलम्बिता नागदन्तेषु पञ्जरपरम्परा। योध्यन्ते लावकाः। आलाप्यन्ते पञ्जर-कपिञ्जलाः। प्रेष्यन्ते पञ्जरकपोताः। इतस्ततो विविधमणिचित्रित एवायं सहर्षं नृत्यन् रविकिरणसन्तप्तं पक्षोत्क्षेपैः विधुवतीव प्रासादं गृहमयूरः। इतः पिण्डीकृता इव चन्द्रपादाः पदगतिं शिक्षमाणानीव कामिनीनां पश्चात्परिभ्रमन्ति राजहंसमिथुनानि। एतेऽपरा वृद्धमहल्लका इव इतस्ततः संचरन्ति गृहसारसाः। आश्चर्यं भोः प्रसारणं कृतं गणिकया नानापक्षिसमूहैः। यत्सत्यं खलु नन्दनवनमिव मे गणिकागृहं प्रतिभासते। [चतुर्थ अंक]

विशाखदत्त

विशाखदत्तकी रचनाके रूपमें मुद्राराक्षस नामका एक ही नाटक है। नाटक-साहित्यमें यही एक ऐसा नाटक है, जिसमें स्त्री-पात्र नायिकाके रूपमें अंकित नहीं है। इस नाटकमें नन्दका मंत्री राक्षस मुद्राचिह्नके द्वारा किस प्रकारसे वशमें किया गया है, यह चित्रित है।

समय—नाटकके कर्त्ता विशाखदत्तका समय सामान्यतः ६ठी शताब्दीका उत्तरार्द्ध या सातवीं शताब्दीका प्रारम्भिक काल है। क्योंकि—

१—मुद्राराक्षसके भरतवाक्यमें चन्द्रगुप्तके स्थान पर अवन्तिवर्मा, रन्तिवर्मा, दन्तिवर्मा पाठ हैं। इनमें अवन्तिवर्मा पाठ अधिक प्रसिद्ध है। अवन्तिवर्मा नामके दो राजा हुए हैं, एक काश्मीरका राजा और दूसरा कन्नौजका राजा जो मोखरी वंशका था। इसीके पुत्र ग्रहवर्मासे श्रीहर्षकी भगिनी राज्यश्रीका विवाह हुआ था। अवन्तिवर्माने थानेश्वरके राजा प्रभाकर-वर्धनकी सहायतासे हूणोंको परास्त किया था। यह घटना ५८२ ईस्वीकी है। २—दन्तिवर्मा दक्षिणके पल्लवनरेश माने गये हैं। इनका राज्यकाल लगभग ७२० ईस्वी है। ३—डाक्टर जायसवाल इसका सम्बन्ध चन्द्रगुप्त द्वितीयसे जोड़कर ग्रन्थकी रचना ४०० ईस्वीके लगभग मानते हैं। परन्तु इसमें अड़चन यह है कि म्लेच्छोंका शासनकाल चन्द्रगुप्तके राज्यके ५० वर्ष पीछे प्रारम्भ होता है, इसीलिए पूर्व विचार ही ठीक प्रतीत होता है।

इनके पितामहका नाम वटेश्वरदत्त था और पिताका नाम पृथु था। कवि राजनीति, दर्शनशास्त्र, ज्योतिष तथा न्यायके पण्डित थे। अपना संक्षिप्त परिचय अपने ग्रन्थमें आपने स्वयं दिया है।

आयुर्वेदके वचन

इस नाटकमें आयुर्वेद-शास्त्रका उल्लेख दो प्रसंगों पर बहुत स्पष्ट आता है। चन्द्रगुप्तको मारनेके लिए अभयदत्त वैद्यने योगचूर्ण[1] मिश्रित औपध तैय्यार की थी। इस औषधकी परीक्षाके लिए चाणक्यने औषधको स्वर्णपात्रमें रख दिया था, स्वर्णपात्रमें रखनेसे इसका वर्ण–रंग बदल गया। रंगका परिवर्तन देखकर औपधको विषयुक्त समझकर चाणक्यने यही औषधि अभयदत्त वैद्यको पिला दी, जिससे वह मर गया। इसके मरने पर राक्षसने कहा कि—महान् विज्ञानराशि आज मर गया। यथा—

राक्षसः—[सास्रम्] कष्टम्। अहो वत्सलेन सुहृदा दारुवर्मणा वियुक्ताः स्म। अथ तत्रत्येन भिषजा अभयदत्तेन किमनुष्ठितम्।

विराधगुप्तः—अमात्य! कल्पितमेतेन योगचूर्णमिश्रितमौषधं चन्द्रगुप्ताय। तत् प्रत्यक्षीकुर्वता चाणक्यहतकेन कनकभाजने वर्णान्तरमुपलभ्याभिहितश्चन्द्रगुप्तः—'वृषल, सविषमिदमौषधं न पातव्यम्' इति।

राक्षसः—शठः खल्वसौ वटुः। अथ स वैद्यः कथम्?

विराधगुप्तः—तदेवौषधं पायितो मृतश्च।

राक्षसः—[सविषादम्] अहो महान् विज्ञानराशिरुपरतः।

सुश्रुत संहितामें भी हम पढ़ते हैं कि विषयुक्त अन्न या औषधके रंगमें परिवर्तन हो जाता है—यथा

द्रवद्रव्येषु सर्वेषु क्षारमद्योदकादिषु।
भवन्ति विविधा रागाः फेनबुदबुदजन्म च॥
शाकसूपान्नमांसानि क्लिन्नानि विरसानि च।
सद्यः पर्युषितानीव विगन्धीनि भवन्ति च॥

---

[1] योगचूर्णसे अभिप्राय संयोगजन्य विषसे है "कृत्रिमं गरसंज्ञं च क्रियते विविधौषधैः"।

गन्धवर्णरसैर्हीनाः सर्वे भक्ष्याः फलानि च।

पक्वान्याशु विशीर्यन्ते पाकमामानि यान्ति च ॥ सुश्रुत. कल्प. अ. १.

तत्र स विषमन्नं स्राव्यमानमविस्राव्यं भवति। चिरेण पच्यते; यथा स्ववर्णगन्धरसैर्व्यापद्यते, प्रक्लिद्यते, चंद्रिकाचितं भवति[१]। संग्रह. सूत्र. अ. ८।

---

१. [क] भारत कलाभवन—बनारस हिंदू-यूनिवर्सिटीमें शाहजहां बादशाहके नामसे अंकित एक तश्तरी (प्लेट) है, जो चीनकी बनी जान पड़ती है। यह बनी हुई पत्थर की है; इसके किनारों पर स्वर्णका काम है। इसके सम्बन्धमें प्रचलित है कि विषयुक्त अन्न इसमें रखनेसे यह प्लेट टूट जाती है।

[ख] कथा है कि शाहजहाँके दरबारमें रहनेवाले अंग्रेज़ राजदूत सर थामस रोके पास मृगके सींगकी तरह एक चीज़ थी। सर थामस रोको यह बात ज्ञात थी कि शाहजहाँको अद्भुत वस्तुओंके संग्रहका बड़ा शौक है, अतः उसने एक बार बात-बातमें उसे बेचनेकी चर्चा चलाई। उस सींगके सम्बन्धमें उसने शाहजहाँसे कहा कि, यदि इसमें कोई तरल विष रक्खा जाए तो उसका जहर समाप्त हो जाएगा। उसका जो दाम बताया गया, शाहजहांको वह ठीक नहीं जँचा। अतः इस बातको वह बड़ी मधुरतासे टाल गया। सर थामस रोको इससे बड़ी निराशा हुई और अन्तमें उसने कुछ दिनों बाद उसे बड़े सस्ते मूल्यमें एक डच सैन्याधिकारीके हाथ बेच दिया। —नवनीत वर्ष ४, अंक ११।५५

[ग] महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आयुर्वेदमें भी विषनाशक औषधियोंको [अगदोंको] सींगके अन्दर ही रखनेका उल्लेख है, यथा—

[१] त्रिवृद् विशल्ये मधुकं हरिद्रे रक्ता नरेन्द्रो लवणश्च वर्गः।
कटुत्रिकं चैव विचूर्णितानि शृङ्गे निदध्यान्मधुसंयुतानि ॥

[२] विडंगपाठा त्रिफलाजमोदा हिङ्गूनि वक्रं त्रिकटूनि चैव।
सर्वश्च वर्गो लवणः ससूक्ष्मः सचित्रकः क्षौद्रयुतो निधेयः ॥

दूसरा उल्लेख जीर्णविष नाम रक्खे हुए विराधगुप्तका है; जब वह आहितुण्डिक—सांपोंसे खेलनेवाला—सपेरा बनकर राक्षसके घरमें प्रवेश करना चाहता है।

आहितुण्डिक रूपमें वह कहता है कि—राजा लोग सर्पकी तरह हैं। उनकी सेवामें वही व्यक्ति सफल हो सकते हैं, जो तन्त्रयुक्ति [राष्ट्रचिन्ता या औषधि] को जानते हैं; मण्डलकी स्थितिको ठीक प्रकार पहिचानते हैं, या बनाते हैं; [सांपोंके लिए महेन्द्र आदि देवता मन्त्रको चित्रित करते हैं]; मन्त्रकी रक्षा करनेमें तत्पर हैं। [बातको गुप्त रखते हैं, या मन्त्रको ध्यानपूर्वक वरतते हैं] ऐसे आदमी ही राजाकी सेवा कर सकते हैं; यथा—

जानन्ति तन्त्रयुक्तिं यथास्थितं मण्डलमभिलिखन्ति।

ये मन्त्ररक्षणपरास्ते सर्पनराधिपावुपचरन्ति॥ मुद्राराक्षस २।१।

इसी प्रसंगमें आगे कहा है कि जो व्यक्ति मंत्र, औषधको नहीं जानता और साँपको पकड़ता है, वह उसी प्रकारसे नष्ट हो जाता है, जिस तरहकी मत्त हाथी पर चढ़नेवाला; अधिकारको प्राप्त करके गर्वित मनुष्य एवं विजयोल्लाससे दर्पित राजसेवक ये तीनों नष्ट होते हैं; यथा—

अमन्त्रौषधिकुशलो व्यालग्राही, मत्तमतङ्गजारोही लब्धाधिकारी जितकाशी राजसेवक इत्येते त्रयोऽप्यवश्यं विनाशमनुभवन्ति। २।

शृङ्गे गवां शृङ्गमयेन चैव प्रच्छादितः पक्षमुपेक्षितश्च।
एषोऽगदो स्थावरजङ्गमानां जेता विषाणामजितो हि नाम्ना॥

[२] सूक्ष्माणि चूर्णानि समानि कृत्वा शृङ्गे निदध्यान्मधुसंयुतानि।
एषोऽगदास्तार्क्ष्य इति प्रदिष्टो विषं विहन्यादपि तक्षकस्य॥

—सुश्रुत कल्प. अ. ५।६१-६७।

यह भी बात महत्त्वपूर्ण है कि प्राचीन कालमें राज्याभिषेकके समय शृंग-द्वारा राजाका अभिषेक किया जाता था।

सुश्रुत तथा आयुर्वेदके दूसरे ग्रन्थोंमें सर्पविषके सम्बन्धमें मन्त्रको विशेष महत्त्व दिया है। मन्त्र ग्रहण करनेके लिए सुश्रुतमें बहुतसे नियम दिये हैं। [कल्प. अ. ५।११।१२]। मन्त्र-द्वारा सर्प वशमें होते हैं; यथा—

अरिष्टामपि मन्त्रैश्च बध्नीयान्मन्त्रकोविदः।
सा तु रज्वादिभिर्बद्धा विषप्रतिकरी मता॥
देवब्रह्मर्षिभिः प्रोक्ता मन्त्राः सत्यतपोमयाः।
भवन्ति नान्यथा क्षिप्रं विषं हन्युः सुदुस्तरम्॥
विषं तेजोमयैः मन्त्रैः सत्यब्रह्मतपोमयैः।
यथा निवार्यते शीघ्रं प्रयुक्तैर्न तथौषधैः॥ सुश्रुत. क. अ.५।

चरक संहितामें विषको नष्ट करनेके २४ उपाय बताये हैं, उनमें मन्त्रका उल्लेख सबसे प्रथम है [**मन्त्रारिष्टोत्कर्त्तननिष्पीडनचूषणाग्निपरिषेकाः—चि. अ. २३।२५**]।

प्रकुप्यति विषं भूयः केवलैश्चौषधैर्जितम्।
अवाप्तौ सिद्धमन्त्राणां यतेतातश्चिकित्सकः॥ —सुश्रुत

विषकन्या—विषकन्याका प्रसंग प्रयोगात्मक रूपसे इसी नाटकमें मिलता है। पर्वतेश्वरको विषकन्याके द्वारा चाणक्यने मरवाया था। राक्षस मन्त्रीने विषकन्या चन्द्रगुप्तके मारनेके लिए भेजी थी परन्तु चाणक्यने इस कन्याका उपयोग पर्वतेश्वरको मारनेमें किया; जिससे उसे आधा राज्य न देना पड़े। पर्वतेश्वरका पुत्र मलयकेतु डरसे भाग गया। यथा—

"अत्र तावद् वृषलपर्वतकयोः अन्यतरविनाशेनापि चाणक्यस्य अपकृतं भवतीति, विषकन्या राक्षसेन अस्माकम् अत्यन्तोपकारी मित्रं घातितः तपस्वी पर्वतेश्वर इति सञ्चारितो जगति जनापवादः। **—प्रथम अंक**

आयुर्वेदमें—विषकन्याका उपयोग तात्कालिक मृत्युके लिए आता है। विषकन्याके स्पर्शसे, इसके स्वेदसे, इसके साथ सम्भोग करनेसे मनुष्यकी मृत्यु होती है। मनुष्यका शिश्न पक जाता है अथवा झड़ जाता है। इसीसे कहा है—

न च कन्यामविदितां संस्पृशेदपरीक्षिताम् ।
विविधान्कुरुते योगान्कुशला खलु मानवाः ॥ संग्रह ।
विषकन्योपयोगाद्वा क्षणाद् जह्यादसून्नरः ॥ सुश्रुत ।

विषकन्याको बनानेके लिए कन्याको जन्मसे ही थोड़ा-थोड़ा विष देते हैं। प्रथम मात्रा इतनी रखते हैं कि जिसको यह सहन कर सके, इसे किसी प्रकारकी हानि न हो। फिर शनैः-शनैः मात्राको बढ़ाते जाते हैं। अन्तमें यह मात्रा यहाँ तक पहुँच जाती है कि दूसरे मनुष्यके लिए यह मात्रा घातक सिद्ध होती है। इस विषका प्रभाव कन्याके सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त रहता है।[1] जिससे इसके सिर पर बँधी माला-फूल-पत्ते शीघ्र मुरझा जाते हैं, शय्यापर खटमल मर जाते हैं; और स्नानके पानीसे जूँ या लीक मर जाती हैं। इस कन्याका उपयोग शत्रुसैन्यमें होता था; यथा—

[१] आजन्मविषसंयोगात् कन्या विषमयी कृता ।
स्पर्शोच्छ्वासादिभिर्हन्ति तस्यास्त्वेतत् परीक्षणम् ॥
तन्मस्तकस्य संस्पर्शात् म्लायेते पुष्पपल्लवौ ।
शय्यायां मत्कुणैर्वस्त्रे युकाभिः स्नानवारिणा ॥
जन्तुभिः म्रियते ज्ञात्वा तामेवं दूरतस्त्यजेत् ॥
—संग्रह ६।८७–८०।

---

१ ज्योतिष शास्त्रमें विषकन्याका लक्षण अन्य प्रकारसे वर्णित है, यथा—

सूर्यभौमार्कवारेषु तिथिभद्राशताभिधम् ।
अश्लेषा कृत्तिका चेत् स्यात् तत्र जाता विषाङ्गना ॥
जनुर्लग्ने रिपुक्षेत्रसंस्थितः पापखेचरः ।
द्वौ समावपि योगेऽस्मिन् सञ्जाता विषकन्यका ॥
लग्ने शनैश्चरो यस्याः सूतेऽर्को नवमे कुजः ।
विषाख्या साऽपि नोद्वाह्या विविधा विषकन्यका ॥

[२] लावण्यभूषणां कान्तां योषितं क्रमशो विषैः ।
युवतीं योजयेत् कामी रिपुभूपालघातने ॥
विदग्धे विषकन्याश्च सैन्यपण्यविलासिनीः ॥

—कथासरित्सागर १६।८।

इन वचनोंके सिवा अपथ्यता रोगका कारण है, इसे भी स्पष्ट किया है, यथा—

भवति पुरुषस्य व्याधिर्मरणं वा सेविते अपथ्येऽपि ।

—सातवाँ अंक २ ।

आयुर्वेदमें—

एभ्यश्चैवापथ्याहारदोषशरीरविशेषेभ्यो व्याधयो मृदवो दारुणाः क्षिप्रसमुत्थाश्चिरकारिणश्च भवन्ति । —चरक० सू० अ० २८।२० ।

इसीसे कहा है—

न रागान्नाप्यविज्ञानादाहारमुपयोजयेत् ।
परीक्ष्य हितमश्नीयात् देहो ह्याहारसम्भवः ॥

—चरक० सू० अ० २८।५५

मुद्राराक्षसका कर्त्ता जहाँ नीतिशास्त्र और ज्योतिषशास्त्रमें प्रगल्भता रखता था, वहाँ उसे आयुर्वेदका ज्ञान भी था। विशेषतः कौटिल्य अर्थशास्त्रमें वर्णित कुटिल-मारण सम्बन्धित आयुर्वेदज्ञान [विषज्ञान] से भी भली प्रकार परिचित था। इसीलिए स्वर्ण-पात्रमें रक्खा विषयुक्त अन्न रंगमें बदल जाता है; विषकन्याका उपयोग और अपथ्यसेवन रोगका कारण है, इत्यादि बातोंका उल्लेख नाटकमें—नीतिके प्रसंगमें बहुत ही सुन्दरतासे किया है ।

दण्डी

मालावारसे प्राप्त अवन्तिसुन्दरी-कथासे दण्डीके विषयमें पता चलता है। इसके प्रथम परिच्छेदमें दण्डीके पूर्वजोंका वर्णन किया गया है। कविवर भारविके तीन लड़के हुए, जिनमें मनोरम मध्यम था, मनोरमके भी चार वेदोंकी भाँति चार पुत्र हुए। इनमें वीरदत्त सबसे छोटा होने पर भी बड़ा भारी दार्शनिक था। वीरदत्तकी स्त्रीका नाम गौरी था। ये ही दण्डीके माता-पिता थे। इनके माता-पिता बचपनमें ही मर गये थे। कांञ्ची [काञ्जीवरम्] में एक बार अकाल पड़ा तब ये इधर-उधर भटकते फिरते थे। अन्तमें शान्ति होने पर ये पल्लवनरेशकी सभामें गये। इनकी छत्रछायामें इन्होंने अपने शेष दिन व्यतीत किये।

इससे दक्षिणमें प्रसिद्ध किंवदन्तीका भी मेल होता है, जिसे श्री एम० रंगाचार्यने लिखा है कि पल्लवराजाके पुत्रोंको शिक्षा देनेके लिए ही दण्डीने काव्यादर्शकी रचना की थी।

समय—नवम शताब्दीके ग्रन्थोंमें दण्डीका नाम मिलनेसे इतना स्पष्ट है कि इनका काल नवीं सदीके पीछे नहीं है। सिंहली भाषाके ग्रन्थ सिय बस-लकर [स्वभाषालंकार ८४६ से ८६६] की रचना काव्यादर्शके आधार पर ही हुई है। कन्नड़ी भाषाके अलंकार-ग्रन्थ 'कवि राजमार्ग' में काव्यादर्श के उदाहरण मिलते हैं। हेतु, अतिशयोक्ति आदि अलंकारोंके लक्षण तो अक्षरशः मिलते हैं। ग्रन्थके लेखक अमोघवर्षका स्थितिकाल ८१५ ईस्वीके आसपास माना जाता है। इसलिए काव्यादर्शकी रचना नवीं सदीसे पूर्व ही होनी चाहिए।

काव्यादर्श दण्डीकी मौलिक रचना है। इसके सब पद्य उनके अपने बनाये हुए हैं। प्राचीन पद्य भी इसमें सन्निविष्ट हैं। **"लक्ष्मलक्ष्मीं तनोतीति प्रतीतिसुभगं वचः"** दण्डीके इस वचनमें कालिदासके प्रसिद्ध पद्यांश **"मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्मलक्ष्मीं तनोति"** की ही छाया स्पष्ट दीखती है। इससे इतना तो स्पष्ट है कि दण्डीका समय कालिदाससे पीछे है। इसके सिवाय अन्य भाव साम्यसे ये बाणभट्टके भी परवर्ती प्रतीत होते हैं—

अरत्नालोकसंहार्यमवार्यं सूर्यरश्मिभिः।
दृष्टिरोधकरं यूनां यौवनप्रभवं तमः॥

काव्यादर्शके इस पद्यमें कादम्बरीमें शुकनास-द्वारा चन्द्रापीड़को दिये उपदेशकी छाया दीखती है। इससे दण्डीको बाणभट्टके पीछे [७वीं सदी] का माननेमें कोई बाधा नहीं। प्रोफेसर पाठककी सम्मतिमें काव्यादर्शमें निर्वर्त्य, विकार्य तथा प्राप्य हेतुका विभाग वाक्यपदीयके कर्त्ता भर्तृहरि [६५० ईस्वी] के अनुसार किया गया है।

काव्यादर्शमें उल्लिखित राजवर्मा [रातवर्मा] को यदि हम नरसिंहवर्मा द्वितीय [जिनका विरुद्–उपनाम राजवर्मा था] मान लें तो किसी प्रकारकी कठिनाई नहीं रहती। प्रोफेसर आर० नरसिंहाचार्य तथा डाक्टर वेलवल्करने भी इन दोनोंकी एकता मानकर दण्डीका समय सातवीं सदीका उत्तरार्द्ध बतलाया है। शैवधर्मके उत्तेजक पल्लवराज नरसिंहवर्माका समय ६६० से ७१५ माना जाता है।

ग्रन्थ—दण्डीके तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। काव्यादर्श, दशकुमारचरित और छन्दोविचिति। इनमें प्रथम दो ही मुख्य रूपसे प्रसिद्ध हैं। दशकुमार चरितके तीन भाग हैं, पूर्वपीठिका [पाँच उच्छ्वास]; दशकुमारचरित [आठ उच्छ्वास]; उत्तरपीठिका—इसीको दण्डीकी वास्तविक रचना कहा जाता है। अवन्तिसुन्दरी-कथा पूर्वपीठिकाके रूपमें प्रतीत होती है; क्योंकि दोनोंमें अतिशय समानता है। सम्भव है कि कालवश अवन्ति-

सुन्दरीकथाके लुप्त हो जानेसे किसी लेखकने इसी प्रकारकी रचना करके दशकुमारचरितके साथ जोड़ दी हो। दशकुमारचरितमें दस राजकुमारोंके भ्रमणका अनुभव है। उसीके आधारसे आयुर्वेदके वचन यहाँ संग्रहीत हैं।

आयुर्वेदके वचन

मणि-मन्त्रौषधि—अत्रिपुत्रने अथर्ववेदके साथ आयुर्वेदका सम्बन्ध बताते हुए कहा है कि—यदि कोई वैद्यसे पूछे कि ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इन चारों वेदोंमें किस वेदके प्रति तुम्हारी श्रद्धा अधिक है, तो वैद्यको चाहिए कि वह अथर्ववेदमें अपनी भक्ति बताये। आथर्वण वेदमें ही दान स्वस्तिवाचन-बलि मंगल होम-नियम-प्रायश्चित्त-उपवास-मंत्र आदि द्वारा चिकित्सा वर्णित है [चरक० सूत्र० अ० ३०।२१]।

प्रभावका वर्णन करते हुए भगवान् अत्रिपुत्रने अचिन्त्य प्रभाव—अतर्कनीय प्रभावका भी उल्लेख किया है। 'मणियोंके धारण करनेसे जो नाना प्रकारके कार्य होते हैं, वही अचिन्त्य प्रभाव है' [सूत्र २६।७५]। विषको नष्ट करनेके लिए कर्केतन, सर्पमणि, वैदूर्य, गजमौक्तिक, गरमणि तथा विषनाशक श्रेष्ठ ओषधियोंको धारण करनेका उल्लेख है [चरक चि० अ० २४।२५२]। संग्रहमें लिखा है कि विष जिस प्रकार मन्त्र-द्वारा अच्छा होता है, वैसा ओषधियोंसे नहीं अच्छा होता। ओषधियोंसे अच्छा किया विष पुनः उभर सकता है, परन्तु मन्त्रसे अच्छा किया विष फिर नहीं उठता।

प्रकुप्यति विषं भूयः केवलैश्चौषधैर्जितम्।
अवाप्तौ सिद्धमन्त्राणां यतेतातश्चिकित्सकः॥

कवि दण्डीने भी मणि-मन्त्र-ओषधिके जाननेका उल्लेख विद्याज्ञानके सम्बन्धमें किया है। यथा—

[१] **वीणाद्यशेषवाद्यदाक्ष्यं; संगीतसाहित्यहारित्वं; मणिमन्त्रौषधादिमायाप्रपञ्चचञ्चुत्वं; मातङ्गतुरङ्गादिवाहनारोहणपाटवं*****पृष्ठ २४।**

[२] भर्तृदारिके, अयं सकलकलाप्रवीणो देवतासांनिध्यकरण आहवनिपुणो भूसुरकुमारो मणिमन्त्रौषधिज्ञः[1] परिचर्यार्हो भवत्या पूज्यताम्—इति। पृष्ठ ४६।

काम-ज्वर—आठ प्रकारके ज्वरोंमें आगन्तुज ज्वर भी एक ज्वर है; [**कामशोकभयक्रोधैरभिषक्तस्य यो ज्वरः—चि० अ० ३।११४**]। काम-ज्वर हर्ष-प्रसन्नतासे शान्त होता है। [चि० अ० ३।३२१]।

चरक में—**काम्यैरर्थैर्मनोज्ञैश्च पित्तघ्नैश्चाप्युपक्रमैः।**
हर्षणैश्च शमं याति कामशोकभयज्वरः॥

इसी काम-ज्वरके लक्षण तथा उसकी चिकित्साका उल्लेख दण्डीने किया है—

"विरहानलसंतप्तहृदयस्पर्शेन नूनमुष्णीकृतः स्वल्पीभवति मलयानिलः। नवपल्लवकल्पितं तल्पमिदमनङ्गाग्निशिखापटलमिव संतापं तनोस्तनोति। हरिचन्दनमपि पुरा निजयष्टीसंश्लेषवदुरगरदनलिप्तोल्वणगरलसंकलितमिव तापयति शरीरम्। तस्मादलमलमायासेन शीतलोपचारे लावण्यजितमारो राजकुमार एवागदंकरो मन्मथज्वरापहरणे।" पृष्ठ ५२।

---

१. मणि-मन्त्र ओषधियोंका प्रभाव अचिन्त्य होता है। इसको रत्नावलीमें कवि श्रीहर्षने भी कहा है; यथा—

कण्ठे श्रीपुरुषोत्तमस्य समरे दृष्ट्वा मणिं शत्रुभि-
र्नष्टं मन्त्रबलाद् वसन्ति वसुधामूले भुजङ्गाहताः।
पूर्वं लक्ष्मणवीरवानरभटा ये मेघनादाहताः
पीत्वा तेऽपि महौषधेर्गुणनिधेर्गन्धं पुनर्जीविताः॥

इसी बातको चरकमें भी पढ़ते हैं; यथा—

मणीनां धारणीयानां कर्म यद् विविधात्मकम्।
तत्प्रभावकृतं तेषां प्रभावोऽचिन्त्यमुच्यते॥

—चरक० सू० २६।७५

आहार-विधि—भोजन तैयार करनेमें बाजारसे धान लाकर उनको ऊखलमें कूटकर, उनके छिलके तथा कणिकाएँ अलग करके, चावलोंको पाँच-गुने जलमें पकाकर उससे पेया बनानेका उल्लेख दण्डीने बड़ी सुन्दरतासे किया है। पेयाके ही रूप मण्ड, विलेपी और यवागू हैं। पेयाके गुण—'पेया भूख-प्यास, ग्लानि (थकान), दुर्बलता, अग्निमान्द्य, उदर रोग और ज्वरको नष्ट करती है; पसीना लाती है, अग्निको प्रदीप्त करती है; वायु और मलका अनुलोमन करती है। —चरक० सू० अ० २७।२५२।

दण्डीने भी पेयाके गुण इसी प्रकार बताये हैं—

"सा तु तां पेयामेवाग्रे समुपाहरत्। पीत्वा चापनीताध्वक्लमः प्रहृष्टः प्रक्लिन्नसकलगात्रः स्थितोऽभूत्। ततस्तस्य शाल्योदनस्य दर्वीद्वयं दत्त्वा सर्पिर्मात्रां सूपमुपदंशं चोपजहार। इमं च दध्ना त्रिजातकावचूर्णेन सुरभि-शीतलाभ्यां च कालेशयकाञ्जिभ्यां शेषमन्नमभोजयत्। सशेष एवान्धस्य सावतृप्यत्। अयाचत् च पानीयम्। अथ नवभृङ्गारसंभृतागुरुधूपधूपि-तमभिनवपाटलाकुसुमवासितमुत्फुल्लोत्पलग्रथितसौरभं वारि नाली-धारात्मना पातयांबभूव।" —पृष्ठ २२६।

व्यायामसे मेद कम होती है—जिस प्रकार कालिदासने मृगयाके गुणोंमें कफकी न्यूनता होना बताया है, उसी प्रकार दण्डीने भी मृगयाके लाभोंका वर्णन किया है। सुश्रुतका कहना है कि स्थूलताको कम करनेके लिए व्यायामसे उत्तम दूसरी वस्तु नहीं है [चि० अ० २४]। अत्रिपुत्रका कहना है कि व्यायामसे शरीरमें लघुता—हल्कापन आता है, कर्म करनेमें उत्साह रहता है, अंगोंमें दृढ़ता आती है, दुःख झेलनेकी आदत बनती है, दोषोंका नाश होता है और जठराग्नि बढ़ती है। —सू० अ० ७।३२।

दण्डीसे भी सुनिये—

देव; यथा मृगया ह्युपकारिकी न तथान्यत्। अत्र हि व्यायामोत्कर्षा-दापत्सूपकर्त्ता [दुःखसहिष्णुता-चरक]; दीर्घाध्वलङ्घनक्षमो जङ्घाजवः कफापचयादारोग्यैकमूलमाशयाग्निदीप्तिः [दोषोपशयोऽग्निवृद्धिश्च—चरक];

मेदोपकर्षादङ्गानां स्थैर्यकार्कश्यातिलाघवादीनि [लाघवं कर्म सामर्थ्यं स्थैर्यम् – चरक]; शीतोष्णवातवर्षक्षुत्पिपासासहत्वम्, सत्त्वानामवस्थान्तरेषु चित्तचेष्टितज्ञानम् [सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः–शाकुन्तल]; हरिणगवलगवयादिवधेन सस्यलोपप्रतिक्रिया, वृकव्याघ्रादिघातेन स्थलपथशल्यशोधनम्,........................ बहुतमा गुणाः । —पृष्ठ २६५ ।

सर्पदंश—सर्पसे काटे हुए व्यक्तिमें जब अंगोंमें स्तब्धता [कठोरता], एवं श्यामवर्णता आ जाये; आँखकी पुतली हिले नहीं [शीतल जलकी भी प्रतिक्रिया न हो]; शरीर ठंडा हो जाये, तब वह असाध्य होता है। आयुर्वेदमें असाध्य सर्पदंशके लक्षण निम्न हैं—

दष्टमात्रे सितास्याक्षः शीर्यमाणशिरोरुहः ।
स्तब्धजिह्वो मुहुर्मूर्च्छन् शीतोच्छ्वासो न जीवति ॥
न नस्यैश्चेतना तीक्ष्णैर्न क्षतात् क्षतजागमः ।
दण्डाहतस्य नो राजिः प्रयातस्य यमान्तिकम् ॥ संग्रह ।
शिशिरैर्न लोमहर्षो नाभिहते दण्डराजिः स्यात् ।
क्षतजं घाताच्च नायात्येतानि भवन्ति मरणलिङ्गानि ॥ चरक. ।

अब दशकुमारचरितमें पढ़िये—

तेषु कश्चिन्नरेन्द्राभिमानी मां निर्वर्ण्य मुद्रातन्त्रमन्त्रध्यानादिभिश्चोपक्रम्याकृतार्थः "गत एवाय कालदष्टः । तथा हि स्तब्धश्यावमङ्गम्, रुद्धा दृष्टिः, शान्त एवोष्मा । शुचालं वासु, श्वोऽग्निसात्करिष्यामः । कोऽतिवर्तते दैवम्" पृष्ठ १०२ ।

[**नरेन्द्राभिमानी–विषवैद्याभिमानी; नरेन्द्रो वार्त्तिके राज्ञि विषवैद्येऽपि कथ्यते–इति विश्वप्रकाशः**] ।

वत्सनाभ-विष—सुश्रुतमें कन्दज विषोंके उल्लेखमें वत्सनाभका भी नाम आया है; सामान्यतः वत्सनाभसे मीठा तेलिया [Aconit] लिया जाता

है। इसकी कई जातियाँ हैं। इनमें तैलीय रंगका काला वत्सनाभ उत्तम है। कन्दज विषोंसे—ज्वर, हिक्का, दन्तहर्ष, हनुस्तम्भ, गलग्रह, मुखसे झाग आना, वमन, अरुचि, श्वास और मूर्छा होती हैं। ये कन्दज विष शीघ्र मारक होते हैं।

दण्डीने भी शीघ्र मारनेके लिए ही वत्सनाभका प्रयोग किया है; देखिए—

"पुनरनेन वत्सनाभनाम्ना महाविषेण संनीय तोये तन्त्रमालां मज्जयित्वा तया सा वक्षसि मुखे च हन्तव्यः। 'स एवायमसिप्रहारः पापीयस्तव भवतु यद्यस्मि पतिव्रता। पुनरनेनागदेन संगमितेऽम्भसि मालां मज्जयित्वा स्वदुहित्रे देया। मृते तु तस्मिंस्तस्यां च निर्विकारायां सत्यां सतीत्येवैनां प्रकृतयोऽनुवर्तिष्यन्ते॥ पृष्ठ २७२–२७३।

गृहस्थीके सामान—चरकके उपकल्पनीय अध्यायमें अत्रि-पुत्रने एक गृहस्थके घरके सामानकी तालिका दी है; उसमें ऊखल-मूसलका भी उल्लेख किया है। प्रसवके समय सामान एकत्र करनेमें भी ऊखलका उल्लेख हुआ है [चरक. शा. अ. ८]।

दण्डीने ऊखल और मूसलके बनाने तथा उनके रूपका उल्लेख बहुत सुन्दर किया है—

"तथा कृते तया तांस्तण्डुलाननतिनिम्नोत्तानविस्तीर्णकुक्षौ ककुभोलूखले लोहपत्रवेष्टितमुखेन समशरीरेण विभाव्यमानमध्यतानवेन व्यायतेन गुरुणा खदिरेण मूसलेन चतुरललितक्षेपणोत्क्षेपणायसितभुजमसकृदङ्गुलिभिरुद्धृत्यावहत्य शूर्पशोधितकणकिंशारुकांस्तण्डुलानसकृद्भिः प्रक्षाल्य क्वथितपञ्चगुणे जले दत्तचुल्हीपूजा प्राक्षिपत्।" पृष्ठ २२४.

बाणभट्ट

कविने अपना परिचय स्वतः अपने ग्रन्थोंमें दिया है। बाणभट्टके पूर्वज सोन नदीपर स्थित प्रीतिकूट नामक नगरमें रहते थे। इनका गोत्र वात्स्यायन था। बाणके प्राचीन पूर्वजका नाम कुबेर था। इनके घरपर वेदाध्ययनके लिए विद्यार्थियोंका जमघट जमा रहता था। बाणका कहना है कि उनके घरपर ब्रह्मचारी सशंक होकर वेदपाठ करते थे कि कहींपर मैनाओंके साथ बैठे तोते इनको टोक न दें। इनकी त्रुटि न निकाल दें। कुबेरके चार पुत्रोंमें पाशुपत सबसे छोटे पुत्र थे। इनके पुत्र अर्थपति हुए। अर्थपतिके पुत्र चित्रभानु हुए। ये भी सब शास्त्रोंके पण्डित थे। यही चित्रभानु बाणभट्टके पिता थे। छोटी आयुमें ही बाणके पिता-माता दिवंगत हो गये थे।

बाणभट्टके पास पैतृक सम्पत्ति पर्याप्त थी। सुयोग्य अभिभावकके अभावमें बाण अवारा हो गये [देखिये—श्रीहजारीप्रसादजी द्विवेदी कृत—बाणभट्टकी आत्मकथा]। बुरे साथियोंके संसर्गसे ये दुर्व्यसनोंमें पड़ गये थे। बाणभट्टको देशाटनका बहुत शौक था। बुद्धि-विकास, अनुभव तथा उदार विचार लेकर देश-देशान्तर घूमकर ये घर वापस आये। लोग उपहास करने लगे। अचानक एक दिन हर्षके चचेरे भाई कृष्णका पत्र लेकर एक दूत आया। पत्रमें लिखा था कि किसीने हर्षसे तुम्हारी चुगली की है, इसलिए तुरन्त चले आओ। बाण राजाके पास गये। हर्षने पहले तो बाणकी अवहेलना की, परन्तु पीछे इनकी विद्वत्ता पर प्रसन्न होकर इनको अपने यहाँ आश्रय दिया। बाणने बहुत समय तक हर्षकी राजसभाको शोभित किया, फिर अपने घर आये, और लोगों-द्वारा हर्षके चरितको पूछने पर हर्षचरितकी रचना की।

बाणके पुत्र—बाणने अपने पुत्रोंके सम्बन्धमें कुछ नहीं लिखा। परन्तु कादम्बरीका उत्तरार्द्ध बाणके पुत्रने पूरा किया। बाणभट्टके पुत्रका नाम पुलिन या पुलिनभट्ट कहा जाता है[1]।

समय—हर्षवर्धनके सभा-पण्डित होनेसे बाणभट्टका काल ईसाकी ७वीं सदी असंदिग्ध है। वामनने [७७९ से ८१३ ईस्वी] काव्यालंकारमें कादम्बरीके एक लम्बे समास वाले गद्यका उल्लेख किया है। इसलिए बाणका समय सातवीं सदी निश्चित ही है।

ग्रन्थ—हर्षचरित, कादम्बरी, चण्डीशतक, पार्वती-परिणय और मुकुट-ताडितक आपकी रचनाएँ हैं। बाणकी शैली पाञ्चाली है; इसमें शब्द और अर्थकी समानता रहती है [**शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरुच्यते**]।

आयुर्वेदके वचन

सूतिकागृहका वर्णन—सूतिकागृहका उल्लेख चरक तथा दूसरे आयुर्वेद-ग्रन्थोंमें है। वहाँ पर जो जो वस्तुएँ तैयार रखनी चाहिए, उनकी भी एक तालिका दी है। यह तालिका वही है, जो कादम्बरीमें दी गयी है। चरक-में सूतिकागृहमें रक्षाविधान कादम्बरीके वर्णनसे मिलता है। यथा—चरक-में—'इसके पीछे कुमारकी रक्षा करे—आदीन, खैर, बेर, पीलु, फाल्सा इनकी शाखाओंसे घरको चारों ओरसे ढाँप दे। सूतिकागारके चारों ओर सरसों, अलसी, तण्डुलकी कणिकाएँ बखेर देनी चाहिए। जब तक बच्चेका नामकरण न हो, तब तक दोनों समय तण्डुल-कणिकाओंसे होम करना चाहिए। घरके दरवाजे पर मूसलको तिरछा—आड़ा रख दे। वच, कूट, अलसी, हींग, सरसों, लहसुन, आदि रक्षोघ्न ओषधियोंको पोटलीमें बाँधकर सूतिकागारकी उत्तरकी देहलीमें बाँध देना चाहिए। इसी प्रकारसे इन ओषधियोंकी पोटलियाँ प्रसूता, बच्चे, स्थाली, घड़े, पलंग और दरवाजे-

१. केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कवीन्।
किं पुनः क्लृप्तसन्धानः पुलिन्ध्रकृतसन्निधिः॥

के दोनों किवाड़ोंपर बाँध देनी चाहिए। काँटेवाली लकड़ियोंसे—तिन्दुककी लकड़ियोंसे सूतिकागारके अन्दर निरन्तर अग्नि जलती रखनी चाहिए। ऊपर कहे गुणवाली स्त्रियाँ [जिन्होंने बहुतसे प्रसव पहिले किये हों; मैत्री भावयुक्त, नित्य स्नेह रखनेवाली, सेवामें चतुर, उत्तम सूझवाली, स्वभावसे ही प्रेम-भाववाली, निरालसी, कष्टको उठानेवाली—चरक० ८।३६] और मित्र दस-बारह दिनों तक बराबर जागते रहें। अथर्ववेदको जाननेवाले ब्राह्मण दोनों समय सूतिका और कुमारकी मंगल-कामनाके लिए स्वस्तिवाचन पढ़ते रहें। निरन्तर दान, मंगल कार्य, स्तुति, गाना-बजाना, खानपान और स्नेहभाव घरमें चलता रहे। —चरक० शा० ८।५१।व

"तत्र च सुकृतरक्षासंविधाने नवसुधानुलेपनधवलिते, प्रज्वलित-मङ्गलप्रदीपे, पूर्णकलशाधिष्ठितपक्षके, प्रत्यग्रलिखितमङ्गल्यालेख्योज्ज्वलित-भित्तिभागमनोहारिणि, उपरचितसितविताने, वितानपर्यन्तावबद्धमुक्तागुणे, मणिप्रदीपप्रहिततिमिरे वासभवने भूतिलिखितपत्रलताकृतरक्षापरिक्षेपम्, शयनशिरोभागविन्यस्तधवलनिद्रामङ्गलकलशम्, आबद्धविविधौषधिमूल-यन्त्रपवित्रम्, अवस्थापितरक्षाशक्तिवलयम्, इतस्ततो विप्रकीर्णगौरसर्षपम्, अवलम्बितबालयोक्त्रग्रथितलोलपिप्पलपत्रम, आसक्तहरितारिष्टपल्लवम्, उत्तुङ्गपादपीठप्रतिष्ठितम्, इन्दुदीधितिधवलप्रच्छदपटम्, अचलराजशिला-तलविशालम्, गर्भोचितं शयनतलमधिशयानां..................शीतल-प्रदीपैर्गोरोचनामिश्रगौरसर्षपैश्च सलिलाञ्जलिभिश्चाचारकुशलेनान्तःपुर-जरतीजनेनक्रियमाणावितरणकमङ्गलाम्, धवलाम्बरविविक्तवेषेण प्रमुदितेन प्रस्तुतमङ्गलप्रायालापेन परिजनेनोपास्यमानाम्,..............दुकूलयुगलं वसानां विलासवतीं ददर्श।' —कादम्बरी पूर्व भाग.

पार्थिवस्तु तनयाननदर्शनमहोत्सवहृतहृदयोऽपि दिवसवशेन मौहूर्त्ति-कगणोपदिष्टे प्रशस्ते मुहूर्त्ते निवारितनिखिलपरिजनः शुकनास-द्वितीयो मणिमयमङ्गलकलशयुगला शून्येनासक्तबहुपुत्रिकालं कृतेन ....संनिहितकनकमयहलमूसलयुगेन ....वर्धमान

परम्परामन्यानि च सूतिकागृहमण्डनमण्डलानि सम्पादयता पुरन्ध्रिवर्गेण समाधिष्ठितम् ; अनवरतदह्यमानाज्यमिश्रभुजगनिर्मोकमेषविषाणक्षोदम् अनलपुष्यमाणारिष्टतरुपल्लवोल्लसितरक्षाधूमगन्धम् , अध्ययनमुखरद्विज-गणविप्रकीर्यमाणशान्त्युदकलवम् , अभिनवलिखितमातृपदपूजाव्यग्र-धात्रीजनम् , अनेकवृद्धाङ्गनारब्धसूतिकामङ्गलगीतिकामनोहरम् , उपपाद्य-मानस्वस्त्ययनम् ; क्रियमाणशिशुरक्षाबलिविधानम्;·················· अविच्छिन्नपठ्यमाननारायणनामसहस्रम् ;··············सर्वतो रक्षापुरुषैः परिवृत्तं सूतिकागृहमदर्शत् । —कादम्बरी पूर्व भाग ।

अग्निमें नीमके पत्ते जलानेमें सुश्रुतमें लिखित रक्षाविधानका पूर्णतः अनुसरण किया है ।[1]

बाणका वर्णन साहित्यिक है, विस्तृत है, देशके आचारके अनुसार है और चिकित्साके लिए आवश्यक सभी बातोंको लिये हुए है। यह चरकमें वर्णित बातोंको भी पुष्ट करता है।

कादम्बरीमें षष्ठी देवीकी पूजाका उल्लेख बाणने किया है। इस पूजाका उल्लेख संग्रहमें भी है; यथा—

षष्ठीं निशां विशेषेण कृतरक्षाबलिक्रियाः ।
जागृयुर्बान्धवास्तस्य दधतः परमां मुदम् ॥

इसी प्रकार काश्यपसंहितामें भी षष्ठी पूजाका उल्लेख है।

षण्मुखी नित्यललिता वरदा कामरूपिणी ।
षष्ठी च ते तिथिः पूज्या पुण्या लोके भविष्यति ॥

—बालग्रहचिकित्सा

---

१. सर्षपारिष्टपत्राभ्यां सर्पिषा लवणेन च ।
द्विरह्नः कारयेद् धूपं दशरात्रमतन्द्रितः ॥
अनेन विधिना युक्तमादावेव निशाचराः ।
वनं केसरिणाक्रान्तं वर्जयन्ति मृगादिव ॥
—सुश्रुत० सूत्र० अ० १६।२८।३१ ।

वैद्य साथी—हर्षचरितमें बाणने अपने चौवालीस मित्र–सहायकोंकी तालिका दी है। इनमें मन्त्र विद्या और वैद्योंमें—भिषग्पुत्र मंदारक; जाङ्गुलिक [विषवैद्य या गारुड़ी] मयूरक, मन्त्रसाधक कराल, धातुवादविद् [रसायन या कीमिया बनानेवाला] विहंगम और असुरविवरव्यसनी लोहिताक्ष—पातालमें घुसनेकी विद्याको जाननेवाला, पातालमें घुसकर यक्ष या राक्षसको सिद्ध करके धन प्राप्त करनेवाला।[1]

बाणके इन साथियोंमें सब प्रकारकी चिकित्साको जाननेवाले मित्र आते हैं। बाणके समयमें भी धातुवाद-निम्नधातुसे स्वर्ण-चाँदी बनाना होता था। मन्त्र विद्याका भी प्रचार अच्छा था। जाङ्गुलिक वैद्योंका उल्लेख कौटिल्य अर्थशास्त्रमें भी आता है [**तस्मादस्य जाङ्गुलीविदः भिषजश्चासन्नाः स्युः-कौटिल्य**]। चिकित्साके आठ अंगोंमें एक अंग अगदतन्त्र भी है।

बाणके साथियोंको देखकर अनुमान होता है कि उस समय आयुर्वेद-चिकित्सा अपने उत्कर्ष पर थी। इस समय रसशास्त्र और धातुवाद भी प्रचलित था।

प्रभाकरवर्धनकी बीमारीका जो उल्लेख हर्षचरितमें हमको मिलता है, उसमें तत्कालीन चिकित्साकी सुन्दर झलक है। देखिये—

[2]हर्ष स्कन्धावार पार करके राजद्वार पर आया। ड्योढ़ीके भीतर सब लोगोंका जाना रोक दिया गया था। जैसे ही वह घोड़ेसे उतरा उसने

---

१. **जाङ्गुलिको मयूरकः; भिषक्पुत्रो मन्दारकः; मन्त्रसाधकः करालः, असुरविवरव्यसनी लोहिताक्षः, धातुवादविद् विहङ्गमः। संवाहन क्रियामें कुशल संवाहिका केरलिका स्त्री भी बाणके साथ थी। [हर्षचरित प्रथम उच्छ्वास।]**

२. [क] **तुरगादवतीर्णश्चाभ्यन्तरनिष्क्रामन्तमप्रसन्नमुखरागमुन्मुक्तमिवेन्द्रियैः सुषेणनामानं वैद्यकुमारमद्राक्षीत्। कृतनमस्कारं चाप्राक्षीत्—सुषेण, अस्ति तातस्य विशेषो न वा। सोऽब्रवीत् नास्तीदानीं यदि भवेत्कुमारं दृष्ट्वा इति।**

सुषेण नामक वैद्यकुमारको भीतरसे बाहर आते हुए देखा और पिताकी हालत पूछी। सुषेणने कहा—अभी तो अवस्थामें सुधार नहीं है। आपके मिलनेसे कदाचित् हो जाय।

वैद्य भी ज्वरकी गम्भीरतासे डर गये थे। मन्त्री घबराये हुए थे। पुरोहितका बल भी फीका पड़ गया था। मित्र, विद्वान्, मुख्य सामन्त सभी दुःखमें डूबे थे। चामरग्राही और शिरोरक्षक [प्रधान अङ्ग-रक्षक] दोनों दुःखसे कृश थे। कंचुकी, वंदीगण एवं आसन्न सेवक सब दुःखी थे। प्रधान रसोइये (पौरोगव) वैद्यों-द्वारा बताये पथ्यकी बात ध्यानसे सुन रहे थे। दुकानदार या अत्तार अनेक प्रकारकी जड़ी-बूटियाँ [भेषज सामग्री] जुटानेमें लगे थे। पीनेके पानीके अध्यक्ष [तोयकर्मान्तिक] की बार-बार पुकार हो रही थी। तक्रकी मटकियोंको बरफमें लपेटकर ठंडा किया जा रहा था [अथ गोतक्रसंसिक्तं शीतलीकृतवाससा। काञ्जिजकार्द्रपटेनावगुण्ठनं दाहनाशनम्॥ से तुलना करें]। बरफके प्रयोगके सम्बन्धमें बाणका यह उल्लेख सबसे प्राचीन है। जाड़ेके दिनोंमें जमा हुआ बरफ हिमालयसे लाकर भूमिके नीचे गड्ढे खोदकर उनमें यत्नपूर्वक संचित किया जाता था।

[ख] बद्धमण्डले नोपांशुव्याहृतैः केनचित् चिकित्सकदोषानुद्भावयता केनचिदसाध्यव्याधिलक्षणपदानि पठता;······················राजकुलं विवेश।

[ग] अविरलबाष्पपयःपरिप्लुतलोचनेन पितृपरिजनेन वीक्ष्यमाणो विविधौषधिद्रव्यद्रवगन्धगर्भमुत्क्वथतां क्वाथानां सर्पिषां तैलानां च पच्यमानानां गन्धमाजिघ्रन्नवाप तृतीयं कक्ष्यान्तरम्।

[घ] विलक्ष वैद्योपदिश्यमानपथ्याहरणावहितपौरोगवे।

[ङ] भेषजसामग्रीसम्पादनव्यग्रसमग्रव्यवहारिणि, मुहुर्मुहुराहूयमान-तोयकर्मान्तिकानुमितघोरातुरतृषितुषारपरिकरितकरकशिशिरक्रियमाणोदश्विति, श्वेतार्द्रकर्पटार्पितकर्पूरपरागशीतलीकृतशलाके।

[च]—समयभिषग्दृष्टैररिष्टैराविष्टम्। —हर्षचरित ३५

[आज भी मसूरीमें शीतकालमें गिरी बर्फको खुदवाकर गड्ढे में भर कर रखा जाता है और गर्मियोंमें उसका उपयोग होता है]।

बाणभट्टके दोनों ग्रन्थोंमें चिकित्सा-सम्बन्धी उल्लेख जिस रूपमें हमें मिलते हैं, वही रूप आज भी इस देशमें गाँवोंके अन्दर मिल जाता है। वहाँ पर बरफ़के स्थानपर सिरका [कांजी] या नमकका पानी या छाछका ही व्यवहार ज्वरकी गरमी शान्त करनेके लिए होता है। प्रभाकरवर्द्धनके लिए बरफ़ का संचय सुलभ था।

प्रभाकरवर्धनकी चिकित्सामें पौनर्वसव [आत्रेयशास्त्रका ज्ञाता] अट्ठारह वर्षका एक रसायन नामका वैद्य था, जो राजकुलमें वंश-परम्परासे आ रहा था। यह आयुर्वेदके अष्टांगोंमें निपुण था, इसको राजाने अपने पुत्रके समान ही पाला था। वह स्वभावसे ही अति चतुर और व्याधिको पहिचाननेमें निपुण था।[1]

इससे स्पष्ट है कि आत्रेय सम्प्रदाय—शाखा या शास्त्रका सम्राट् हर्षके समय अच्छा प्रचार था तथा आयुर्वेदके आठों अंग उस समय भी पढ़ाये जाते थे।

---

१. तेषां तु भिषजां मध्ये पौनर्वसवो युवाष्टादशवर्षदेशीयस्तस्मिन्नेव राजकुले कुलक्रमागतो गतः पारमष्टाङ्गस्यायुर्वेदस्य भूभुजा सुतनिर्विशेषं लालितः प्रकृत्यैवातिपटीयस्या प्रज्ञया यथावद्विज्ञाता व्याधिस्वरूपाणां रसायनो नाम वैद्यकुमारकः सास्रतूर्ष्णीमधोमुखोऽभूत्। पृष्ठश्च राजसूनुना सखे रसायन, कथय तथ्यं यद्यसाध्विव पश्यसि। सोऽब्रवीत्—देव श्वः प्रभाते यथावस्थितमावेदयितास्मि, इति। पञ्चम उच्छ्वास।

भवभूति

जडानामपि चैतन्यं भवभूतेरभूद् गिरा ।

महाकवि कालिदासके साथ स्पर्धा करनेवाला यदि कोई कवि संस्कृत-साहित्यमें है तो वह 'भवभूति' है। भवभूतिने अपना परिचय स्वयं दिया है। आपका जन्म विदर्भ देश [बरार] के पद्मपुर नगरमें हुआ था। ये काश्यपगोत्री तथा कृष्णयजुर्वेदकी तैत्तिरीयशाखाके माननेवाले ब्राह्मण थे। इनके पितामहका नाम भट्टगोपाल, पिताका नाम नीलकण्ठ; माताका नाम जतुकर्णी तथा इनका अपना नाम श्रीकण्ठ था। ऊदुम्बर इनकी उपाधि थी। भवभूति तो इनका विशिष्ट नाम है। इनके पूर्वज सदाचार और वेदाध्ययनके लिए प्रसिद्ध थे। ये पंक्तिपावन तथा पाँच अग्नियोंकी स्थापना करनेवाले सोमराजी श्रोत्रिय ब्राह्मण थे। इन्होंने अपने गुरुका नाम 'ज्ञाननिधि' बतलाया है, परन्तु दार्शनिक ग्रन्थोंमें लिखित परम्पराके अनुसार ये कुमारिलके शिष्य थे और दार्शनिक जगत्में इनका नाम भट्ट उम्बेक था।

समय—राजतरंगिणीसे पता चलता है कि [४।१३४] भवभूति कान्य-कुब्जके विद्वान् राजा यशोवर्माके सभा-पण्डितोंमें से थे।

कविवाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः ।
जितो राजा यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम् ॥

ये यशोवर्मा कान्यकुब्जके राजा थे, जिन्हें काश्मीरके राजा मुक्तापीड़ ललितादित्यने परास्त करके अपने अधीन किया था। यह घटना ७३६ ईस्वीके आसपासकी है। ललितादित्यका समय ७२४ ईस्वीसे ७६१ ईस्वी माना जाता है। यशोवर्मा इन्हींके समकालीन थे। इसलिए भवभूतिका समय

७०० ईस्वीके लगभग मानना उचित है। बाणने इनका उल्लेख नहीं किया, इसलिए ये बाणसे पूर्ववर्ती प्रतीत होते हैं। वामन ही पहले आलङ्कारिक हैं, जिन्होंने भवभूतिके श्लोकोंको उद्धृत किया है। इसलिए इनका समय बाणभट्ट [६२५] तथा वामनभट्ट [८००] के बीच ७०० ईस्वीके आसपास होना चाहिए।

ग्रन्थ—भवभूतिकी तीन रचनाएँ मिलती हैं। तीनों ही रूपक हैं; यथा—महावीरचरित, मालतीमाधव और उत्तररामचरित। भवभूतिकी इन तीनों रचनाओंमें उत्तररामचरित सबसे सुन्दर रचना मानी जाती है [**उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते**]। यह नाटक दुःखान्त न होकर नाटक-परम्पराके अनुसार सुखान्त है।

भवभूतिमें विदग्धता और पाण्डित्यका अपूर्व मिलन है। उन्होंने वेद, उपनिषद् एवं दर्शनके प्रगाढ़ अध्ययनकी ओर स्वयं संकेत किया है [मालती-माधव १।६]। वेद और दर्शनोंका इनका ज्ञान अगाध था। उपनिषद् तत्त्वके तो ये परमज्ञाता थे। इनके नाटकोंमें वैदिक ज्ञानकी अनेक सूचनाएँ मिलती हैं। उत्तररामचरितमें उन्होंने जनकके मुखसे **असूर्या नाम ते लोकाः** [ईशोपनिषद्] की व्याख्या करायी है। साथ ही इस समय गोवध भी चलता था, इसका भी उल्लेख किया है।

आयुर्वेदके वचन

गोवध—चरक संहितामें गायके मांसको सब मृग-मांसोंमें निन्दित कहा है [**गोमांसं मृगमांसानामहिततमः—सूत्र० अ० २४।३६**]। अतिसार रोगकी उत्पत्ति बताते हुए अत्रिपुत्रने कहा है कि—'आदिकालमें यज्ञमें पशु मन्त्रसे अभिमंत्रित करके छोड़ दिये जाते थे। उनका वध नहीं किया जाता था। फिर दक्षके यज्ञके बाद मनुके पुत्र नरिष्यन्, नामधेय, इक्ष्वाकु आदिने यज्ञमें पशुओंकी प्रेरणा–आज्ञा होनेसे इनका वध प्रारम्भ किया। इसके पीछे पृषध्रने जब बहुत लम्बा यज्ञ किया, तब पशुओंका मिलना कठिन

हो गया। पशुओंके न मिलनेसे गायोंका वध प्रारम्भ किया। इसको देखकर देवगण डर गये, इनके वधके कारण, गायकी प्रतिष्ठासे; गायके मांसके असात्म्य होनेसे, मानसिक ग्लानिसे मनुष्योंमें अतीसार उत्पन्न हुआ[१]।

—चरक चि० अ० १९।४

भवभूतिने राजा जनकके आनेपर गायके मारनेका उल्लेख किया है, परन्तु उनके वानप्रस्थी होनेसे उन्होंने उसको स्वीकार नहीं किया। सम्भवतः भवभूति जैसे कर्मकाण्डी-मीमांसाके समर्थकके लिए यह वस्तु मान्य होगी। उस समय इसका प्रचार होगा। देखिये—

सौधातकिः—येन परापतितेनैव सा वराकी कपिला कल्याणी बलात्कृत्य मडमडायिता।

दण्डायनः—समांसो मधुपर्क इत्याम्नायं बहुमन्यमानाः श्रोत्रियायाभ्यागताय वत्सतरीं महोक्षं वा पचन्ति गृहमेधिनः। ते हि धर्मं धर्मसूत्रकाराः समामनन्ति।[२]

---

१. कालिदासने भी मेघदूतमें रन्तिदेवकी कीर्त्ति रूप चर्मण्वती नदीका उल्लेख किया है; यह नदी गायके वधसे ही बनी थी—

व्यालम्बेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्य-
न्स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्त्तिम्।

—मेघदूत। पूर्वमेघ।४७

२. [क] महान्तमुक्षाणं बलीवर्दं श्रोत्रियाय मधुपर्कादाय गृहमागतायोपकल्पयेत्-पचेत्।

[ख] महोक्षं वा महाजं वा श्रोत्रियायोपकल्पयेत्। याज्ञवल्क्य. १।१०९।

[ग] यावन्तः खलु वै राजानमनुयन्ति तेभ्यः सर्वेभ्य आतिथ्यं क्रियते। अत्र महोक्षोपकल्पनेन मधुपर्को विधीयते।

[घ] मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि।

अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः॥ मनु. ५।४१।

सौधातकिः—**येनागतेषु वशिष्ठमिश्रेषु वत्सतरी विशसिता। अद्यैव पर्यागतस्य राजर्षेर्जनकस्य भगवता वाल्मीकिना दधिमधुभ्यामेव निर्वर्तितो मधुपर्कः। वत्सतरी पुनर्विसर्जिता।**

दण्डायनः—**अनिवृत्तमांसानामेव कल्पं व्याहरन्ति केचित्। निवृत्तमांसस्तु तत्रभवान् जनकः।** —उत्तररामचरित—चतुर्थ अंक।

अत्रिपुत्रने गायके मांसको सब पशुओंके मांसमें अहितकारी बताया है, परन्तु भवभूतिके समयमें कर्मकाण्ड तथा स्मृतियोंमें इस कार्यका समर्थन स्पष्ट दीखता है।

अलर्क विष—सामान्यतः किसी पशुमें पागलपन होनेसे उसे 'अलर्क विष' कहते हैं। यह मुख्यतः कुत्तोंमें होता है। इससे ग्रस्त कुत्ता दूसरोंको काटता है। उसके सामने जो आता है, उसे ही वह काटता है। इसके काटनेसे इसकी लाला द्वारा विष दूसरे प्राणीके शरीरमें जाकर विषका प्रभाव करता है।[1] इस विषको अलर्क विष कहते हैं। यह विष शरीरमें फैलता है। [सू. क. अ. ७]

इसी बातको भवभूतिने भी कहा है—

एतत्पुनरपि दैवदुर्विपाकादालर्कं विषमिव सर्वतः प्रसक्तम् ॥ उत्तर. १।४०

---

१. श्वा त्रिदोषप्रकोपात्तु तथा धातुविपर्ययात्।
शिरोऽभितापी लालास्राव्यधोवक्त्रस्तथा भवेत्॥
अन्येप्येवंविधा व्यालाः कफवातप्रकोपणाः।
हृच्छिरोरुग्ज्वरस्तम्भतृषामूर्छाकराः मताः॥
—चरक० चि० अ. २३।१७५-१७५

श्वशृगालतरक्षुऋक्षुव्याघ्रादीनां यदाऽनिलः।
श्लेष्मप्रदुष्टो मुष्णाति संज्ञां संज्ञावहाश्रिताः॥
तदा प्रस्रस्तलांगूलहनुस्कन्धोऽतिलालवान्।
अत्यर्थं बधिरोऽन्धश्च सोऽन्योन्यमभिधावति॥
तेनोन्मत्तेन दष्टस्य दंष्ट्रिणा सविषेण तु॥
—सु. क. अ. ७।४३-४६.

माघ

शिशुपालवध महाकाव्यके कर्त्ताका नाम माघ है। माघके जीवनकी घटनाओंका पता भोजप्रबन्ध तथा प्रबन्धचिन्तामणिसे लगता है। दोनों पुस्तकोंमें प्रायः एकसी ही कहानी है। माघने ग्रन्थके अन्तमें अपना थोड़ा परिचय भी दिया है।

माघके दादा सुप्रभदेव वर्मलात नामक राजाके, जो गुजरातके किसी प्रदेशका शासक था; प्रधान मंत्री थे। पिताका नाम दत्तक था, जो बहुत दानी और विद्वान् थे और जिन्होंने गरीबोंकी सहायतामें अपना धन अधिक मात्रामें खर्च किया। माघका जन्म भीनमालमें हुआ था। भीनमालका उल्लेख ह्वेनसांगने भी किया है। माघ भी बहुत दानी थे। राजा भोजसे इनकी मित्रता थी।

दान देते-देते वे चारुदत्त [मृच्छकटिकका नायक] की तरह निर्धन हो गये थे। अन्तमें अपनी स्त्रीको एक श्लोक [**कुमुदवनमपश्रीश्रीमदाम्भोजखण्ड**—११ सर्गमें प्रभात वर्णन] लिख कर राजा भोजके पास भेजा। राजाने प्रभूत धन दिया। पत्नीने यह सब धन दरिद्रोंको बाँट दिया और स्वयं खाली हाथ घर आयीं, परन्तु याचकोंका ताँता बना ही रहा। कोई दूसरा उपाय न देखकर माघ कविने अपने प्राण छोड़ दिये।

समय—माघका समय सुनिश्चित नहीं है। कोई तो इनको सातवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें मानता है। कोई आठवीं शताब्दीके मध्यभागमें इनको मानता है। आनन्दवर्धनाचार्य जो नवीं शताब्दीमें हुए, उन्होंने अपने ध्वन्यालोकमें माघके कई पद्य उद्धृत किये हैं [**रम्याः इति प्राप्तवती पताकाः—३।५३; त्रासाकुलः परिपतन्—५।२५**]। डाक्टर किलहार्नको राजपूतानेके वसन्तगढ़ नामक स्थानसे वर्मलात राजाका एक शिलालेख मिला है। शिशुपाल-

वधकी हस्तलिखित प्रतियोंमें सुप्रभदेवके आश्रयदाताका नाम भिन्न भिन्न लिखा है। उन नामोंमें एक नाम वर्मलात है। इसलिए कि सुप्रभदेवका समय ६२५ ईस्वी है, इससे इनके पौत्र माघका समय ६५० से ७०० ईस्वी होगा—अर्थात् सातवीं सदीका उत्तरार्ध है।[1]

ग्रन्थ—माघका एक ही काव्य-शिशुपाल वध मिलता है। इसी एक महाकाव्य पर ही कविकी सारी कीर्त्ति जुड़ी है। काव्य लम्बे बीस सर्गोंमें पूरा होता है। महाकाव्यके सभी लक्षण इसमें घटते हैं। ऋतुओंका वर्णन बेजोड़ है। स्थान स्थान पर राजनीतिकी चर्चा, सूक्ष्म विवेचना एवं अलंकारोंकी नवीनता इसमें मिलती है। लोकमें प्रसिद्ध है कि माघके नौ सर्ग पढ़ लेने पर नया शब्द फिर नहीं रहता [**नवसर्गे गते माघे नवशब्दो न वर्त्तते**]। माघने श्लेषको बहुत सुन्दरतासे प्रयुक्त किया है। यमक, अनुलोम, प्रतिलोम, एकाक्षर, सर्वतोभद्र आदि अनेक चित्रालंकारोंका भी सन्निवेश इस काव्यमें मिलता है।

माघ केवल सरस कवि ही नहीं थे—अपितु एक प्रचण्ड-सर्वशास्त्रतत्त्वज्ञ विद्वान् भी थे। माघने भिन्न-भिन्न शास्त्रोंका अध्ययन किया था। इन शास्त्रोंके सिद्धान्तोंको माघने जिस प्रकार प्रस्तुत किया है, उस प्रकारका प्रयोग दूसरे महाकाव्यमें देखनेको नहीं मिलता। वेद, दर्शन, राजनीति, आयुर्वेद तथा ज्योतिष सबकी चर्चा इस काव्यमें मिलती है। व्याकरण, हिन्दूदर्शन, बौद्धदर्शन, नाट्यशास्त्र, अलंकारशास्त्र, संगीत आदि शास्त्रोंका उत्कर्ष इस महाकाव्यमें दिखाई देता है।

आयुर्वेदके वचन

रोगको बढ़ने नहीं देना चाहिए—यह रोग साध्य है, ऐसा समझकर जो पुरुष पहले रोगकी उपेक्षा करता है; वही व्यक्ति कुछ कालके पीछे उस रोगसे अपनेको मृतकी भाँति समझता है। जो व्यक्ति रोगोंसे पूर्व

---

१. श्री बलदेव उपाध्याय जी कृत 'संस्कृत साहित्यका इतिहास' के आधारसे।

या प्रारम्भिक कालमें ही रोगोंकी ठीक प्रकारसे चिकित्सा करता है, वह देर तक सुख प्राप्त करता है। जिस प्रकार थोड़ेसे ही यत्नसे नूतन वृक्ष कट जाता है; और वही वृक्ष बहुत बढ़ने पर अति प्रयत्नसे कटता है। इसी प्रकार नूतन रोग सरलतासे अच्छा हो जाता है और बढ़ने पर कष्टसे अच्छा होता है या असाध्य हो जाता है। [चरक. नि.अ. ५।२०-२३]

माघने भी यही बात कही है—बढ़ते हुए शत्रु और रोगकी उपेक्षा बुद्धिमान्‌को नहीं करनी चाहिए। रोग और शत्रु दोनों एक जैसे ही हैं—

उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छता।
समौ हि शिष्टैराम्नातौ वर्त्स्यन्तावामयः स च॥ २।१०।

आम ज्वरमें स्नान निषिद्ध है—जब तक ज्वरकी आमावस्था रहे या रोगी निर्बल हो, उसके लिए स्नानका निषेध है। नव ज्वरमें दिनमें सोना, स्नान, अभ्यंग, मैथुन, क्रोध, सामनेकी वायु, व्यायाम और कषायों का सेवन नहीं करना चाहिए। [चरक० चि० अ० ३।१३८]

कविने भी इसीको कहा है—

चतुर्थोपायसाध्ये तु रिपौ सान्त्वमपक्रिया।
स्वेद्यमामज्वरं प्राज्ञः कोऽम्भसा परिषिञ्चति॥२।४५।

रसायन या औषध शक्तिके अनुसार सेवन करनी चाहिए—मनुष्यको चाहिये कि रसायन ओषधियोंका सेवन संयम तथा ध्यानपूर्वक करे। दिव्यौषधियोंके प्रभावको अकृतात्मा व्यक्ति सहन नहीं कर सकते [चरक० चि० अ० १।३।८-१०]।

माघने भी कहा है कि रसायनका सेवन अपनी शक्तिके अनुसार ही करना चाहिए—

षाड्गुण्यमुपयुञ्जीत शक्त्यपेक्षो रसायनम्।
भवन्त्यस्यैवमङ्गानि स्थास्नूनि बलवन्ति च॥२।९३।

यक्ष्मा रोगके विषयमें—यक्ष्मा रोगके चार कारण हैं—विषमाशन, क्षय, वेगोंका रोकना और साहस। कविने साहस कारणका उल्लेख किया है। चरकमें भी अत्रिपुत्रने कहा है कि—

साहस शोष रोगका कारण है। इस कथनकी व्याख्या इस प्रकार है—जब दुर्बल पुरुष बलवान् पुरुषके साथ युद्ध करता है, बड़े भारी धनुष-को तानता है, बहुत अधिक मात्रामें बोलता है [जैसे अध्यापक या उपदेशक]; बहुत बड़ी मात्रामें बोझको उठाता है, पानीमें बहुत दूर तक तैरता है, बहुत जोरके साथ पैरोंके द्वारा उत्सादन करता है, बहुत लम्बे रास्तेको बहुत जल्दी-जल्दी चलकर पार करता है, अथवा अन्य इसी प्रकारका व्यायामादि कार्य अधिक मात्रामें या अनुचित रूपमें कार्य करना जब मनुष्य प्रारम्भ करता है; तब कामकी अधिक मात्राके कारण छातीमें व्रण हो जाता है।

इस उरःक्षतमें वायु पहुँच जाती है। यह वायु छातीमें स्थित कफके साथ मिलकर धातुओंका शोषण करती हुई सारे शरीरमें ऊपर, नीचे, तिरछी फैलती है। इस वायुका जो भाग सन्धियोंमें प्रविष्ट होता है, उससे मनुष्यको जम्भाई, अंगोंका टूटना और ज्वर हो जाता है। जो भाग आमाशयमें आता है; उससे अतिसार होता है; जो भाग हृदयमें प्रविष्ट होता है; उससे मनुष्यको छाती सम्बन्धी रोग होते हैं; जो भाग जिह्वामें आता है; उससे अरुचि होती है। जो भाग कण्ठमें आता है उससे स्वर क्षीण हो जाता है और स्वर भंग हो जाता है। वायुका जो भाग प्राणवह स्रोतोंमें पहुँचता है; उससे श्वास, प्रतिश्याय हो जाता है। जो भाग सिरमें पहुँचता है, उससे सिर पीड़ित होता है। उरमें व्रण होनेसे और वायुकी विषमगति होनेके कारण गलेमें उद्ध्वंसन हो जानेसे इसको निरन्तर कास हो जाता है। खाँसीके कारण छातीमें क्षत हो जानेसे रोगीके थूकमें रक्त आता है, रक्तके आनेसे निर्बलता उत्पन्न होती है। फिर साहसके कारण उत्पन्न होनेवाले उपद्रव प्रारम्भ होने लगते हैं। जिससे शोषके इन उपद्रवोंसे पीड़ित होनेपर मनुष्य धीरे-धीरे सूख जाता है। इसलिए बुद्धिमान मनुष्यको चाहिये कि

अपने बलको देखकर उसके अनुरूप ही सब कार्योंको करना प्रारम्भ करे। शरीर बलपर आश्रित है और पुरुषका मूल शरीर ही है—

साहसं वर्जयेत्कर्म रक्षन् जीवितमात्मनः।
जीवन् हि पुरुषस्त्विष्टं कर्मणः फलमश्नुते॥ नि० ६।६

कविने एक ही श्लोकमें सारी गुत्थीको सुलझाया है। देखिये—

स्थाने शमवतां शक्त्या व्यायामे वृद्धिरङ्गिनाम्।
अयथाबलमारम्भो निदानं क्षयसम्पदः॥२।९४।

क्षय रोगके नाम—इस रोगके साथ बहुतसे उपद्रव—पीछे होनेवाले रोग तथा बहुतसे पूर्वगामी—पूर्वरूपमें चलनेवाले रोग लगे रहते हैं। इसीसे यह रोग कठिनाईसे जाना जाता है, कठिनाईसे अच्छा होता है और बहुत बलवान है। रस आदि धातुओंका शोषण करनेसे इसको शोष कहते हैं; क्रियाओंका क्षय करनेसे इसको क्षय कहते हैं; राजा चन्द्रमाको सबसे पहले यह रोग हुआ था, इसलिए इसको राजयक्ष्मा कहते हैं।—[सुश्रुत० उत्तर० ४१।३–५]।

क्षय रोगके ग्यारह उपद्रव प्रसिद्ध हैं—शिरमें भारीपन, कास, श्वास, स्वरभेद, कफका आना, रक्तका आना, पार्श्वशूल, अंसपीड़ा, ज्वर, अतीसार और अरोचक [चरक० नि० अ० ६।१६]।

कवि माघने भी इसका चित्र इसी प्रकार अंकित किया है—

मा वेदि यदसावेको जेतव्यश्चेदिराडिति।
राजयक्ष्मेव रोगाणां समूहः स महीभृताम्॥ २।९३।

अपस्मार—अपस्मार रोगमें रोगीकी स्मृति नष्ट हो जाती है। वह भूमि पर काष्ठके समान गिर पड़ता है। हाथोंको चारों ओर घुमाता है, ऊँचेसे रोता है, [**असाम्ना विलपन्तम्**]; मुखसे झागका आना [**उद्वमन्तं फेनम्**]; हाथ-पैरोंका इधर-उधर फेंकना [**अनवस्थितसक्थिपाणिपादम्**]; इस रोगमें होता है।

कविने समुद्रका वर्णन करते हुए उसे भी अपस्मार रोगके समान चेष्टा करता हुआ कहा है—

आश्लिष्टभूमिं रसितारमुच्चैः लोलद्भुजाकारबृहत्तरङ्गम्।
फेनायमानं पतिमापगानामसावपस्मारिणमाशशङ्के॥ ३।७२।

बालोंको धूप देना—स्त्रियाँ बालोंको धूप देती थीं, इसका उल्लेख जिस प्रकार कालिदासने किया है, माघने भी किया है—

स्वाङ्गानि धूमरुचिमागुरवीं दधानै-
धूंपायतीव पटलैः नवनीरदानाम्॥ माघ ४।५२।

हरतालका उल्लेख—स्वर्ण, रजत, मैनसिल और गेरुकी भाँति हरताल खनिज भी कविको ज्ञात था। यथा—

वहति यः परितः कनकस्थलीः सहरिता लसमाननवांशुकः।
अचल एष भवानिव राजते स हरितालसमाननवांशुकः॥४।२१।

—००—

त्रिविक्रम भट्ट

संस्कृत साहित्यका प्रथम चम्पू है—नलचम्पू। इसीको दमयन्ती कथा भी कहते हैं। इसके रचनाकार हैं त्रिविक्रम भट्ट। इनका शाण्डिल्य गोत्र था, पिताका नाम नेमादित्य और पितामहका नाम श्रीधर था। इन्होंने बाणभट्टके काव्यकी प्रशंसा अपने काव्यमें की है। इनके एक श्लोक को [**पर्वतभेदि पवित्रं** ६।२९] भोजराजने सरस्वतीकण्ठाभरणमें उद्धृत किया है। भोजराजका समय दसवीं शताब्दीका प्रारम्भ है। इस लिए इनका समय बाण और भोजके बीचमें आता है, जो सातवीं सदीके बीचका है। शिलालेखोंसे पता चलता है कि त्रिविक्रम राष्ट्रकूट-वंशी कृष्ण द्वितीयके पौत्र तथा जगतुंग और लक्ष्मीके पुत्र इन्द्रराजके सभापण्डित थे। इन्द्रराजका नवसारीका शिलालेख स्वयं त्रिविक्रमकी रचना है, इसका उल्लेख शिलालेखके अन्तमें किया है। इस शिला-लेखका समय शक संवत् ८३६ [ईस्वी सन् ९१५] है। इससे स्पष्ट है कि त्रिविक्रम दसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें विद्यमान थे।

ग्रन्थ—प्रथम नलचम्पू या दमयन्ती कथा है जो प्रसिद्ध चम्पू है। दूसरा ग्रन्थ मदालसा चम्पू भी इन्हींका बनाया कहा जाता है पर इसका विशेष विवरण ज्ञात नहीं है। नलचम्पूकी संस्कृत साहित्यमें बहुत प्रसिद्धि है, इसके मनोरम पद्योंको उदाहरणके रूपमें भोजराज और विश्वनाथ कविराजने अपने अलंकार ग्रन्थोंमें उद्धृत किया है।

आयुर्वेदके वचन

आयुर्वेदमें छः रस हैं—चरक संहितामें आत्रेय भद्रकाप्यीय अध्याय [सू० अ० २६] में रसोंके निर्णयके लिए ऋषियोंकी एक गोष्ठीका उल्लेख है। इसमें प्रत्येक ऋषिने अपने-अपने विचार प्रकट किये हैं।

एक रससे लेकर आठ रसतक और अन्तमें अपरिमित रसोंको सिद्ध करनेका यत्न किया गया है। अन्तमें भगवान् अत्रिपुत्रने कहा है—

षडेव रसा इत्युवाच भगवानात्रेयः पुनर्वसुः, मधुराम्ललवणकटुतिक्तकषायाः ॥

इसीको त्रिविक्रम भट्टने कहा है—

षड्रसाः किल वैद्येषु भरतेऽष्टौ नवापि वा।
तयोः तु पद्मपत्राख्या सर्वमेकरसीकृतम् ॥

मैत्री, करुणा, प्रीति, उपेक्षा-भाव—मैत्रीकरुणामुदितापेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् [योग सूत्र]; इस सूत्रका उल्लेख आयुर्वेद-ग्रन्थोंमें भी मिलता है, यथा—

मैत्री कारुण्यमार्त्तेषु शक्ये प्रीतिरुपेक्षणम्।
प्रकृतिस्थेषु भूतेषु वैद्यबुद्धिश्चतुर्विधा ॥

—चरक० सू० अ० ९।२६।

सर्वत्र मैत्री करुणातुरेषु निरामदेहेषु नृषु प्रमोदः।
मनस्युपेक्षापकृतिं व्रजत्सु वैद्यस्य सद्वृत्तमलं तनोति ॥—संग्रह।

कविकी रचना देखिए—

मृगेषु मैत्री मुदितात्मदृष्टौ कृपा मुहुः प्राणिषु दुःखितेषु।
येषां न ते कस्य भवन्ति वन्द्याः कौशेयकौपीनभृतो मुनीन्द्राः ॥६।२८।

कानोंमें तेल—आयुर्वेदमें कानोंमें तेल डालनेका विधान विशेष रूपसे है। कानमें नित्य प्रति तेल डालनेसे ऊँचा सुनना, बहरापन, कानके रोग [वातजन्य], मन्याग्रह या हनुग्रह रोग नहीं होते। [चरक० सू० अ० ५।८४]।

नलचम्पूमें भी कानमें बलातेल डालनेका उल्लेख है। यह तेल साधारण नहीं अपितु बला तेल है, जिसके लिए आयुर्वेदमें कहा है कि यह तेल राजाओं या राजाओंके समान ऐश्वर्यशाली पुरुषोंके योग्य है [**एष**

भगवतो धन्वन्तरेरभिमतस्तैलराजो राज्ञां राजमात्राणां······प्रयोज्यः। संग्रह शा० अ० ४]।

दमयन्तीकी सखी परिहासशीला भी हिन्दीके मुहावरेमें अपनी सखीसे कहती है कि क्या कानोंमें तेल डाला है, जो सुनती नहीं। अन्तर इतना ही है कि वह तेलका नाम भी लेती है—

कोष्णं किं नु निषिच्यते तत्र बलात्तैलं सखि श्रोत्रयोः
अन्तस्तित्तिरिपक्षिपत्रमथवा मन्दं मृदु भ्राम्यति। ४।६।

स्त्रियाँ भी आयुर्वेद सीखती थीं—सुश्रुतमें तो स्त्रियोंको रोगीके पास फटकनेका भी निषेध किया है, क्योंकि इनके दर्शनसे यदि रोगीमें वीर्य नाश हो जाय, तो बहुत हानि करता है [सुश्रुत सू० अ० १९।१४-१५] स्त्रियाँ स्त्रियोंकी सेवा-चिकित्सा करती थीं। विशेषतः प्रजननकालमें।

चिकित्सा-कर्म भी स्त्रियाँ सीखती थीं। इसका उल्लेख नलचम्पूमें ही देखनेको मिलता है, जिसका स्पष्टीकरण दमयन्तीकी शिक्षाके प्रसंगमें किया गया है।

नातिचिरेण प्राप्ता नैपुण्यं पुण्यकर्मारम्भेषु, जाता प्रवीणा वीणासु, निराकुला कुलाचारेषु, कुशला शलाकालयेषु; विशारदा शारिदायेषु; प्रबुद्धा प्रबन्धलोचनेषु; चतुरा चातुरानाथजनचिकित्सासु। तृतीय उच्छ्वास।

घरोंमें पारावत—प्राचीनकालमें वायुके शोधन-वायुमें गति लानेके लिए तथा यक्ष्मा रोगसे बचानेके लिए बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओंमें कबूतर-पारावत पाले जाते थे। पारावतको क्षय नहीं होता है। इस कबूतरमें क्षय रोगके प्रति स्वाभाविक प्रतिरोधशक्ति (Natural Immunity) रहती है। इसीलिए जब मकानोंमें आजकी भाँति खिड़की और दरवाजे नहीं होते थे, तब इसी तरहसे घरकी वायुका शोधन किया जाता था। इसीसे मेघदूतमें भी मकानोंमें कबूतर रहनेका उल्लेख है [**तां कस्यांश्चिद् भवनवलभौ सुप्तपारावतायाम्**–मेघदूत; पूर्वमेघ]।

नलचम्पूमें कविने राजाके सोनेके मकानमें पारावतका उल्लेख किया है। रातमें पारावत भी सो जाता है, इसलिए उसके बोलनेकी शंका नहीं करनी चाहिये। देखिये—

लोकेश्वरो विहितविकालवेलाव्यापारः पारसीकोपनीतपारावारपारीण-पारावतपतत्रिपञ्जरसनाथे विकीर्णवासधूलिनि······शय्यागृहे······रजनी-मनैषीत्॥ तृतीय उच्छ्वास।

रोगोंके नाम—नलचम्पूमें कुछ रोगोंके नाम बहुत ही सुन्दरतासे उपस्थित किये हैं। देखिये—

कुष्ठयोगो गान्धिकापणेषु, निपातस्तालेषु, क्षयस्तिथिषु, गुल्मवृद्धि-र्वनभूमिषु, गलग्रहो मत्स्येषु, गण्डकोत्थानं पर्वतवनभूमिषु, शूल-सम्बन्धश्चण्डिकायतनेषु दृश्यते न प्रजासु। प्रथम उच्छ्वास।

भिन्न-भिन्न देशोंमें रुचि—जिस प्रकार वात्स्यायनने कामसूत्रमें देशोंकी कामविषयक रुचिकी भिन्नता बताई है और यह कहा है कि देश सात्म्यसे ही स्त्रीके साथ व्यवहार करे [२।६।२०]; उसी प्रकार आयुर्वेदमें देश सात्म्यसे आहारका उल्लेख है। यथा—वाह्लीक, पह्लव, चीन, शूलीक, यवन और शक ये लोग मांस, गेहूँ, माध्वीक, मद्य, शस्त्र और वैश्वानर [आगमें पके] आहारमें रुचि रखते हैं। प्राच्य—पूर्वके लोग [गौड़ देशीय] मत्स्यमांसमें विशेष रुचि रखते हैं तथा सिन्धु देशके व्यक्तियोंमें दूध अधिक सात्म्य है। अश्मक और अवन्तिवाले तेल और खटाईको, मलयालमके लोग कन्दमूल फलको, दक्षिणके व्यक्ति पेयाको; उत्तर-पश्चिमके व्यक्ति मन्थको [सत्तूको] पसन्द करते हैं। मध्य देशके लोग जौ-गेहूँ, दूध-दहीको अधिक पसन्द करते हैं [चरक० चि० अ० ३०।३१५-३१९]। नलचम्पूमें भी कविने देशसात्म्यके भोजनका उल्लेख किया है—

अहो नु खल्वमी मत्स्यमांसैर्विरहितमुदीच्यप्रतीच्यप्राच्यजनाः प्रिय-सक्तवो भोक्तुमेव न जानन्ति। विरलः खलु दाक्षिणात्येषु मांसाशन-व्यवहारः। तदाकर्ण्यतां भो नैषधाः—

आज्यप्राज्यपरान्नकूरकवलैर्मन्दां विधाय क्षुधां
चातुर्जातकसंस्कृतो नु शनकैरिक्षो रसः पीयताम् ।
संभारस्पृहणीयते मनरसानास्वाद्य किञ्चित्ततः
स्निग्धस्तब्धदधिद्रवेण सरसः शाल्योदनो भुज्यताम् ॥ ७४

[चातुर्जात–त्वगेलापत्रकेशरम्]

*

श्रीहर्ष

श्रीहर्षके पिताका नाम हीर तथा माताका नाम मामल्ल देवी था। हीर पण्डित काशीके गहड़वालवंशी राजा विजयचन्द्रकी सभाके राजपण्डित थे। सभामें किसी एक विशिष्ट सम्भवतः उदयनाचार्य पण्डितके साथ इनका शास्त्रार्थ हुआ था। शास्त्रार्थमें हीर हार गये। मरते समय श्रीहर्षसे कहते गये कि यदि तुम सुपुत्र हो तो इस पण्डितको शास्त्रार्थमें अवश्य पराजित करना। श्रीहर्षने गंगाके किनारे चिन्तामणि मंत्रका वर्ष भर तक जप किया। इससे इनमें अप्रतिम-पाण्डित्य का वरदान मिला। फिर ये विजयचन्द्रकी सभामें गये और शास्त्रार्थमें पण्डित को हराया।

कान्यकुब्जके राजाके यहाँ इनका बहुत सम्मान था। इन्होंने कान्यकुब्जाधिपसे आसन और पान पानेका उल्लेख किया है [**ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्—नैषध**]। कान्यकुब्जाधिपसे अभिप्राय जयचन्द्रसे है। ये इनकी सभाके पण्डित थे। सम्भवतः जयचन्द्रके पिता विजयचन्द्रके दरबार में बहुत समय तक रहे होंगे क्योंकि उनकी प्रशस्तिमें विजय-प्रशस्ति इन्होंने लिखी थी [**तस्य श्रीविजयप्रशस्तिरचना तातस्य**·········]।

श्रीहर्षकी काश्मीरमें बहुत प्रशंसा थी। कहा जाता है कि काव्यप्रकाश के कर्त्ता मम्मट इनके मामा थे। काश्मीरकी प्रशंसाके विषयमें कविने स्वयं लिखा है [**काश्मीरैर्महिते चतुर्दशतयीं विद्यां विदद्भिर्महा**—[१६।१३१]।

श्रीहर्ष पण्डित होनेके साथ साथ बहुत विदग्धता भी रखते थे। कविका यह वचन—

साहित्ये सुकुमारवस्तुनि दृढन्यायग्रहग्रन्थिले
तर्के वा मयि संविधातरि समं लीलायते भारती।

शय्यावास्तुमृदूत्तरच्छदवती दर्भाङ्कुरैरास्तृता
भूमिर्वा हृदयङ्गमी यदि पतिस्तुल्या रतिर्योषिताम् ॥

सम्भवतः उदयनाचार्यके निम्न वचनके उत्तरमें ही यह कहा है—

वयमिह पदविद्यां तर्कमान्वीक्षिकं वा
यदि पथि विपथे वा वर्त्तयामः स पन्थः ।
विकसति दिशि यस्यां भानुमान् सैव पूर्वः
न हि सवितुरुदयते दिक्पराधीनवृत्तिः ॥

श्रीहर्ष कवि पण्डित होनेके साथ-साथ अध्यात्मज्ञानके भी ज्ञाता थे। वे समाधि-योगके अंगोंका आनन्द लेते थे [**यः साक्षात्कुरुते समाधिषु परं ब्रह्मप्रमोदार्णवम्**]।

समय—श्रीहर्ष कान्यकुब्जनरेश जयचन्द्रकी सभामें पण्डित थे। जयचन्द्र गहड़वाल वंशके थे। ग्यारहवीं और बारहवीं सदीमें इस वंशका बड़ा नाम था। जयचन्द्रके पिता विजयचन्द्रने ११५६ ईस्वीसे लेकर ११९३ ईस्वी तक राज्य किया था। इसलिए पिता-पुत्र दोनोंकी सभाका पण्डित होनेके कारण कविका समय बारहवीं सदीका उत्तरार्ध है।

ग्रन्थ—इनके रचित लगभग नौ ग्रन्थ हैं। इनमेंसे खण्डनखण्डखाद्य, नैषधीय चरित और नवसाहसांक चरित चम्पू अधिक प्रसिद्ध हैं। नैषध काव्य सम्भवतः इनकी अन्तिम रचना है। इसमें कविताका रंग पूरे रूपमें निखरा है। माधुर्य, श्लेष तथा अलंकारका एक साथ समन्वय इसमें दीखता है। खण्डनखण्डखाद्य दार्शनिक ग्रन्थोंमें मुक्तामणि है। नैषध काव्योंमें अलंकारकी तरह है।[1]

आयुर्वेदके वचन

पित्तके कारण जिह्वामें तिक्तता रहती है—तिक्त रसका उदाहरण नीम है [**निम्बस्तु तिक्तके श्रेष्ठः—सुश्रुत**]। लोकमें नीमको कड़वा

---

१ श्रीबलदेव उपाध्यायजीके संस्कृत साहित्यका इतिहास—पुस्तकके आधार पर।

कहते हैं और मिर्चको तीखा-तिक्त या चिरपरा कहा जाता है। पित्त भी कटु है; [सुश्रु० सूत्र अ० २१।११]। पित्तके कारण जब जीभमें-मुखमें कडुआपन रहता है जैसा कि ज्वरमें, तब कोई भी वस्तु अच्छी नहीं लगती। [**कटुकास्यता—चरक० नि० १।२८**]। इसलिए मीठी भी वस्तु कड़वी लगती है [कटुशब्द तिक्तमें भी व्यवहृत होता है—**कटुः स्यात्कटुतिक्तयोः**]।

कवि श्रीहर्षने भी इसको कहा है—

त्वया विधेया स गिरो मदर्थाः क्रुद्धा कटुष्णे हृदि नैषधस्य।
पित्तेन दूने रसने सिताऽपि तिक्तायते हंस कलावतंस ॥नै० ३।९४।

वसन्तऋतु [मधुमास] में नीमका सेवन—इस ऋतुमें कफका प्रकोप होनेसे कफ और पित्तसे मिले रोग प्रायः होते हैं। ये रोग प्रायः ऐसे हैं, जिनमें शरीरके ऊपर दाने [एरपशन-Eroption] निकलते हैं। यथा चेचक, टायफाईड आदि। इसलिए चेचकको वासन्तिक भी कहते हैं। धर्मशास्त्रमें इस समय नीमके कोमल पत्तोंको, फूलोंको, कालीमिर्च, लवण, हींग और जीरे तथा अजवायनके साथ खानेका विधान है [क्लिनिकल मेडिसिन—पृष्ठ १०७४]। इनके खानेसे इन रोगोंका भय नहीं रहता। यह उपाय अनुत्पत्ति रूपमें है। नीम कटु-तिक्त होनेसे कफ और पित्त दोनोंको शान्त करता है।

कविने भी इसका उल्लेख अपने काव्यमें किया है। यथा—

भुञ्जानस्य नवं निम्बं परिवेविषती मधौ।
सपत्नीष्वपि मे रागं सम्भाव्य स्वरुपः स्मरेः ॥ नै० २०।९०।

चरक और सुश्रुतका प्रचार—नैषधकी रचनाके समय आयुर्वेदकी इन दोनों संहिताओंका प्रचार विशेष रूपमें था। इस तथ्यको कविने श्लेष रूपमें बताया है; यथा—

कन्यान्तःपुरबाधनाय यदधीकारान्न दोषा नृपं
द्वौ मन्त्रिप्रवरश्च तुल्यमगदङ्कारश्च तावूचतुः।

देवाकर्ण्य सुश्रुतेन चरकस्योक्तेन जानेऽखिलं
स्यादस्या नलदं विना न दलने तापस्य कोऽपि क्षमः ॥नै० ४।११६।

इस श्लोकमें सुश्रुतका अर्थ सुश्रुत संहिता भी है और अच्छी प्रकार सुनना भी है। इसी प्रकार चरकका अर्थ चरक संहिता भी है और गुनचर भी है। नलदका अर्थ खस है, वहाँ नलके दिये विना भी अर्थ है।

चन्द्रमाको क्षय हुआ—क्षय रोगकी चिकित्सामें अत्रिपुत्रने चन्द्रमा-को क्षय होनेका वृत्त बहुत सुन्दर रूपमें दिया है। संक्षेपमें—प्रजापतिकी अट्ठाईस कन्याएँ थी। उसने उनका विवाह चन्द्रमासे कर दिया। चन्द्रमाने सबके साथ समानताका व्यवहार नहीं किया। इसकी शिकायत कन्याओंने प्रजापतिसे की। प्रजापतिके शापसे चन्द्रमाको क्षय हो गया। फिर जब इनको सुबुद्धि आई तब अश्विनीकुमार-द्वारा इसकी चिकित्सा हुई थी। यह वर्णन आलंकारिक है। अट्ठाईस कन्याएँ अट्ठाईस नक्षत्र हैं। इसीके लिए नैषधका श्लोक है—

त्रातुं पतिं नौषधयः स्वशक्त्या मन्त्रेण विप्राः क्षयिणं न शेकुः।
एनं पयोधिर्मणिभिर्न पुत्रं सुधा प्रभावैर्न निजाश्रयं वा ॥ नै० २२।९९।

स्वर्णका बनाना—आयुर्वेदके रस ग्रन्थोंमें खनिज स्वर्णके साथ कृत्रिम स्वर्ण बनाये जानेका भी उल्लेख है। स्वर्णके नामोंमें एक नाम 'जातरूप्यक' भी है, जिसका अर्थ सम्भवतः चाँदीसे सोना बनना सूचित करता है। कृत्रिम स्वर्ण बनाना किमीयागिरीका उल्लेख जायसीने अपने ग्रन्थ पद्मावतमें भी किया है। स्वर्णको बनानेकी किंवदन्तियाँ आज भी सुनी जाती हैं—कुछ ऐसे भी सज्जन हैं, जिन्होंने इसको अपनी आँखोंसे देखा है।

इसी तरहका उल्लेख कविने भी किया है, परन्तु उसमें थोड़ा अन्तर है। पारदको स्वर्णपर लगानेसे स्वर्ण सफेद चाँदी बन जाता है, परन्तु अग्निमें पुनः गरम करने पर जब पारा उड़ जाता है, तब फिर स्वर्ण रह जाता है। इसके लिए कविका कहना है—

लिम्पद्भिः कृतकं कृतोऽपि रजतं राज्ञां यशःपारदै-
रस्य स्वर्णगिरिः प्रतापदहनैः स्वर्णं पुनर्निर्मितः ॥ नै० १२।९१ ।

लोहा भी पारदके संसर्गसे जब स्वर्ण बन जाता है, तब उसको कोई भी लोहा नहीं कहता—वह तो स्वर्ण बन जाता है। जिस प्रकार देवताओंके अनुग्रहसे मनुष्य मनुष्यत्वको छोड़कर देवत्व प्राप्त करता है—

अनुग्रहादेव दिवौकसां नरो निरस्य मानुष्यकमेति दिव्यताम् ।
अयोविकारे स्वरितत्वमिष्यते कुतोऽयसां सिद्धरसस्पृशामपि ॥६।४२ ।

इससे स्पष्ट है कि बारहवी सदीमें पारद, स्वर्ण, लोह आदि धातुओंका व्यवहार सामान्यतः लोकमें प्रचलित था। पारेके संस्कार, पारेसे स्वर्ण बनाना, पारेसे जातरूपक—कलावत्तू तैय्यार करना लोकमें होता था। इसी समयके आयुर्वेद-ग्रन्थोंमें भी पारद या रसशास्त्रका उल्लेख मिलता है [आयुर्वेदका इतिहास—हिन्दी साहित्य सम्मेलन-प्रयाग]। आठवीं या नवीं सदीके चक्रदत्त, वृन्दमाधव आदि चिकित्साके प्रसिद्ध ग्रन्थोंमें रसौषध-पारदका उपयोग बहुत कम है, नहींके बराबर है। लौहकी भस्मका उल्लेख न होकर लौहके चूर्णका उपयोग वस्त्रमें छानकर करनेका उल्लेख चक्रदत्त [शूलाधिकार] में है। इससे स्पष्ट है कि उस समय तक यह रसशास्त्र अधिक उन्नत नहीं था।

बारहवीं सदीमें यह पर्याप्त उन्नत था। इसीसे इसके पीछे पण्डितराज जगन्नाथके ग्रन्थोंमें भी पारदकी चर्चा स्पष्ट रूपमें मिलती है। पण्डितराजका समय शाहजहाँका समय है, जो सतरहवीं सदी [१६२८ से १६५८] है। जहाँ तक मेरा ज्ञान है, इस सम्बन्धमें पारदका नाम सबसे प्रथम काव्योंमें नैषध चरितमें ही मिलता है। पारस पत्थरके स्पर्शसे लोहा स्वर्ण बन जाता है। यह किंवदन्ती भले ही बहुत पुरानी हो परन्तु पारदके योगसे भी सोना बनता है, यह वचन नैषधमें ही सबसे प्रथम मिलता है।

पण्डितराज जगन्नाथ

पण्डितराज जगन्नाथ बड़े ही उच्चकोटिके विद्वान् तथा सरस कवि थे। ये काशी निवासी पेद्दभट्टके पुत्र थे, जातिसे आन्ध्र ब्राह्मण थे। आप शाहजहाँके निमन्त्रण पर उनके ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोहको संस्कृत पढ़ानेके लिए आगरा गये थे। वहाँ इन्होंने अरबीका भी अभ्यास किया था। इनकी विद्वत्तासे प्रसन्न होकर शाहजहाँने इनको 'पण्डितराज' की उपाधि दी थी। युवावस्थामें दिल्लीके बादशाह शाहजहाँके आश्रयमें दिल्लीमें जीवन व्यतीत किया। वृद्धावस्थामें मथुरामें निवास किया[1]।

पण्डितराज वैष्णव थे। इनका यह उपदेश था कि 'रे चित्त, मैं तेरे हितकी बात कहता हूँ। जरा ध्यान देना, कभी भूलकर भी वृन्दावनमें गायोंको चरानेवाले नवीन मेघके समान शरीरवालेसे मित्रता न करना, नहीं तो पछताना पड़ेगा क्योंकि वह अपनी मधुर मुसकानसे तुमको वशमें कर तुम्हारे प्रिय विषयोंका क्षण भरमें नाश कर देगा [भामिनी विलास ४था अ०]।

पण्डितराज स्वयं अच्छे आलोचक थे। इन्होंने काव्यप्रकाशके कर्त्ता मम्मटके अनेक सिद्धान्तोंका खण्डन किया, परन्तु उसमें शिष्ट भाषाका ही प्रयोग किया। अपने समयके समकालीन विद्वानोंके साथ इनकी प्रायः अनबन

---

१. शास्त्राण्याकलितानि नित्यविधयः सर्वेऽपि संभाविताः
दिल्लीवल्लभपाणिपल्लवतले नीतं नवीनं वयः।
सम्प्रत्युज्झितमासनं मधुपुरीमध्ये हरिः सेव्यते
सर्वं पण्डितराजराजितिलके नाकारि लोकाधिकम्॥
—भामिनीविलास

रहीं। विशेषतः भट्टोजिदीक्षित और अप्पयदीक्षितके साथ। भट्टोजिदीक्षितकी मनोरमाके उत्तरमें 'मनोरमाकुचमर्दन' इन्होंने लिखा है। अप्पयदीक्षितसे भी इनकी अनबन थी। उनकी पुस्तकोंकी समालोचना अपने ग्रन्थोंमें आपने की है।

संस्कृत साहित्यमें पण्डितराज अपनी अभिमान भरी गर्वोक्तियोंके लिए प्रसिद्ध हैं [**निर्माय नूतनमुदाहरणानुरूपं काव्यं मयात्र निहितं न परस्य किञ्चित्। किं सेव्यते सुमनसां मनसापि गन्धः कस्तूरिकाजननशक्तिभृता मृगेण ॥ रसगंगाधर**]। इनका कहना है कि साक्षात् सरस्वती वीणा बजानेमें आदरको कम करके जिसके वचनोंके अमृतमय रसको पीती है, उसी पण्डितराजके श्रवणसुभग वचनको सुनकर दो ही ऐसे सिर हैं, जो नहीं हिलते, एक सिर तो नरपशु का [पशु तुल्य मनुष्ये] है और दूसरा सिर साक्षात् पशुपति [शिव] का है।

पण्डितराजकी रचना अलौकिक है। आप रसमयी पद्धतिके अन्तिम कवि हुए हैं। आपकी शैली प्रसादमयी है। मुग़ल-दरबारमें रहने पर भी आपकी कवितामें चाटुकारिता या दरबारीपन नहीं है।

ग्रन्थ—रसगंगाधर अलंकार-रससम्बन्धित आपका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसके सिवा करुणालहरी, गंगालहरी, अमृतलहरी, लक्ष्मीलहरी एवं सुधालहरी [सूर्य स्तुति] भी इनकी कृतियाँ है। स्फुट पद्योंका संग्रह भामिनी विलासमें हुआ है।

आयुर्वेदके वचन

पारद सम्बन्धित—पारदके संस्कार करने पर पारदमें मूर्च्छावस्था, बृद्धावस्था और मृतावस्था उत्पन्न होती है। मूर्छित और मृत हुआ पारद सदा उपकार ही करता है—

मूर्च्छितो हरते व्याधिं मृतो जीवयति स्वयम्।
बद्धः खेचरतां कुर्याद् रसो वायुश्च भैरवि ॥

आरोटो बलमाधत्ते मूर्च्छितो व्याधिनाशनम् ।
बद्धेन खेचरीसिद्धिः मारितेनाजरामरः ॥ —रसकामधेनु

रसेश्वर दर्शन [सर्वदर्शनसंग्रह] में पारदकी महिमा स्पष्ट की है, यह भी अन्य दर्शनोंकी भाँति परमात्मा या मोक्षका दर्शन प्राप्त कराता है। इसीसे कहा है—

तत्र देवि स्थिरं पिण्डं यत्रस्थैर्यं रसः प्रभुः ।
अचिराज्जायते देवि शरीरमजरामरम् ॥
मनसश्च समाधानं रसयोगादवाप्यते ।
सत्त्वं च लभते देवि ज्ञानं विज्ञानपूर्वकम् ॥

रमें पण्डितराजने भी पारदका ही उदाहरण चुना—

उपकारमेव कुरुते विपद्गतः सद्गुणो नितराम् ।
मूर्च्छां गतो मृतो वा निदर्शनं पारदोऽत्र रसः ॥

[२] उपकारमेव कुरुते विपद्गतः सद्गुणो नितराम् ।
मूर्च्छां गतो मृतो वा रोगानपहरति पारदः सकलान् ॥
—रसंगङ्गाधर

लहसुन—नावनीतक और अष्टांगसंग्रहमें लहसुनकी प्रशंसा विशेष रूपसे की गयी है। वाग्भटका कहना है—

अमृतकणसमुत्थं यो रसोनं रसोनं
विधियुतमिह खादेच्छीतकाले सदैव ।
स नयति शतजीवी स्त्रीसहायो जरान्तं
कनकरुचिरवर्णो नीरुजस्तुष्टिजुष्टः ॥ —उत्तरतन्त्र

अमृत-कणोंसे उत्पन्न, एक रसमें [मधुर] कम, लहसुनका जो लोग शीतकालमें विधिपूर्वक सेवन करते हैं, वे एक सौ साल तक बिना वृद्ध हुए स्त्रीसुखके साथ जीते हैं। उनका वर्ण स्वर्णके समान होता है, इसके सेवी नीरोग तथा सदा प्रसन्न रहते हैं।

ऐसी गुणकारी वस्तुके लिए पण्डितराजका यह श्लोक बहुत प्रसिद्ध है—

अमितगुणोऽपि पदार्थो दोषेणैकेन निन्दितो भवति ।

सकलरसायनराजो गन्धेनोग्रेण लशुन इव ॥—रसगङ्गाधर

सम्भवतः दाराशिकोहको पढ़ाते हुए उसके मुखसे आती हुई गन्धके कारण ही पण्डितराज जगन्नाथने उक्त भाव अभिव्यक्त किये हों ।

———

संस्कृत साहित्यमें वनस्पतियाँ

प्रास्ताविक

वनस्पतियोंके साहित्यिक उल्लेखके साथ संक्षेपमें यहाँ उनका आयुर्वेदमें उपयोग भी देनेका यत्न किया गया है। इन पचास वनस्पतियोंका मैंने किसी विशेष दृष्टिसे संचय नहीं किया है। सामान्यतः जो सामने आई, उसीको ले लिया। यों तो पूर्व पुस्तकोंमें वर्णित सभी वनस्पतियाँ आयुर्वेदसे सम्बद्ध हैं। अत्रिपुत्रका कहना है कि—

'नानौषधिभूतं जगति किञ्चिद् द्रव्यमुपलभ्यते तां तां युक्तिमर्थं च तं तमभिप्रेत्य' —चरक० सू० अ० २६।१२

संसारमें ऐसा कोई द्रव्य नहीं जो औषधिके काम न आता हो। युक्ति और अर्थको लेकर सब द्रव्य चिकित्सामें उपयोगी हैं। ऐसी स्थितिमें सम्पूर्ण वनस्पतियोंका उल्लेख इस पुस्तकमें होना सम्भव नहीं। उसके लिए तो पृथक् पुस्तक ही चाहिये। इसलिए यहाँ पर केवल उदाहरण रूपमें कुछ प्रमुखकी ही चर्चा की जायगी। कहा भी है—

"प्रचरणमिव भिक्षुकस्य बीजमिव कर्षकस्य सूत्रं बुद्धिमतामल्पमनल्पज्ञानायतनं भवति।" —चरक० वि० अ० ८।

जिस प्रकार भिक्षुकके भिक्षापात्रमें रक्खे थोड़ेसे दाने बढ़कर अधिक हो जाते हैं और जिस प्रकार कृषकका एक बीज हजारोंकी संख्यामें अन्न उत्पन्न करता है, उसी प्रकार ये पचास वनस्पतियाँ बुद्धिमान् व्यक्तिका उचित क्षेत्र पाकर पाँच सौ बन जायँगी। इसी आशासे यहाँ कतिपय वनस्पतियोंका उल्लेख किया गया है।

संस्कृतके महानाटकमें वनस्पतियोंका उल्लेख एक ही स्थान पर जितने विस्तारसे दिया गया है वैसा सम्भवतः अन्य संस्कृत काव्योंमें सुलभ नहीं। यथा—

[क] रसाल-प्रियाल-हिन्ताल-तमाल-कृतमाल—विशाल-शाल्मल-मालूर-शल्लकी-शिरीषासन-शमीशाक-शिंशपाशोक-चम्पक-सुरदारु—कोविदार—कर्णि-कार-सिन्धुवार-बहुसार-निम्ब-जम्बूदुम्बर-कदम्ब - करञ्ज - शोभाञ्जन-बकुल - निचुल-करीर-खर्जूर-बीजपूर-जम्बीर-भाण्डीर-वानीर-काश्मीर—नारङ्ग—कर्म्मरङ्ग - कदली-चन्दनालिङ्गित-लवली-धात्री-वट-कुटज-पाटलाङ्कोल-कक्कोल-चोल-भल्लातक-विभीतक-हरीतक्याम्रातक-केतक-कंकत-वैकङ्कत-मधूक - बन्धूक - जयन्ती-जयाश्वत्थ-तिन्तिडीनागकेसरादिदुस्तरामरण्यानीं पर्य्यटन्········।

[ख] मलयमालती-मरुवक-लवङ्ग-कक्कोल-दमनक-जाती-तगर-शतपत्रादि कमल-मुकुल-कुमुदिनी-कह्लार-परिमलमिलितचुम्बित······।

—महानाटक ४ था अंक

कविजन प्रकृतिका, अरण्योंका, हिमालय—विन्ध्य पर्वतोंका एवं नदियोंका वर्णन करते हुए इस नैसर्गिक-शोभाको कैसे भूल सकते थे। साथ ही इसी प्रकृतिका संग करनेवाले आयुर्वेदके प्रवर्त्तक ऋषि भी इसका उपयोग किये बिना कैसे रह सकते थे। इसीसे मधुरादि स्कन्धोंका, आनूप आदि देशोंका और पचास महा कषायोंका उल्लेख करते हुए अत्रिपुत्रने तथा द्रव्य संग्रहणीयमें सुश्रुत और वाग्भटने इनका उल्लेख नाम-गुण कीर्त्तनसे किया है।

यहाँ मुख्यतः कुछ प्रसिद्ध वनस्पतियोंका उल्लेख किया गया है। वास्तवमें कोई भी संस्कृत काव्य ऐसा नहीं जिसमें वनस्पतियोंका उल्लेख न हो। अशोक, बकुल, चम्पक, प्रियंगु, तिलक, कुरबक, कर्णिकार इनके दोहदके विषयमें तो कवि आम्नायमें प्रसिद्धि है कि इनमें पुष्पोद्भव स्त्रियोंके द्वारा किये गये गण्डूष, पादताडन, स्पर्शन आदिसे होता है।[1] इसलिए कविजन प्रसिद्ध वृक्षोंको कैसे छोड़ सकते थे।

---

१ स्त्रीणां स्पर्शात् प्रियङ्गुर्विकसति बकुलः सीधुगण्डूषसेकात्
पादाघातादशोकः तिलक-कुरबकौ वीक्षणालिङ्गनाभ्याम्।
मन्दारो नर्मवाक्यात्पटुमृदुवसनाच्चम्पको वक्त्रवातात्
चूतो गीतान्नमेरुः विकसति च पुरो नर्त्तनात् कर्णिकारः॥

इसीसे संस्कृत काव्योंमें वनस्पति विषयपर एक स्वतन्त्र पुस्तक अपेक्षित है। श्री बापालाल शाह–प्रिन्सिपल आयुर्वेदिक कॉलेज–सूरतने 'संस्कृत साहित्यमें वनस्पति' नामसे गुजरातीमें पुस्तक लिखी है। उसीकी सहायतासे इस प्रकरणको प्रधानतः यहाँ संग्रहीत किया गया है।[१]

---

१ श्री बापालाल भाईका मैं बहुत आभारी हूँ, जिन्होंने अपनी पुस्तकका उपयोग करनेकी आज्ञा दे दी। यह पुस्तक गुजरात विद्यापरिषद् अहमदाबादसे प्रकाशित हुई है।

संस्कृत साहित्यमें वनस्पतियाँ

जिस प्रकार संस्कृत साहित्यमें आयुर्वेद सम्बन्धी वचन मिलते हैं, उसी प्रकार बल्कि उससे भी अधिक मात्रामें उसमें वनस्पतियोंका उल्लेख मिलता है। यहाँ पर सब वनस्पतियोंका उल्लेख न करके मुख्य मुख्य वनस्पतियोंका ही उल्लेख किया गया है।

१—अक्ष—बिभीतक-बहेड़ा

इसीको कलि या कलिद्रुम भी कहते हैं। इसका उल्लेख नैषधके पहले श्लोकमें बहुत ही सुन्दरतासे आया है—**निपीय यस्य क्षितिरक्षिणः कथास्तथाद्रियन्ते न बुधाः सुधामपि।** इस श्लोकमें नारायणने क्षितिः अक्षिणः ये दो पद अलग करके **अक्षः बिभीतकः निवासोऽस्तीति अक्षी-कलिः**'—अर्थात् नलकी कथाका पान जो कोई श्रोता करता है; उससे कलियुगका नाश [क्षिति-नाश] होता है, ऐसा अर्थ किया है। कलि राजा नलके शरीरमें से निकल कर बहेड़ेके वृक्षमें समा गया था।[1]

बिभीतकका अर्थ-जिससे रोगका भय निकल गया, यह भी करते हैं। बिभीतक-बहेड़ेका उपयोग धर्म कार्यमें नहीं होता। इसलिए उसे अकर्मठ—देवों के कार्यमें निरर्थक कहा है [**बिभीतकं ददर्शैकं कुटं धर्मेऽप्यकर्मठम्—नैषध. १७।२११**]। इसीसे राजनिघण्टुमें बहेड़ेके नामोंमें उसका एक नाम धर्मघ्न भी दिया है।

कालिदासने भी बिभीतकका उल्लेख किया है। परशुरामका वर्णन करते हुए वे कहे हैं कि उन्होंने बहेड़ोंके बीजोंकी माला कानके ऊपर धारण की थी।

---

१. **निष्पदस्य कलेस्तत्र स्थानदानाद् बिभीतकम्।**
कलिद्रुमः परं नासीदासील्कल्पद्रुमोऽपि सः॥
—नैषध० १७।२१३।

बिभीतकमधिष्ठाय तथाभूतेन तिष्ठता।
तेन भीमभुवोऽभीकः स राजर्षिरधर्षि न॥ नैषध० १७।२१६।

इसी प्रकार सुतीक्ष्ण ऋषिका वर्णन करते हुए उनके दक्षिण हाथमें बहेड़ेकी माला रहनेका उल्लेख कालिदासने किया है।[1]

अक्षमालासे रुद्राक्षकी मालाका बोध होता है, क्योंकि बहेड़ेके फलकी माला इस प्रकार पहिनी नहीं जाती। रुद्राक्षकी ही मालाको आज भी धारण करनेकी प्रथा है। नलचम्पूमें मुनिके वर्णनमें [तृतीय उच्छ्वास] रुद्राक्षकी मालासे शोभित वामहस्त [**रुद्राक्षवलयेन विराजितवामपाणि-पल्लवः**] का उल्लेख है। आगे रुद्राक्षके साथ बहेड़ेकी माला [**सह रुद्राक्षाक्ष-मालैश्च**] से शोभित, ऐसा भी उल्लेख है। भवभूतिने महावीरचरितमें परशु-रामका वर्णन करते हुए उन्हें हाथमें रुद्राक्षकी माला लिये कहा है।[2] इसी प्रकार उत्तररामचरितमें लवके हाथमें कार्मुक और अक्षसूत्र वलयका उल्लेख किया है [४।२०]। काव्यप्रकाशमें भी संन्यासी वेषका उल्लेख करते हुए रुद्राक्ष मालाका वर्णन दिया गया है। [**भस्मोद्धूलनभद्रमस्तु भवते रुद्राक्षमाले शुभम्—काव्यप्रकाश**][3]।

---

१. **अक्षबीजवलयेन निर्बभौ दक्षिणश्रवणसंस्थितेन यः।**
क्षत्रियान्तकरणैकविंशतेः व्याजपूर्वगणनामिवोद्वहन्॥
—रघु० ११।६६।

एषोऽक्षमालावलयं मृगाणां कण्डूयितारं कुशसूचिलावम्।
सभाजने मे भुजमूर्ध्वबाहुः सव्येतरं प्राध्वमितः प्रयुङ्क्ते॥

२. **पाणौ बाणः स्फुरति वलयीभूतलोलाक्षसूत्र**
वेशः शोभां व्यतिकरवतीमुग्रशान्तस्तनोति॥

३. **वेदोंमें आता है—'अक्षैर्मा दीव्यः-कृषिमित् कृषस्व, वित्ते रमस्व बहु मन्यमानाः'** ऋ० १०।३४।१३। **पासोंसे मत खेलो, खेती करो। सम्भवतः वैदिक कालमें खेलनेके लिए पासे रुद्राक्ष या बहेड़ेकी गुठलीके बनते होंगे। आज भी गाँवोंमें चरवाहे मिट्टी, पत्थर एवं कंकरीसे खेल खेलते हैं। उस समय खेल रुद्राक्ष या बहेड़ेकी गुठलीसे खेला जाता होगा। इसीसे अक्ष शब्द रुद्राक्ष और बहेड़ेके अर्थमें मिलता है।**

अमरकोषमें रुद्राक्षका उल्लेख नहीं है, परन्तु टीकाकार भानुजीदीक्षितने टीकामें अक्ष शब्दसे कहे जानेवाले शब्दोंमें रुद्राक्षका उल्लेख किया है।[1] चरक और सुश्रुतमें रुद्राक्षका उल्लेख नहीं, यद्यपि आज भी मसूरिका (Small pox) में रुद्राक्षको घिसकर कालीमिर्चके साथ देते हैं। कादम्बरीमें भी बहेड़ेके वृक्षका उल्लेख है। [**अरण्यभूमिमिवाक्षतरुसम्पन्नाम्—पूर्व भाग**]।

२—अगस्ति या अगस्तिया

इसीको मुनिद्रुम, शीघ्रपुष्प, व्रणारि, वकपुष्प आदि नामसे राजनिघण्टुमें स्मरण किया है। इस वृक्षमें श्वेत, पीत, नीले और लाल भेदसे चार प्रकारके फूल आते हैं। अमरकोशमें इसका उल्लेख नहीं है। नैषधमें इसका उल्लेख मिलता है। यथा—

मुनिद्रुमः कोरकितः शितिद्युतिर्वनेऽमुनामन्यत सिंहिकासुतः।
तमिस्रपक्षत्रुटिकूटभक्षितं कलाकलापं किल वैधवं वनम्॥ १।८६

वनमें राजा नलने खिले हुए—श्वेत कान्तियुक्त राहु जैसे अगस्तियाको देखा।

कादम्बरीमें बाणने अगस्तके फूलोंकी उपमा शेरके नखसे दी है, जो बहुत ही सही और सच्ची है [**क्वचिदगस्तिकुड्मलैः केसरिणामिव करजैः—कादम्बरी पूर्व**]। वास्तवमें इसका फूल आगेसे शेरके नखके समान मुड़ा रहता है, इसीसे इसको वक्रपुष्प कहते हैं। यह फूल सफेद होता है, इसीसे इसका वकपुष्प नाम पड़ा।

३—अगुरु

अगुरुका सामान्य अर्थ यह है कि जो भारी न हो।[2] पर वास्तवमें

---

१. **अक्षो ज्ञानात्मशकटव्यवहारेषु पाशके। रुद्राक्षे रावणौ सर्पे बिभीतकतरौ अपि॥ चक्रे कर्षे पुमान् क्लीबे तुत्थे सौवर्चलेन्द्रिये।**

—अमरकोश।

२. **सुभाषितरत्नभाण्डारगारमें अगुरुके लिए—**

अगुरुरिति वदतु लोको गौरवमत्रैव पुनरहं मन्ये।
दर्शितगुणैव वृत्तिः यस्य जने जनितदाहेऽपि॥

बात उल्टी है, अगुरुकी लकड़ी भारी होती है। भारी ही अगुरु प्रशस्त माना जाता है। अगुरुमें भारीपन इसके तैलीय पदार्थके कारण होता है। देरतक पड़ा रहनेसे या तेल निकालने पर इसके गुरुत्वमें कमी आ जाती है, और रंग भी काले रंगसे बदल जाता है। जो अगुरु काष्ठ वजनमें भारी और रंगमें कालिमा लिये रहता है, वह प्रशस्त माना जाता है।

अगुरुका उल्लेख कालिदासने अपने काव्योंमें अनेक स्थानों पर किया है। इसका मुख्य उपयोग धुँआ देना है। इसका धुँआ मुख्यतः वहीं दिया जाता है, जहाँ पर दुर्गन्ध, कृमि [Germes] या जीवाणु [Bacteria] की समस्या रहती है। इसके धुएँसे दुर्गन्धि नष्ट होती है; इसीलिए शरीर तथा बालों पर धुँआ देनेका उल्लेख मिलता है[1]। यथा—

अगुरुसुरभिधूपामोदितं केशपाशं
गलितकुसुममालं तन्वती कुञ्चिताग्रम्।

शिरांसि कालागुरुधूपितानि
कुर्वन्ति नार्यः सुरतोत्सवाय ॥ ऋतु० ४,५।

वस्त्रोंपर धुआँ देना—

प्रकामकालागुरुधूपितानि विशन्ति शय्यागृहमुत्सुकाः स्त्रियः ॥ ऋतु० ५।५।
गुरूणि वासांसि विहाय तूर्णं सुगन्धिकालागुरुधूपितानि ॥ ऋतु० ६।१३।

शरीरपर धूप देना—

संचारिते चागुरुसारयोनौ धूपे समुत्सर्पति वैजयन्ती ॥ रघु० ६।८।

इन्दुमतीका अगुरुकी चितामें दाह कर्म किया गया था। [विससर्ज कृतान्त्यमण्डनामनलायागुरुचन्दनैधसे।]

---

१. धन्वन्तरि-निघण्टुमें अगुरुका उपयोग बालोंको धुंआ देनेके लिए बताया है—

दाहागुरुकटुकोष्णं केशानां वर्धनं च वर्ण्यं च।
अपनयति केशदोषानातनुते सततं च सौगन्ध्यम् ॥

इसकी सुगन्ध घरोंमें दी जाती थी—

प्रासादकालागुरुधूमराजिस्तस्याः पुरो वायुवशेन भिन्नः ।
वनान्निवृत्तेन रघूद्वहेन मुक्ता स्वयं वेणिरिवावभासे ॥ रघु० १४।१२ ।

शरीर पर इसका लेप किया जाता था—

कालागुरुप्रचुरचन्दनचर्चिताङ्गयः ॥ ऋ० २।२१ ।

कृष्णागुरुचन्दनामोदबहुलकुचाभूषणा—नलचम्पू

[तुलना कीजिये—**चन्दनागुरुदिग्धाङ्गो यवगोधूमभोजनः ।** चरक० सू० अ० ६।२५ ।]

अगुरु मुख्यतः आसाम [प्राग्ज्योतिष] में होता है । रघुकी विजयमें इसका उल्लेख है । जब रघुने लौहित नदी पार की तब प्राग्ज्योतिषेश्वर काँपने लगा । साथ ही काले अगुरुके वृक्ष भी काँप गये कि हमारा उपयोग रघुके हाथियोंको बाँधनेके लिए अब होगा [रघु० ४।८१] ।

४—अतिमुक्तलता—माधवीलता

अतिमुक्तलताके पर्य्यायोंमें वासन्ती और माधवी ये दो नाम भानुजी दीक्षितने अमरकोषमें दिये हैं । इनमें अतिमुक्तका अर्थ **अतिक्रान्तो मुक्तां शौक्ल्यात्**—अपनी श्वेतिमासे मुक्ताको जिसने तिरस्कृत कर दिया है, यह अर्थ किया है । वसन्तमें खिलनेसे वासन्ती, और मधु—चैत्र मासमें पुष्पित होनेसे माधवी नाम पड़ा । गीतगोविन्दमें वसन्तका वर्णन करते हुए जयदेव कविने अतिमुक्तलताका उल्लेख किया है । यथा—

स्फुरदतिमुक्तलतापरिरम्भणपुलकितचूते ।
वृन्दावनविपिने परिसरपरिगतयमुनाजलपूते ॥ १।६ ।

खिली हुई अतिमुक्तलताका आलिंगन करके आम्र वृक्षमें भी बौर आ गया—वह पुलकित—रोमाञ्चित हो गया । वसन्त ऋतुमें आममें भी बौर आता है और अतिमुक्तलता भी पुष्पित होती है । इसीकी झलक अश्वघोषकी रचनामें भी मिलती है—

लतां प्रफुल्लामतिमुक्तकस्य चूतस्य पार्श्वे परिरभ्य जातम् ।
निशाम्य चिन्तासगमत्तदैवं श्लिष्टा भवान्मामपि सुन्दरीति ॥

—सौन्द० ७वाँ

शाकुन्तलमें सहकार—आम्र और अतिमुक्तलताका सम्बन्ध कालिदासने स्पष्ट किया है—

क इदानीं सहकारमन्तरेण अतिमुक्तलतां पल्लवितां सहते ॥ ३।६५ ।

पुष्पित अतिमुक्तलताको सिवाय आम्रवृक्षके कौन स्वीकार कर सकता है ? मालविकाग्निमित्रमें भी इन दोनोंका सम्बन्ध वर्णित है । यथा—

विसृज सुन्दरि सङ्गमसाध्वसं तव चिरात्प्रभृति प्रणयोन्मुखे ।
परिगृहाण गते सहकारतां त्वमतिमुक्तलताचरितं मयि ॥ ४।१३ ।

इसके अतिरिक्त कालिदास, जयदेव और माघकी रचनामें भी माधवी और वासन्ती शब्दोंका उल्लेख मिलता है; यथा—

निषिञ्चन् माधवीमेतां लतां कौन्दीं च नर्तयन् ।
स्नेहदाक्षिण्ययोर्योगात्कामीव प्रतिभाति मे ॥

—विक्रमो० २।४ ।

उर्वशी शापके कारण वासन्तीलतामें बदल जाती है [**वासन्तीलता संवृत्ता—विक्रमो० ४**] । जयदेवने राधिकाको वासन्तीके समान कोमल वर्णित किया है—

वसन्ते वासन्तीं कुसुमसुकुमारैरवयवैः
भ्रमन्तीं कान्तारे बहुविहितकृष्णानुसरणाम् ॥ १।१ ।

माघने माधवीलताका उल्लेख बहुत सुन्दर रचनामें किया है—

मधुरया मधुबोधितमाधवी मधुसमृद्धिसमेधितमेधया ।
मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे ॥

देखनेमें सुन्दर, वसन्त ऋतुके कारण पुष्पित, माधवीलताकी मकरन्द रूप संपत्तिसे वर्द्धमान प्रतिभावाली तथा इसीसे मस्त बनानेवाली ध्वनिको धारण करनेवाली भ्रमरी बार-बार स्थिर रूपमें गान कर रही है ।

श्रीहरिप्रसाद शास्त्रीजीका कहना है कि मालवामें अतिमुक्तलता ठीक रूपमें मिलती है। माधवीलताकी भाँति यह वेल भी पीपलके बड़े मोटे वृक्ष पर चढ़ी देखी जाती है। इसका फूल प्रातः चार बजे खिलता है और आठ बजे झड़ जाता है। इसीसे इसकी कोमलताका अनुमान हो जाता है। इसीसे इसका नाम अतिमुक्तलता पड़ा है। इस लताको सदा बड़े वृक्षकी जरूरत रहती है। सामान्यतः आम्रवृक्षको ही इस लताका साथी चुना गया है। सम्भवतः इसका यही कारण है कि दोनों वसन्तमें ही पुष्पित होते हैं। कादम्बरीमें बाणने भी सहकार और इस लताका सम्बन्ध बताया है; यथा—

पुत्रकस्य मे भवानङ्गणे सहकारपोतस्य त्वया मच्चिन्तयैव माधवीलता सहोद्वाहमङ्गलं स्वयमेव निर्वतनीयम्—कादम्बरी उत्तर भाग।

सुश्रुतमें आमकी गुठली और मोदयन्ती—मल्लिका इन दोनोंका एक साथ प्रयोग एक योगमें मिलता है। यथा—

सैरीयजम्ब्वर्जुनकाश्मीरजं पुष्पं तिलान्मार्कवचूतबीजे
पुनर्नवे कर्दमकण्टकार्यौ कासीसपिण्डीतकबीजसारम्।
फलत्रयं लोहरजोऽञ्जनं च यष्टाह्वयं नीरजसारिवे च।
पिष्ट्वाऽथ सर्वं सह मोदयन्त्या सारम्भसा बीजकसम्भवेन॥

—चि० अ० २५।

वासन्ती या माधवीका उपयोग सामान्यतः देखनेमें नहीं आया। राजनिघण्टुमें अतिमुक्ता और अतिमुक्तकको एक ही माना है। इसके ही पर्याय हैं मदनी एवं भ्रमरानन्दा। गुणोंमें इसे कषाय रस, शीत वीर्य और श्रमनाशक, पित्त, दाह, ज्वर, उन्माद, हिक्का, छर्दि निवारक कहा है [राजनिघण्टु]। आयुर्वेदमें भले ही श्रमनाशक, पित्त, दाह, ज्वर और उन्मादको नष्ट करनेके लिए इसका उपयोग हो, पर सामान्यतः देखनेमें नहीं आता। परन्तु संस्कृत काव्योंमें तो मिलता है, यथा—

विक्रमोर्वशीयमें विदूषक राजाको अतिमुक्तलतामण्डपमें बैठाकर इस ललित लताको देखकर अपनी आँखोंको तृप्त करके और इसके द्वारा

उर्वशी सम्बन्धी उत्कण्ठाको भूल जानेके लिए विनती करता है। कवि ने यहाँ पर ललित लताओंकी उपमा स्त्रियोंसे दी है। पुष्प गुच्छादिसे शोभित सुन्दर स्त्रियाँ जिस प्रकार नव वेश, परिधान और ललित लावण्यसे पुरुषोंको अपनी ओर आकर्षित करती हैं [**प्रियालोकफलो हि वेशः–कुमार०**], उसी प्रकार अतिमुक्तलता जैसी लताएँ विरही पुरुषका विनोद करती हैं[1]।

सम्भवतः राजनिघण्टु या दूसरे निघण्टुकारोंने अतिमुक्तलताके गुण वर्णनके उल्लेखको अपनी आँखोंके सामने रखा होगा। संग्रहमें अतिमुक्तका उल्लेख आता है। यथा—"**शिरीषशेलूककुभसिन्दुवारातिमुक्तजम्**—रक्तपित्तचिकित्सा।

५–अपराजिता

अपराजिताके पर्याय गिरिकर्णिका, विष्णुकान्ता, योनिपुष्पा और आस्फोता हैं। हिन्दीमें कुछ लोग इसे कोयल कहते हैं। अपराजिताका योनिपुष्पा नाम इसके फूलका आकार शिश्निका के समान होनेसे है। इससे अंग्रेजीमें किलेटोरिया टर्नेटिया [Clitoria Ternatea] कहते हैं।

अपराजिताका सुन्दर उल्लेख अभिज्ञानशाकुन्तलमें 'रत्नकरण्डक' के रूपमें मिलता है, जिसको मारीच ऋषिने शकुन्तलाके पुत्र भरतके हाथमें बाँधा था। भरतके हाथसे गिर जाने पर दुष्यन्तने उसे उठाया था। इसी रत्नकरण्डकके द्वारा दुष्यन्तकी पहिचान होती है[2]।

---

१. **भोः एष खलु मणिशिलापट्टकसनाथोऽतिमुक्तलतामण्डपो भ्रमरसंघट्टपतितैः कुसुमैः स्वयमिव कृतोपचारं भवन्तं प्रतीच्छति—विक्रम० २।**

२. **एषाऽपराजिता नामौषधिरस्य जातकर्मसमये भगवता मारीचेन दत्ता। एतां किल मातरपितरावात्मानं च वर्जयित्वाऽपरा भूविपतितां न गृह्णाति।**

राजा—अथ गृह्णाति ?

प्रथमा—ततस्तं सर्पो भूत्वा दशति।

राजा—भवतीभ्यां कदाचिदस्याः प्रत्यक्षीकृता विक्रिया॥ ७वां अंक।

आयुर्वेदमें गिरिकर्णिका—अपराजिताका उपयोग विषनाशके लिए प्रायः आता है [**यापना—अगद; सूर्योदय अगदमें—संग्रह**]। इसी प्रकारसे दूसरे रोगोंमें भी इस औषधका व्यवहार आता है।

धन्वन्तरि निघण्टुमें अपराजिता शब्दसे छः ओषधियोंका उल्लेख किया है [**हपुषा पीतनिर्गुण्डी विष्णुकान्ता जयन्तिका। सिताद्रिकर्णी-शङ्खिन्यौ षडेता अपराजिता॥**]। इससे अनुमान होता है कि यह ओषधि एक निश्चित अर्थमें नहीं आती।

६—अर्क [आक]

आकके वे ही पर्याय हैं, जो सूर्यके पर्याय हैं। सूर्य जैसी तीक्ष्णता आकके अन्दर भी है। इसीसे इसका क्षार और दूध, लेखन भेदन, पाटन और क्षारणके काममें आते हैं। आकका पञ्चाङ्ग चिकित्साके व्यवहारमें आता है। आक इतनी सुलभ वस्तु है कि यह सर्वत्र ही प्राप्य है [**अर्के चेन्मधु विन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत्**—यदि मधु आकमें मिल जाये तो मनुष्य क्यों पहाड़ पर दौड़े]।

जिस प्रकार यह सर्वत्र सुलभ है, उसी प्रकार यह सदा पुष्पित भी रहता है। इसीसे इसका 'सदापुष्प' नाम दिया गया है। सम्भवतः यह नाम इस लिए दिया है कि यह ग्रीष्ममें फूलता है, जब कि ग्रीष्ममें और वनस्पतियाँ सूखती हैं, यह फूलता है। इसीसे इसको सदापुष्प नाम दिया होगा। यथा—

यमाश्रित्य न विश्रामं क्षुधार्त्ता यान्ति सेवकाः।
सोऽर्कवन्नृपतिस्त्याज्यः सदापुष्पफलोऽपि सन्॥ —पञ्चतन्त्र।

संस्कृत काव्योंमें आकको बहुत स्नेहके साथ स्मरण नहीं किया है। सम्भवतः इसका कारण यही है कि शिवकी प्रतिमाके ऊपर होलिका उत्सवमें इसे चढ़ाते हैं [यों यह गुजरातमें शनिवारके दिन हनुमानजीकी मूर्त्तिपर चढ़ाया जाता है]। अर्क शब्द 'अर्च पूजायाम् अथवा अर्क स्तवने' इस धातुका रूप प्रतीत होता है।

शाकुन्तलमें अर्कका उल्लेख आया है—

सुरयुवतिभवं किल मुनेरपत्यं तदुज्झिताधिगतम् ।
अर्कस्योपरि शिथिलं च्युतमिव नवमल्लिकाकुसुमम् ॥२।८।

मुनिकी यह संतान मेनका अप्सराकी है। मेनकासे छोड़ी जानेपर ऋषिने इसे प्राप्त किया, ऐसा मैंने सुना है। नवमल्लिका लताका पुष्प वृन्तसे अलग होकर आकके वृक्षके ऊपर मानो पड़ गया।

आकका दूध प्रायः कुष्ठ या त्वक् रोगोंमें व्यवहार होता है [**मनःशिलाले मरिचानि तैलमार्कं पयः कुष्टहरः प्रदेहः**—मैनसिल, हरताल, मरिच, सरसोंका तेल और आकका दूध-कुष्ठ नाशक प्रदेह है]। पामा-त्वक् रोगके लिए लोलिम्बराजका यह श्लोक प्रसिद्ध है—

भगवन् भास्करक्षीर ! पामाऽहं अभिवादये ।
यत्र देशे भवान्प्राप्तः तद्देशे न व्रजाम्यहम् ॥

कादम्बरीमें भी अर्कका उल्लेख मिलता है [**कश्चिदर्कफलसदृशान्**—कादम्बरी, पूर्व भाग]; भर्तृहरिने आककी रूईका उल्लेख किया है। [**सौवर्णैर्लाङ्गलाग्रैः विलिखति वसुधामर्कतूलस्य हेतोः**]

७—अर्जुन

अर्जुनके पर्यायोंमें ककुभ, पार्थ, धनञ्जय आदि हैं। जो नाम अर्जुनके लिए आते हैं, प्रायः ये सब नाम इस वृक्षके लिए प्रयुक्त होते हैं। यह वृक्ष धवल-श्वेत, चिकना होता है। इसीसे जिस प्रकार कदलीको स्त्रियोंकी जंघाकी उपमाके लिए चुना जाता है, [**एकान्तशैत्यात् कदलीविशेषाः । लब्ध्वापि लोके परिणाहि रूपं जातस्तदूर्वोरुपमानबाह्याः ॥ कुमार०**]; उसी प्रकार इसकी स्निग्धता और श्वेतिमाके लिए इस वृक्षको भी जंघाकी उपमाके लिए वाल्मीकिने पसन्द किया—

अथवाऽर्जुन शंस त्वं प्रियां तामर्जुनप्रियाम् ।
ककुभः ककुभोरुं तां व्यक्तिं जानाति मैथिलीम् ॥
लतापल्लवपुष्पाढ्यो भाति ह्येष वनस्पतिः ॥ वाल्मीकि० ।

कालिदासने वर्षाऋतुके वर्णनमें अर्जुनका उल्लेख किया है; [**कर्णान्तेषु ककुभद्रुममञ्जरीभिः इच्छानुकूलरचितानवतंसकांश्च—ऋतु० २।२१**]; स्त्रियाँ अर्जुन वृक्षकी मंजरियोंका कर्णफूल बना रही हैं। रघुवंशमें अर्जुनकी मंजरियोंका बहुत ही सरस वर्णन मिलता है—

आपिञ्जराबद्धरजःकणत्वान्मञ्जर्युदारा शुशुभेऽर्जुनस्य।
दग्ध्वाऽपि देहं गिरिशेन रोषात् खण्डीकृता ज्येव मनोभवस्य॥

—१६।५१

वर्षा ऋतुमें कदम्ब, कुटज, अर्जुन, सर्ज आदिमें फूल आता है; सप्तपर्णमें नहीं आता। सप्तपर्णमें फूल शरद् ऋतुमें आता है [**मुक्त्वा कदम्बकुटजार्जुनसर्जनीपान्सप्तच्छदानुपगता कुसुमोद्गमश्रीः**]।

मेघदूतमें भी बादलको ककुभके ऊपर थोड़ा समय बितानेका आदेश कविने दिया है—

उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे मत्प्रियार्थं यियासोः
कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते॥

उत्तररामचरितमें भवभूतिने और किरातार्जुनीयमें भारविने वर्षा ऋतुमें इसके पुष्पित होनेका उल्लेख किया है। यथा—

सोऽयं शैलः ककुभसुरभिः माल्यवान्नाम यस्मिन्
नीलः स्निग्धः श्रयति शिखरं नूतनस्तोयवाहः॥ भवभूति।

प्रतिदिशमभिगच्छताभिमृष्टः ककुभविकाससुगन्धिनानिलेन।
नव इव विबभौ सचित्तजन्मा गतधृतिराकुलितश्च जीवलोकः॥

आयुर्वेदमें अर्जुन वृक्षकी छालका उपयोग मुख्यतः हृद्रोगके लिए होता है [**अर्जुनस्य त्वचां सिद्धां क्षीरं योज्यं हृदामये**]। भारविने अर्जुनका उल्लेख विदारी और बाणके साथ किया है—

घनं विदार्यार्जुनबाणपूगं ससार बाणोऽयुगलोचनस्य।
घनं विदार्यार्जुनबाणपूगं ससार बाणोऽयुगलोचनस्य॥ १५।५०।

८—अरिष्ट

अरिष्टसे नीम और रीठा दोनोंका ग्रहण होता है। नीमके अर्थमें अरिष्टका प्रयोग कादम्बरीमें भी आया है [**अनलप्लुष्यमाणारिष्टतरुपल्लवोल्लसितरक्षाधूमगन्धम्**—अंगारेपर डाले हुए नीमके पत्तोंसे निकलता हुआ जन्तुघ्न धुआँ कादम्बरी—पूर्वभाग]। इसीका स्पष्टीकरण सुश्रुतमें मिलता है—

सर्पपारिष्टपत्राभ्यां सर्पिषा लवणेन च।
द्विरह्नः कारयेद् धूपं दशरात्रमतन्द्रितः॥
अनेन विधिना युक्तमादावेव निशाचरः।
वनं केसरिणा क्रान्तं वर्जयन्ति मृगादिव ॥सुश्रुत० सूत्र०।

नैपधमें श्रीहर्षने चैत्रमासमें नीम खानेका उल्लेख किया है। यथा—

"**भुञ्जानस्य नवं निम्बं परिवेवशवति मधौ**"

चैत्रमासमें या वसन्त ऋतुमें जब बीमारी फैलनेका डर रहता है, तब नीमके पत्ते खानेका उल्लेख धर्मग्रन्थोंमें भी मिलता है [देखिये—लेखककी क्लिनिकल मैडिसिन ज्वर—पृष्ठ १०७४]।

९—अलक्तक [लाक्षा रंग]

अलक्तकका अर्थ अमरकोषमें लाक्षा दिया है। हिन्दीमें पैरोंके तलुओं पर स्त्रियाँ जो रंग लगाती हैं, उसे महावर कहते हैं। यह रंग लाखसे बनता है। आयुर्वेदमें लाखका उपयोग रक्तस्तम्भक गुणके लिए है [**अलक्तकरसैः क्षौद्रं रक्तवान्तिहरं परम्**—आयुर्वेद संग्रह; २—**उरोमत्वाक्षतं लाक्षां पयसा मधुसंयुताम्। सद्य एव पिबेज्जीर्णे पयसाऽद्यात् सशर्करम्।** चरक]। इसके सिवाय लाक्षाका उपयोग शीत गुणके लिए चन्दनलाक्षावलादि तैल या लाक्षादि तैलके रूपमें ज्वरमें किया जाता है। लाक्षा—लाक्षारस ठण्डे माने जाते हैं। इसीसे शरीर पर इन तेलोंको मला जाता है।

आयुर्वेदके विचारसे पुरुष सौम्य और स्त्रियाँ आग्नेय मानी हैं। उनमें उष्णताकी अधिकता रहनेसे रक्तस्राव सम्बन्धी शिकायतोंका प्रायः होना अधिक सम्भव है; सम्भवतः इसीलिए अथवा सौन्दर्य दृष्टिसे पैरों पर आलक्तक रसका उपयोग करनेकी प्रथा होगी, जिसका कवियोंने भिन्न-भिन्न रूपसे वर्णन किया है। यथा—विक्रमोर्वशीयमें—

पद्भ्यां स्पृशेद् वसुमतीं यदि सा सुगात्री मेघाभिवृष्टसिकतासु वनस्थलीषु।
पश्चान्नता गुरुनितम्बतया ततोऽस्या दृश्येत चारुपदपंक्तिरलक्तकाङ्कः॥

४।१६।

प्रसाधिकालम्बितमग्रपादमाक्षिप्य काचिद् द्रवरागमेव।
उत्सृष्टलीलागतिरागवाक्षादलक्तकाङ्कां पदवीं ततान॥

—कुमार० ७।५८।

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डुतरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतम्
निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुलभो लाक्षारसः केनचित्॥

—शाकुन्तल० ४।५।

लाक्षारागं चरणकमलन्यासयोग्यं च यस्मा-
देकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः॥

—मेघदूत उत्तरमेघ १२।

नितान्तलाक्षारसरागरञ्जितैः नितम्बिनीनां चरणैः सनूपुरैः।
पदे पदे हंसरुतानुकारिभिः जनस्य चित्तं क्रियते समन्मथम्॥

—ऋतु०।

इसके सिवा किरातार्जुनीयमें [५।२३;१०।४२], नैषधमें [२२।३], और मालविकाग्निमित्रमें [३।५२] आलक्तकका उल्लेख आता है।

कालिदासने लाखके रससे कपड़े रंगनेका भी उल्लेख किया है। यथा—

गुरूणि वासांसि विहाय तूर्णं तनूनि लाक्षारसरञ्जितानि।
सुगन्धिकालागुरुधूपितानि धत्ते जनः काममदालसाङ्गः॥

—ऋतु ६।१३।

आलक्तकका उपयोग आजकलकी लिपस्टिककी भाँति पहले भी होता था। इसका उल्लेख मालविकाग्निमित्रमें मिलता है।

रक्ताशोकरुचा विशेषितगुणो विम्बाधरालक्तकः ॥३।५।

कुमारसम्भवमें कविने "**रागेण बालारुणकोमलेन चूतप्रवालोष्ठमलंचकार**"—कहकर ओठोंपर राग–लाल रंगका लगाना सूचित किया है।

१०—अशोक

कालिदास तथा दूसरे कवियोंने अशोकका सम्बन्ध स्त्रीके पैरोंके साथ जोड़ा है। कवियोंकी किंवदन्तीमें अशोक तभी पुष्पित होता है, जब उसमें स्त्री अपने वामपादका प्रहार करती है[1]। यह किंवदन्ती भले ही आज सन्देहात्मक हो, परन्तु यह सत्य है कि स्त्रियोंके ऋतु-सम्बन्धी रोगोंके लिए अशोकका उपयोग आयुर्वेदमें प्रचुर मात्रामें है। स्त्रियोंके इन रोगोंके सिवाय अशोकका दूसरा उपयोग विदित भी नहीं। सम्भवतः कवियोंने इसीसे अशोकका सम्बन्ध स्त्रियोंसे जोड़ा होगा, परन्तु फिर शेष वृक्षोंके सम्बन्धकी उलझन बनी रहती है। आयुर्वेदमें रक्तप्रदर–असृग्दरके लिए अशोकारिष्ट, अशोकघृत या अशोकचूर्णका व्यवहार बराबर होता है, यथा—

अशोकबल्कलक्काथश्टतं दुग्धं सुशीतलम्।
यथाबलं पिबेद् प्रातः तीव्रासृग्दरनाशनम्॥

फूलोंके भेदसे अशोक श्वेत और लाल दो प्रकारका होता है। इसमें श्वेत फूलका अशोक बहुत सिद्धि देता है और लाल फूलका अशोक कामको बढ़ाता है।[2] कवियोंने प्रायः लाल अशोकको ही चुना है; यथा—

---

१. **स्त्रीणां स्पर्शात् प्रियङ्गुर्विकसति बकुलः सीधुगण्डूषसेकात्**
पादाघातादशोकः तिलककुरबकौ वीक्षणालिङ्गनाभ्याम्।
मन्दारो नर्मवाक्यात्पटुमृदुहसनाच्चम्पको वक्त्रवातात्
चूतो गीतान्नमेरुर्विकसति च पुरो नर्त्तनात् कर्णिकारः॥

२. **स्वप्रसूनैरशोकस्तु श्वेतो रक्त इति द्विधा।**
बहुसिद्धिकरो श्वेतो रक्तोऽत्र स्मरवर्धनः॥

अशोको दृश्यतामेष कामिशोकविवर्धनः ।
रुवन्ति भ्रमरा यत्र दह्यमाना इवाग्निना ॥
बालाशोकश्च निचितो दृश्यतामेष पल्लवैः ।
योऽस्माकं हस्तशोभाभिः लज्जमान इव स्थितः ॥
—बुद्धचरित ४।४५-४८ ।

रक्ताशोकश्चलकिसलयः केसरश्चात्र कान्तः
प्रत्यासन्नौ कुरबकवृतेर्माधवीमण्डपस्य ।
एकः सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी
काङ्क्षन्त्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छद्मनाऽस्याः ॥ मेघदूत उत्तर ।

अशोक कवियोंका प्रिय वृक्ष है । कालिदास तो इस वृक्ष पर मुग्ध हैं । अशोक वृक्ष मूलसे लेकर फूलों तक लाल रहता है; इसकी लालीको देखकर हृदयमें एक हूक—वेदना उठती है—

आमूलतो विद्रुमरागताम्रं सपल्लवाः पुष्पचयं दधानाः ।
कुर्वन्त्यशोका हृदयं सशोकं निरीक्ष्यमाणा नवयौवनानाम् ॥
—ऋतु० ६।१६ ।

इसके फूलोंको ललनाएँ अपने भ्रमर-जैसे नीले बालोंमें लगाती है [चलेषु नीलेष्वलकेष्वशोकम्—ऋतु० ६।५] । अशोकके फूलोंके गुच्छेका उल्लेख तो बहुत स्थानों पर आता है [अशोकस्तबक—मा० ३।५६; अशोक-वृक्षस्य प्रसूनलक्ष्मी मा० ५।१०] । अशोककी शाखाके साथ ही अशोकके फूलोंका गुच्छा लगता है यह बात भी कालिदासकी दृष्टिसे नहीं बची [अशोकशाखावलम्बिपल्लवगुच्छः—मा० ३-५५] । अशोक वृक्षकी छाया घनी होती है [अशोकपादपच्छाया—मा० ६।५०] ।

अशोकके फूलोंकी भाँति अशोकके नव किसलय भी स्मरदीपन करते हैं । यथा—

कुसुममेव न केवलमार्त्तवं नवमशोकतरोः स्मरदीपनम् ।
किसलयप्रसवोऽपि विलासिनां मदयिता दयिताश्रवणार्पितः ॥

—रघु० ८।२८ ।

अशोक-दोहद संस्कृत कवियोंका प्रिय विषय है ।[1] फिर कालिदास कैसे इस विषयको छोड़ते—

कुसुमं कृतदोहदस्त्वया यदशोकोऽयमुदीरयिष्यति ।
अलकाभरणं कथं नु तत्तव नेष्यामि निवापमाल्यताम् ॥

—रघु० ८।६२ ।

अशोकके फल खाये नहीं जाते, इसके फूलोंमें सुगन्धि नहीं, इसके पत्तोंमें ही लावण्य रहता है; जिससे इसने कवियोंका मन खींचा है—

मृदूनां स्वादूनां लघुरपि फलानां न विभवः
तवाशोक स्तोकः स्तबकमहिमा सोऽप्यसुरभिः ।
यदेतन्नो तन्वीकरचरणलावण्यसुभगं
प्रवालं बालं स्यात्तरुषु स कलङ्कः किमपरः ॥

अशोकके पत्ते लाल होते हैं । इसकी उपमा राजशेखरने वाह्लीक देशकी स्त्रियोंके अधरोष्ठ-दशनसे दी है [**वाह्लीकीदशनव्रणारुणतरैः पत्रैरशोकोऽर्चितः—राजशेखर**] । रामका इसके लाल पत्तोंकी आगसे समानता करना कितना महत्त्वपूर्ण है—

अशोकस्तबकाङ्गारः षट्पदस्वननिःस्वनः ।
मां हि पल्लवताम्रार्चिः वसन्ताग्निः प्रधक्ष्यति ॥

अशोक-वाटिकामें हनुमान भी इसके लाल रंगकी सूर्य-प्रभासे तुलना करने लगे—

---

१. **तरुगुल्मलतादीनामकाले कुशलैः कृतम् ।**
पुष्पाद्युत्पादकं द्रव्यं दोहदं स्यात्तु तत्क्रिया ॥

सर्वर्तुकुसुमैः रम्यैः फलवद्भिश्च पादपैः ।
पुष्पितानामशोकानां श्रिया सूर्योदयप्रभाम् ॥ ५।१५ ।

मृच्छकटिकमें भी इसकी लालीका उल्लेख है—

एषोऽशोकवृक्षो नवनिर्गमकुसुमपल्लवो भाति ।
सुभट इव समरमध्ये वनलोहितपङ्कचार्चिकः ॥ मृच्छकटिक ।

कादम्बरीमें भी अशोकका उल्लेख है। वसन्तके वर्णनमें कविने इसके गुच्छोंका स्मरण किया है [**१. आलोलरक्तपल्लवप्रालम्बान्कम्पयन्नशोकशाखिनः; २. अशोकतरुताड़नारणितरमणीयमणिनूपुरझङ्कारसहस्रमुखरेषु लोहितायमानं कर्णपूराशोकपल्लवैः—कादम्बरी पूर्वभाग**]। प्रसन्नराघवमें अशोकका उल्लेख कई स्थानों पर आता है। यथा—

[१] **स्निग्धाशोकद्रुमनिजसर्खीनूर्णमुद्बोधयैनां**
सिक्त्वा सिक्त्वा किसलयकरास्रंसिना सीकरेण ॥ ६।२० ।

[२] **कुरु सकरुणं चेतः श्रीमन्नशोक वनस्पते ।**
दहनकणिकामेकां तावन्मम प्रकटीकुरु । ६-३७ ।

मालतीमाधवमें [३।६२] भवभूतिने और नैषधमें [१।१०१] श्रीहर्षने अशोकका उल्लेख किया है। भारविने अशोकका उल्लेख कई स्थानों पर किया है। यथा—

मृदितकिसलयः सुराङ्गनानां स सलिलवल्कलभारभुग्नशाखः ।
बहुमतिमधिकां ययावशोकः परिजनतापि गुणाश्च सद्गुणानाम् । १०।९ ।
ददृशुरिव सुराङ्गना निषण्णं सशरमनङ्गमशोकपल्लवेषु ।१०।३२ ।

सुराङ्गनाओंने कामदेवको बाण लिये हुए अशोकके पत्तोंमें बैठा देखा। अशोकके पत्ते देखकर इनके मनमें क्षोभ हुआ।

निपीयमानस्तबका शिलीमुखैरशोकयष्टिश्चलबालपल्लवाः ।
विडम्बयन्ती ददृशे वधूजनैरमन्ददष्टोष्ठकरावधूननम् ॥८।६ ।

कोई नायक किसी नायिकाके ओष्ठका दशन कर रहा हो और नायिका उसे अपने हाथोंसे रोक रही हो, उसी प्रकार अशोकके पल्लव भ्रमरोंको स्तबकोंके रस पानसे रोक रहे हैं।

इस प्रकारसे हम देखते हैं कि अशोकका सम्बन्ध कवियोंने नारीके साथ जोड़ा है। आयुर्वेदमें चिकित्सा दृष्टिसे अशोकका मुख्य सम्बन्ध स्त्रियोंके साथ ही है। आयुर्वेदका अशोकारिष्ट, अशोक घृत, अशोकत्वक्से सिद्ध दूध-स्त्रियोंके रोगोंमें ही प्रयुक्त होते हैं।

११—आम

आमका उपयोग चिकित्सामें बहुत कम मिलता है। सुश्रुतमें दो स्थानों पर इसका उल्लेख मिला है और चरकमें एक स्थान पर। **[नस्यं तथाऽऽम्रास्थिरसः समंगा—चरक]** आम्रफलका उपयोग भावप्रकाशमें देखनेमें आया है। सुश्रुतमें इसका उपयोग

[१] बाल काला करनेमें—

सैरेयजम्ब्वर्जुनकाश्मरीजं पुष्पं तिलान्मार्कवचूतबीजे।
पुनर्नवे कर्दमकण्टकार्यौ कासीसपिण्डीतकबीजसारम्॥

—सुश्रुत चि० अ० २५।३२।

[२] लेपमें—

हरीतकीचूर्णमरिष्टपत्रं चूतत्वचं दाडिमपुष्पवृन्तम्।
पत्रं च दद्यात्मदयन्तिकाया लेपोऽङ्गरागो नरदेवयोग्यः॥

—सुश्रुत० चि० अ० २५।३२।

आमके फलके गुण आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें मिलते हैं, परन्तु चिकित्सा या रोग दृष्टिसे उपयोग प्रायः नहीं मिलता। संस्कृत काव्योंमें अशोककी भाँति आम्रका उल्लेख बहुत है। शायद ही कोई कवि ऐसा होगा, जिसने इसको अपने काव्यमें स्थान न दिया हो। अश्वघोषने इसका कई स्थानों पर उल्लेख किया है। यथा—

पश्य भर्त्तश्रितं चूतं कुसुमैर्मधुगन्धिभिः ।
हेमपञ्जररुद्धो वा कोकिलो यत्र कूजति ।।
प्रतियोगार्थिनी काचित् गृहीत्वा चूतवल्लरीम् ।
इदं पुष्पं तु कस्येति पप्रच्छ मदविक्लवा ।।
चूतशाखां कुसुमितां प्रगृह्यान्या ललम्बिरे ।
सुवर्णकलशप्रख्यान्दर्शयन्त्यः पयोधरान् ।। बुद्धचरित ४ ।
सा रोदनारोषितरक्तदृष्टिः संतापसंक्षोभितगात्रयष्टिः ।
पपात शीर्णाकुलहारयष्टिः फलातिभारादिव चूतयष्टिः ।।
—सौन्दरनन्द ६।२४ ।

वसन्तके साथ आम्रमंजरीका गाढ़ा सम्बन्ध है। कालिदासके ऋतुसंहारमें वसन्तवर्णनका प्रथम श्लोक देखिए—

प्रफुल्लचूताङ्कुरतीक्ष्णसायको द्विरेफलालाविलसद्धनुर्गुणः ।
मनांसि वेद्धुं सुरतप्रसङ्गिनां वसन्तयोद्धा समुपागतः प्रिये ।।
चूताङ्कुरास्वादकषायकण्ठः पुंस्कोकिलो यन्मधुरं चुकूज ।
मनस्विनीमानविघातदक्षं तदेव जातं वचनं स्मरस्य ।।
—कुमार० ३।३२ ।
चूतद्रुमाणां कुसुमान्वितानां ददाति सौभाग्यमयं वसन्तः ।।
—ऋतु० ६।४ ।

वसन्तमें आमके पेड़में नये पल्लव आते हैं। वह बौर आता है। इसके ऊपर कोयल कुहकती है, ऐसे सुन्दर दृश्यको कवि कैसे छोड़ते—

पुंस्कोकिलः चूतरसासवेन मत्तः प्रियां चुम्बति रागहृष्टः ।। ऋतु० ६।१६ ।
मत्तद्विरेफपरिचुम्बितचारुपुष्पा मन्दानिलाकुलितनम्रमृदुप्रवालाः ।
कुर्वन्ति कामिमनसां सहसोत्सुकत्वं चूताभिरामकलिकाः समवेक्षमाणः ।।
ऋतु० ६।१९ ।

आकम्पयन् कुसुमिताः सहकारशाखा विस्तारयन् परभृतस्य वचांसि दिक्षु ।
वायुर्विवाति हृदयानि हरन्नराणां नीहारपातविगमात्सुभगो वसन्ते ।।
—ऋतु० ६।२४ ।

आम्रवृक्षके प्रति जैसे कोयलको प्रेम है, उसी प्रकार पिपीलिकाको भी इसीके पत्तों पर अधिक आश्रय मिलता है। पिपीलिका-लालरंगकी चींटी है। इसका दंश ऐसा होता है कि दो वस्तुओंको मिला देता है। ये चींटिया आम के पत्तोंको जोड़कर ऐसा घोंसला सा बना लेती हैं कि इसमें एक बूंद पानी जा नहीं सकता। यह चारों ओरसे ऐसी अच्छी तरह बन्द रहता है कि आप इसे लेकर पानीके बर्तनमें डाल दें, इसमें पानी नहीं जायेगा। इन चीटियों का दंश भी बहुत कष्टदायक होता है। सुश्रुतमें आँतोंके शल्यकर्ममें इन्हीं चींटियोंसे कटवानेका उल्लेख किया है [**तच्छिद्रमात्रं समाधाय कालपिपीलिकाभिर्दंशयेत्, दष्टे च तासां कायानपहरेत् न शिरांसि**–चि. १४।१७]। इनका कालपिपीलिका नाम ठीक ही है, क्योंकि इनका दंश मृत्युका दर्शन करा देता है। जब ये चींटियां चिपट जाती हैं, तब इन्हें छुड़ाना मुश्किल हो जाता है।

मालविकाग्निमित्रमें रानीकी दासी निपुणिका आमके वृक्षपर बौर इकट्ठी करती हुई इन्हीं चीटियोंसे काटी जाती है—

अवलोकयतु भट्टिनी। चूताङ्कुरं विचिन्वन्त्योः पिपीलिकाभिर्दष्टम्"।

अंक ३।

आमके वृक्ष पर कोयलको तो स्नेह है ही, परन्तु भ्रमरोंको भी कम स्नेह नहीं है—

सहकारकुसुमकेसरनिकरभरामोदमूर्छितदिगन्ते।
मधुरमधुविधुरमधुपे मधौ भवेत्कस्य नोत्कण्ठा॥

भर्तृ० शृंगार० ८६।

नहि प्रफुल्लं सहकारमेत्य वृक्षान्तरं काङ्क्षति षट्पदाली॥

—रघु० ६।६९.

कदाचित् ही संस्कृतमें कोई काव्य ऐसा हो, जिसमें आमका उल्लेख न हो। इतने प्रिय वृक्षके फलका उपयोग आयुर्वेदके आधारभूत चरक एवं

सुश्रुत ग्रन्थोंमें नहीं दीखता, यह आश्चर्यकी बात है। साथ ही उन लोगोंके लिए एक समस्या भी है, जो फलोंमें ही पोषण तत्त्व मानते हैं और लोगोंको फल खानेके लिए बहुत प्रेरित करते हैं। चरकमें आम्रफलका उल्लेख है, परन्तु विरोधी द्रव्योंके उदाहरणमें [सूत्र० २५६।८९]। आम्रफलके गुण भी आयुर्वेदमें उल्लिखित हैं परन्तु चिकित्सा दृष्टिसे उपयोग नहीं है, ऐसा कहनेमें अत्युक्ति नहीं है। आमकी गुठलीका उपयोग अतिसार रोगमें, आम के पत्तोंका उपयोग पल्लवोंमें और आमकी छालका उपयोग क्षीरी वृक्षत्वचामें आयुर्वेदमें दीखता है[1], परन्तु फलका उपयोग नहीं मिलता; इसीसे मेरी मान्यता है कि फलोंका मूल्य स्वास्थ्यकी दृष्टिसे अधिक नहीं [देखिए–लेखक की हमारे भोजनकी समस्यामें फल वर्ग]।

१२–ईक्षु

काव्योंमें ईक्षुका उल्लेख आम्रसे कम मिलता है। आयुर्वेदमें इसका उल्लेख ठीक रूपमें मिल जाता है। ईक्षुको कामशास्त्रमें भी स्थान दिया है। यथा वेश्याको उपदेश देते हुए क्षेमेन्द्रने कहा है—

निष्पीतसारं विरतोपकारं क्षुण्णेक्षुशुल्कप्रतिमं त्यजेत्तम्।
लब्धाधिवासक्षयकारिशुष्कं पुष्पं त्यजत्येव हि केशपाशः॥
—समयमातृका।

बाला तन्वी मृदुरियमिति त्यजतामत्र शङ्का
काचिद्दृष्टा भ्रमरभरतो मञ्जरी भज्यमाना।
तस्मादेषा रहसि भवता निर्दयं पीडनीया
मन्दाक्रान्ता विसृजति रसं नेक्षुमग्रथं समस्तम्॥–कुट्टिनीमतम्।

---

१. चरकमें कषायवर्गके द्रव्य गिनते हुए आम्रका उल्लेख है। [चरक. सू. अ. ४] इसी प्रकार यह सुश्रुतमें भी मिलता है परन्तु फलका षउयोग नहीं है।

आयुर्वेदमें ईखके पत्तोंका और रसका उपयोग चिकित्सामें तथा उपमा रूपमें आता है। यथा—वृष्यवाजीकरण योगोंमें—

शरमूलेक्षुमूलानि काण्डेक्षु सेक्षुवालिका ।
शतावरी पयस्या च विदारी कण्टकारिका ॥

—बृंहणी गुटिका० चरक० चि० २।२४ ।

माषपर्णभृतां धेनुं गृष्टीं पुष्टां चतुःस्तनीम् ।
समानवर्णवत्सां च जीवद्वत्सां च बुद्धिमान् ॥ चरक. चि. अ. २।३।
इक्ष्वादामर्जुनादां वा सान्द्रक्षीरां च धारयेत् । चरक. चि. अ. २। ४।

चिकित्सामें—

मधूदकस्येक्षुरसस्य चैव पानाच्छमं गच्छति रक्तपित्तम् ।
द्राक्षारसस्येक्षुरसस्य नस्यं क्षीरस्य दूर्वास्वरसस्य चैव ॥

—चरक. चि. अ. ४।७९ ।

उपमा रूपमें—

अत्यर्थमधुरं शीतमीषत्पिच्छिलमाविलम् ।
काण्डेक्षुरससङ्काशं श्लेष्मकोपात्प्रमेहति ॥

कालिदासने ईखकी छायाका उल्लेख किया है। वास्तवमें धूपके दिनोंमें ईखकी छायामें बैठकर आराम करनेका आनन्द गाँवमें मिलता है—

इक्षुच्छायानिषादिन्यस्तस्य गोप्तुर्गुणोदयम् ।
आकुमारकथोद्घातं शालिगोप्यो जगुर्यशः ॥ रघु० ४ ।

शिशिर ऋतुके वर्णनमें गरम-गरम गुड़ खाने तथा ऊखके रसके पीनेका उल्लेख भी मिलता है—

प्रचुरगुडविकारः स्वादुशालीक्षुरम्यः
प्रबलसुरतकेलिर्जातकन्दर्पदर्पः ।
प्रियजनरहितानां चित्तसन्तापहेतुः
शिशिरसमय एष श्रेयसे वोऽस्तु नित्यम् ॥ ५।१६ ।

ईखके अंकुरको कितनी ही घाससे ढक दें वह फूटकर बाहर आता ही है। इसीसे श्रीहर्ष कहते हैं—

पलालजालैः पिहितः स्वयं हि प्रकाशमासादयतीक्षुदण्डः ॥ ८।२ ।

अश्वघोषने भी इसका उल्लेख किया है। ईखका रस निकालकर शेष शुष्क भागको सुखाकर जला देते हैं। इसी प्रकार मानव शरीरको भोगरूपी यंत्रमें डालकर सत्त्वहीन रूपमें वृद्धावस्थामें पहुँचाकर अन्तमें अग्निमें जला दिया जाता है—

यथेक्षुरत्यन्तरसप्रपीडितो भुवि प्रवृद्धो दहनाय शुष्यते ।
तथा जरायन्त्रनिर्पीडिता तनुर्निपीतसारा मरणाय तिष्ठति ॥

—सौन्दर० ९।३१ ।

पञ्चतन्त्रमें सज्जनों और दुर्जनोंकी मैत्रीकी उपमाके लिए ईखका उदाहरण दिया गया है, जिस प्रकार ऊखको ऊपरसे चूसनेपर उत्तरोत्तर अधिक मिठास मिलती है, उसी प्रकार सज्जनोंकी मैत्री है। जिस प्रकार मूलसे चूसने पर उत्तरोत्तर रस कम होता जाता है, उसी प्रकार दुर्जनोंकी मैत्री है। यथा—

इक्षोरग्रात् पर्वणि पर्वणि यथा रसविशेषः ।
तद्वत् सज्जनमैत्री विपरीतानां तु विपरीता ॥ —पञ्चतन्त्र ।

ईक्षुमें सब गुण हैं, परन्तु एक अवगुण है, कि चूसने पर नीरस हो जाता है—

कान्तोऽसि नित्यमधुरोऽसि रसाकुलोऽसि
किं चासि पञ्चशरकार्मुकमद्वितीयम् ।
इक्षो तवास्ति सकलं परमेकमूनं
यत्सेवितो भजसि नीरसतां क्रमेण ॥

१३—एला—इलायची

आयुर्वेदमें एला शब्द छोटी इलायचीके लिए आता है। छोटी इलायची दक्षिणमें होती है। बड़ी इलायची अल्मोड़ा आदि पर्वतोंपर होती है। दक्षिण देशका वर्णन करते हुए कवियोंने एलाका उल्लेख किया है; यथा—

ताम्बूलवल्लीपरिणद्धपूगास्वेलालतालिङ्गितचन्दनासु।
तमालपत्रास्तरणासु रन्तुं प्रसीद शश्वन्मलयस्थलीषु॥

—रघु० ६।६४।

आमूलयष्टेः फणिवेष्टितानां सचन्दनानां जननन्दनानाम्।
कक्कोलकैलामरिचैर्युतानां जातीतरूणां च स जन्मभूमिः॥

—राजशेखर।

ससञ्जुरश्वक्षुण्णानामेलानामुत्पतिष्णवः।
तुल्यगन्धिषु मत्तेभकटेषु फलरेणवः॥ —रघु० ४।४७।

आज भी छोटी इलायची दक्षिणसे ही आती है। इलायचीकी सुगन्ध बहुत तेज होती है। इसे भारविने भी कहा है—

निःशेषप्रशमितरेणुवारणानां स्रोतोभिः मदजलमुज्झतामजस्रम्।
आमोदं व्यवहितभूरिपुष्पगन्धो भिन्नैलासुरभिमुवाह गन्धवाहः॥

—किराता० ७।९।

हाथियोंके गण्डस्थलसे बहनेवाले मदकी गन्धको भी जिन्होंने तिरस्कृत कर दिया, ऐसे इलायचीके पुष्पोंकी गन्धसे वायु घ्राणेन्द्रियको तर्पण करती हुई बह रही थी। कालिदासके वर्णनमें इलायचीकी लताएँ चन्दन-वृक्षों पर चढ़ी हुई हैं। माघने भी समुद्रके किनारे पर इलायचीकी लताओंका उल्लेख किया है—

तस्यानुवेलं व्रजतोऽधिवेलं एलालतास्फालनलब्धगन्धः।

—शिशुपालवध ३।७०।

परन्तु लोकमें देखनेपर इलायचीका वृक्ष मिलता है, लता नहीं।

बाणने कादम्बरीमें एलाका उल्लेख किया है। स्फटिक जैसी भित्तिपर एलारस छिड़का हुआ था [**क्वचिदेलारसेन सिच्यमानानि स्पर्शानुमेयरम्य-भित्तीनि स्फटिकभवनानि—पूर्वभाग**]। आयुर्वेदमें एलाका उपयोग प्रचुर मात्रामें है—क्षयरोगमें, खाँसीमें, रक्त आने पर एलादि चूर्ण, एलादि वटी, सितोपलादि चूर्ण आदिका सामान्यतः उपयोग होता है।

१४—कदली

केला बहुत प्रसिद्ध वस्तु है। आयुर्वेदमें भी इसके गुण मिलते हैं। यथा—सुश्रुतमें लोध्रादि गणमें कदलीका उल्लेख है। यह गण मेद और कफनाशक, योनिदोषहर, स्तम्भक, वर्णको निखारनेवाला और विषनाशक है। इसीसे योनिरोगोंमें कदल्यादि घृतका व्यवहार प्रायः होता है। परन्तु जिस प्रकार आमके फलका उपयोग चिकित्सामें अधिक नहीं मिलता, उसी प्रकार केलेके फलका उपयोग भी बहुत सीमित रूपमें मिलता है। केलेके पत्तेका उपयोग बाह्य उपचारमें शीत गुणके लिए होता है। प्राचीनकालमें केलेका पत्ता व्रण पर लगी स्निग्ध औषधको ढकनेके लिए आजकलके गट्टा परचेके स्थानमें प्रयुक्त होता था [**दत्तौषधेषु दातव्यं पत्रं वैद्येन जानता**—सुश्रुत० चि० १।११८—पर लेखकका नोट देखें]।

संस्कृत कवियोंके लिए कदली प्रिय वस्तु है। सहकार–आमकी भाँति यह किसीसे छूटी नहीं। आम तो वसन्तमें ही याद आता है, परन्तु कदली तो बारहों मास फूलती-फलती है। इसलिए यह कवियोंको अपनी ओर कैसे न खींचती। कालिदासको ही लीजिये—

नागेन्द्रहस्तास्त्वचि कर्कशत्वादेकान्तशैत्यात्कदलीविशेषाः।
लब्ध्वाऽपि लोके परिणाहि रूपं जातास्तदूर्वोरुपमानबाह्याः॥ कुमार० १।३६

पार्वतीके ऊरुकी उपमा न तो हाथीके सूँडसे दी जा सकती, क्योंकि वह खुरदरी होती है; और न केलेसे दी जाती है, क्योंकि वह ठण्डा है। इसलिए

इस ऊरुकी उपमा संसारमें मिलती नहीं। परन्तु कवि स्वयं यक्षकी पत्नीकी ऊरुकी उपमा केलेसे देता है—

संभोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानां
यास्यत्यूरुः सरसकदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम् ॥

रामायणमें भी सीताके ऊरुकी उपमा कदलीसे दी है—

कदलीकाण्डसदृशौ कदल्या संवृतावुभौ ।
ऊरु पश्यामि ते देवि नासि शक्ता निगूहितुम् ॥३।६२–४ ।

श्रीहर्षने दमयन्तीके अंगोंकी तुलना अप्सराओंके साथ करते हुए दमयन्तीके भ्रूको चित्रलेखाके समान, नासाको तिलोत्तमाकी नासिकाके समान और ऊरुको रम्भा अप्सराके ऊरुके समान बताया है। [नैषध० ७।९२] माघ कविने भी ऊरुकी उपमा केलेसे ही दी है। [**रम्भोरु मुञ्च संरम्भम्** ६।१०]।

केलेके पत्तेका प्रयोग ग्रीष्ममें दाह शान्तिके लिए होता है [**कदलीदल-कह्लारमृणालकमलोत्पलैः** — हृदय]। सम्भवतः इसी दाहशान्तिको देखकर कवियोंने विरहकी दाहाग्निको शान्त करनेके लिए केलेके पत्तेके शीत स्पर्शका अपने काव्योंमें उल्लेख किया है।

१५–कमल

कमलके बहुतसे भेद और बहुतसे नाम हैं। प्रायः सभीका उल्लेख किसी न किसी रूपमें काव्योंमें और आयुर्वेदमें मिल जाता है। काव्योंमें कमलका उल्लेख सौन्दर्यके अर्थमें हुआ है। आयुर्वेदमें कमलका नाम शीतोपचार या शीतल गुणके लिए मिलता है। कमल जिस किसी भी जातिका होगा वह शीत गुणयुक्त ही माना गया है। इनमें श्वेत कमल अधिक शीत होता है। कमल दिनमें सूर्यसे खिलता है और

कमलिनी रात्रिमें चन्द्रमासे खिलती है। काव्योंमें मुख्य रूपसे कमलके निम्न नाम मिलते हैं—

कमल, लीला कमल, कमलिनी, इन्दीवर, उत्पल, कुमुद, कुमुद्वती, कुवलय, तामरस, नलिनी, नीलोत्पल, पंकज, पद्म, पद्मिनी, पुण्डरीक, पुष्कर, सरोरुह, सरोज, शतपत्रयोनि, अम्बुज, अम्भोरुह, अम्भोज, अरविन्द, स्थलारविन्द, लीलारविन्द।

आयुर्वेदमें कमलके अन्तः और बाह्य दोनों रूपोंमें व्यवहार मिलते हैं। बाह्य रूपमें ज्वरके दाहको कम करनेके लिए इसका उपयोग है। यथा—

> पौष्करेषु सुशीतेषु पद्मोत्पलदलेषु च।
> कल्हाराणां च पत्रेषु क्षौमेषु विमलेषु च।
> चन्दनोदकशीतेषु सुप्याद् दाहार्दितः सुखम्॥ —चरक।

सुश्रुतके उत्पलादिगणमें—उत्पल, रक्तोत्पल, कुमुद, सौगन्धिक, कुवलय और पुण्डरीक इन कमलोंका उल्लेख किया है। यह गण दाह, पित्त रक्तपित्त नाशक है, पिपासा, हृद रोग, छर्दि और मूर्च्छाको नष्ट करता है। इसीसे काव्योंमें विरहीकी मूर्च्छाको नष्ट करनेके लिए कमलके पत्तेका उपयोग मिलता है।

अश्वघोषने कमल-पद्मका उल्लेख बहुत ही सुन्दर रूपमें किया है—

> काचित्पद्मवनादेत्य सपद्मा पद्मलोचना।
> पद्मवक्त्रस्य पार्श्वेऽस्य पद्मश्रीरिव तस्थुषी॥ —बुद्धचरित।
> अथ लोलेक्षणा काचित् जिघ्रन्ती नीलमुत्पलम्।
> किञ्चिन्मन्दकलैर्वाक्यैः नृपात्मजमभाषत॥

रामायणमें वाल्मीकि कविने नदियों और तालाबोंमें कमलोंका सुन्दर वर्णन किया है—

इयं च नलिनी रम्या फुल्लपङ्कजमण्डिता ।
क्वचिन्नीलोत्पलैश्छन्ना भाति रक्तोत्पलैः क्वचित् ॥
क्वचिदाभाति शुद्धैश्च दिव्यैः कुमुदकुड्मलैः ॥

नवाम्बुधाराहतकेसराणि ध्रुवं परिष्वज्य सरोरुहाणि ।
कदम्बपुष्पाणि सकेसराणि नवानि दृष्ट्वा भ्रमराः पिबन्ति ॥ ४२।८

अमरकोश और निघण्टु की दृष्टिसे कमलके चार भेद हैं—

अतिश्वेत कमल——पुण्डरीक, सिताम्बुज

लाल कमल——रक्तोत्पल, कोकनद, कुवलय

नील कमल——इन्दीवर, नीलोत्पल, नीलाम्बुज

सफेद कमल——कुमुद, कैरव, पद्म, [कल्हार]

छः ऋतुओंमें कोई भी ऐसी ऋतु कदाचित् हो जिसमें कवियोंने कमलको याद न किया हो। यथा ग्रीष्म ऋतुमें——

कमलवनचिताम्बुपाटलामोदरम्यः सुखसलिलनिषेकः सेव्यचन्द्रांशुहारः ।
व्रजतु तव निदाघः कामिनीभिः समेतो निशि सुललितगीते हर्म्यपृष्ठे सुखेन॥

प्रावृट्में—**प्रालेयास्त्रं कमलवदनात्सोऽपि हर्तुं नलिन्याः**–मेघदूत ।

विपत्रपुष्पां नलिनीं समुत्सुका विहाय भृङ्गा श्रुतिहारिनिःस्वनाः ।
पतन्ति मूढाः शिखिनां प्रनृत्यतां कलापचक्रेषु नवोत्पलाशया ॥

शरद् ऋतु— **काशैर्मही शिशिरदीधितिना रजन्यो**
हंसैर्जलानि सरितां कुमुदैः सरांसि ॥

हेमन्त—**प्रफुल्लनीलोत्पलशोभितानि सोन्मादकादम्बविभूषितानि ।**
प्रसन्नतोयानि सुशीतलानि सरांसि चेतांसि हरन्ति पुंसाम् ॥

नील कमलोंके बीचमें श्वेत कमल कैसा सुन्दर लगता है, यह भी देखनेकी बात है। अजके नील वर्ण–श्यामवर्णके साथ गौर वर्ण इन्दुमती कितनी अभिराम लगती है। यह दर्शनीय है—

इन्दीवरश्यामतनुर्नृपोऽसौ त्वं रोचना गौरशरीरयष्टिः।
अन्योन्यशोभापरिवृद्धये वां यागस्तडित्तोयदयोरिवास्तु ॥

—रघु० ६।६५।

कमलसे वायु ठण्डी बनती है। इसकी सुगन्धसे वायु सुरभित होती है; इसको कवियोंने नहीं भुलाया—

कह्लारपद्मकुमुदानि मुहुर्विधुन्वंस्तत्सङ्गमादधिकशीतलतामुपेतः।
उत्कण्ठयत्यतितरं पवनः प्रभाते पत्रान्तलग्नहिमाम्बुविधूयमानः ॥

—ऋतु० ३।१५।

प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः।
यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूलः
शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः ॥

—मेघदूत-पूर्वमेघ।

आयुर्वेदमें जहाँ ज्वरके दाहको दूर करनेके लिए कमल-पत्रोंका उपयोग विहित है। वहाँपर मद्यके दाहको कम करनेके लिए भी इनका व्यवहार बताया है—

[१] अलिञ्जरा पद्मपुटाभिधानाः प्रवालपूर्णाः हिमवारिपूर्णाः।
[२] मुक्ताकलापा शशिरश्मिशुभ्रा मृणालपद्मोत्पलपत्ररम्याः।
[३] सरिद्ध्रदानां हिमवद्दरीणां चन्द्रोदयानां कमलाकराणाम्।
मनोरमाण्यापि कथा प्रवृत्ता दाहं च तृष्णां च निहन्ति सद्यः ॥

—संग्रह।

कमलसे सम्बन्धित मृणालका उल्लेख भी काव्योंमें है। इसीमेंसे विसतन्तु निकलता है, जैसा कि कालिदासने कहा है—

एषा मनो मे प्रसभं शरीरात्पितुः पदं मध्यममुत्पतन्ति।
सुराङ्गना कर्षति खण्डिताग्रात् सूत्रं मृणालादिव राजहंसी ॥

—विक्रमो० ३।१३।

मृणालसूत्राधिकसौकुमार्यौं—कुमार० ३।४६ ।

अन्योन्यमुत्पीडयदुत्पलाक्ष्याः स्तनद्वयं पाण्डु तथा प्रवृद्धम् ।
मध्ये यथा श्याममुखस्य तस्य मृणालसूत्रान्तरमप्यलभ्यम् ॥–कुमार०।
स्वर्गापगाहेममृणालिनीनां नालामृणालाग्रभुजो भजामः ।
अन्नानुरूपां तनुरूपऋद्धिं कार्यं निदानाद्धि गुणानधीते ॥
—नैषध० ३।१७ ।

कमिलिनी और कुमुद भी इसीके भेद हैं । कुमुदके लिए माघका श्लोक **कुमुदवनमपश्रिश्रीमदाम्भोजखण्ड** [११ सर्ग] बहुत प्रसिद्ध है । पद्म-किंजल्कगन्ध—कमलके केशरकी गन्ध प्रसिद्ध है—

वीचीवातैः शीकरक्षोदशीतैः आकर्षद्भिः पद्मकिंजल्कगन्धान् ।
मोहे मोहे रामभद्रस्य जीवं स्वैरं स्वैरं प्रेरितैस्तर्पयेति ॥ ३।२ ।

पुण्डरीकके लिए भवभूतिका यह वचन—

विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः ॥ ६।१२ ।

पद्म पानीमें ही उत्पन्न होता है, पानीमें ही रहता है, फिर भी इसको पानी नहीं छूता । इसी प्रकारसे मनुष्यको काम करना चाहिये [**पद्मपत्र-मिवाम्भसा**–गीता] इसीको अश्वघोषने भी कहा है—

पद्मपर्णं यथा चैव जले जातं जले स्थितम् ।
उपरिष्टादधस्ताद्वा न जलेनोपलिप्यते ॥
तद्वल्लोके मुनिर्जातो लोकधर्मैर्न लिप्यते ॥–सौन्दर० १३।५ ।

१६–करवीर-कनेर

करवीरका प्रचलित नाम कनेर है । इसके फूल पीले और लाल दोनों प्रकारके मिलते हैं । आयुर्वेदमें त्वक् रोगोंमें करवीरका उपयोग होता है । यथा—[**मनःशिलाले करवीरत्वक्—चरक० सूत्र० ४।१०, त्वचं समध्यां**

हयमारकस्य लेपं तिलक्षारयुतं विदध्यात—चरक० सूत्र ४।१४; ग्रन्थिश्च भौर्जः करवीरमूलं—चरक ४।१५]।

काव्योंमें कनेरका उल्लेख मृत्युदण्ड दिये हुए व्यक्तिके गलेमें कनेरकी मालाके रूपमें आता है।

दत्तकरवीरदामा गृहीत आवाभ्यां वध्यपुरुषाभ्याम्।
दीप इव मन्दस्नेहः स्तोकं स्तोकं क्षयं याति॥

—मृच्छकटिक १०।२।

अंसेन बिभ्रत् करवीरमालां स्कन्धेन शूलं हृदयेन शोकम्।
आघातमद्याहमनुप्रयामि शामित्रमालब्धुमिवाध्वरेऽजः॥

—मृच्छकटिक १०।२१।

कनेर ग्रीष्ममें खिलता है—

करभाः शरभाः सरासभाः मदमायन्ति भजन्ति विक्रियाम्।
करवीरकरीरपुष्पिणीः स्थलभूमीरधिरुह्य चासते॥

—राजशेखर अ० १८।

१७—कर्णिकार [अमलतास]

कर्णिकार—अमलतासका फूल जितना सुन्दर है उतना ही यह वृक्ष भी उपयोगी है। इसकी छाल और पत्ते त्वक्‌रोगोंमें—कुष्ठमें काम आते हैं। फलकी मज्जाका विरेचनमें प्रयोग होता है, चरकका तो कहना है कि इसकी मज्जा मृदु विरेचन द्रव्योंमें सबसे श्रेष्ठ है [**चतुरङ्गुलो मृदुविरेचनानाम्**]। यूनानी हकीमोंकी यह प्रिय वस्तु है। इतना होने पर भी इसके फूलोंमें गन्ध नहीं, जिसके लिए कविको कहना पड़ा—

वर्णप्रकर्षे सति कर्णिकारं दुनोति निर्गन्धतया स्म चेतः।
प्रायेण सामग्र्यविधौ गुणानां पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः॥

—कुमार० ३।२८।

इसके फूल पीत वर्ण होनेसे स्त्रियाँ स्वर्णके आभूषणोंके रूपमें कानोंमें लगाती थीं—

कर्णेषु योग्यं नवकर्णिकारम्—ऋतु० ६।५।

हुतहुताशनदीप्तवनश्रियः प्रतिनिधिः कनकाभरणस्य यत्।
युवतयः कुसुमं दधुराहितं तदलके दलकेसरपेशलम्॥

रामायणमें कर्णिकारका उल्लेख कई स्थानों पर आया है। यथा—

आमन्त्रये जनस्थानं कर्णिकारांश्च पुष्पितान्।
क्षिप्रं रामाय शंसध्वं सीतां हरति रावणः॥
अहो त्वं कर्णिकाराद्य पुष्पितः शोभसे भृशम्।
कर्णिकारप्रियां साध्वीं शंस दृष्टा यदि प्रिया॥ ३।६०-२०।
सौमित्रे पश्य पम्पायाः दक्षिणे गिरिसानुषु।
पुष्पितां कर्णिकारस्य यष्टिं परमशोभिताम्॥ ४।१।७३।

यह सुन्दर वृक्ष अश्वघोष जैसे कविकी पैनीदृष्टिसे कैसे बच सकता था—

काषायवासाः कनकावदातस्ततः स मूर्ध्ना गुरवे प्रणेमे।
वातेरितः पल्लवताम्रराग: पुष्पोज्ज्वलश्रीरिव कर्णिकारः॥

—सौन्दर० १८।६।

विक्रमोर्वशीयमें कालिदासने खिले हुए कर्णिकारके फूलोंका उल्लेख किया है। साथ ही यह भी बताया है कि यह वृक्ष ग्रीष्ममें फूलता है—

उष्णालुः शिशिरे निषीदति तरोः मूलालवाले शिखी
निर्भिद्योपरि कर्णिकारमुकुलान्यालीयते षट्पदः।
तप्तं वारि विहाय तीरनलिनीं कारण्डवः सेवते
क्रीडावेश्मनि चैव पञ्जरशुकः क्लान्तो जलं याचते॥

१८—कचनार

आयुर्वेदमें कचनारका मुख्य उपयोग रक्तस्तम्भन और गण्डमाला या अपची रोगमें मिलता है। स्वर्णकी भस्म बनानेमें कचनारकी छालका

क्वाथ प्रायः दिया जाता है। कचनार शीत है, इसीसे रक्तस्तम्भक है। [रक्तार्श चिकित्सामें—१–काश्मर्यामलकानां सकर्बुदारान् फलाम्लांश्च; २—न्यग्रोधशुङ्गकानां खडांस्तथा कोविदारपुष्पाणाम्—चरक० चि० अ० १४]

कचनारके फूल लाल होते हैं, [जामुनी रंग लिए होते हैं] इसीसे कविने कहा है कि—

कान्तिं कर्षति काञ्चनारकुसुमं माञ्जिष्टधौतात्पटात् ॥

मालतीमाधवमें भवभूतिने कचनारका उल्लेख किया है—

मकरन्दः—तदस्यैव तावदुच्छ्वसितकुसुमकेशरकषायशीतलामोद-वासितोद्यानस्य काञ्चनारपादपस्य अधस्तादुपविशावः ॥१।२४।

राजशेखरने भी कचनारका उल्लेख किया है—

पुष्पैः सम्प्रति काञ्चनारतरवः प्रत्यङ्गमालिङ्गिताः
वाह्लीकीदशनव्रणारुणतरैः पत्रैरशोकोऽर्चितः।
जातः चम्पकमप्युदीच्य ललनालावण्यचौर्यक्षमं
माञ्जिष्टैः मुकुलैश्च पाटलतरोरन्यैव काचिल्लिपिः ॥

१६–किंशुक

किंशुकको सामान्यतः पलाश या ढाकके नामसे पहिचानते हैं। देहातमें मूत्रका अवरोध होने पर इसके फूलोंको पानीमें पकाकर पेडू पर नाभिके नीचे बाँधते हैं। पलाशका उपयोग आयुर्वेदमें क्षारके रूपमें तथा बीजोंका उपयोग कृमिघ्न रूपमें प्रायः होता है। काव्योंमें इसकी सुन्दरताके लिए भी इसका वर्णन मिलता है। माघका यह श्लोक प्रसिद्ध है—

नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम्।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत् स सुरभिं सुरभिं सुमनोहरैः ॥६।२।

पलाश पुष्पमें मधु भरा रहता है, भ्रमर उसको पीता है, इसीको कविने कहा है—

पलाशकुसुमभ्रान्त्या शुकतुण्डे पतत्यलिः ।
सोऽपि जम्बूफलभ्रान्त्या तमलिं धर्त्तुमिच्छति ॥

टेसू जब फूलते हैं, तब ऐसा लगता है कि चारों ओर आग लगी हुई है। इस समय इसके पत्ते झड़ जाते हैं।

आदीप्तानिव वैदेहि सर्वतः पुष्पितान्नगान्।
स्वैः पुष्पैः किंशुकान्पश्य मालिनः शिशिरात्यये ॥

—रामायण २।५६-६।

गिरिप्रस्थास्तु सौमित्रे सर्वतः सम्प्रपुष्पितैः ।
निष्पत्रैः सर्वतो रम्यैः प्रदीप्ता इव किंशुकैः ॥ ४।१-७५।
महावनानीव च किंशुकानां ततान वह्निः पवनानुवृत्त्या ॥

—किराता० १६।५२।

कादम्बरीमें टेसूकी उपमा रक्तसे दी है, यथा—

दशरथसुतनिशितशरनिकरनिपातनिहितरजनीचरबलबहुलरुधिरसिक्तमूल-मद्यापि तद्रागविद्धनिर्गतपलाशमिवाभाति नवकिसलयमरण्यम् ।

—कादम्बरी।

२०—कुङ्कुम—केशर

आयुर्वेदमें केशरका उपयोग दो रूपोंमें मिलता है, एक स्तनादि अंगों पर लेप करनेमें और दूसरा रक्तस्तम्भनके लिए [**कुङ्कुमेनानुलिप्ताङ्गो गुरुणाऽगुरुणापि वा**—संग्रह; **शूले रक्तातिप्रवृत्तौ च लोध्रधातकीकुटजत्व-गिन्द्रयवकेसरनीलोत्पलकल्कसिद्धं सर्पिः—संग्रह अर्श चिकित्सा**]।

काव्योंमें केसरका उल्लेख स्तनों पर लेप करनेके लिए आता है। यथा—

मनोहरैः कुङ्कुमरागरक्तैः तुषारकुन्देन्दुनिभैश्च हारैः ।
विलासिनीनां स्तनशालिनीनां अलंक्रियन्ते स्तनमण्डलानि ॥

—ऋतु० ४।२।

प्रियङ्गुकालीयककुङ्कुमाक्तं स्तनेषु गौरेषु विलासिनीभिः ।
आलिप्यते चन्दनमङ्गनाभिः मदालसाभिः मृगनाभियुक्तम् ॥

गीतगोविन्दमें भी कहा है—

पद्मा पयोधरतटीपरिरम्भलग्न-
काश्मीरमुद्रितमुरो मधुसूदनस्य । १।१० ।

रघुके घोड़ोंके शरीर पर केसरकी रज चिपक गई थी। इसका उल्लेख भी कविने किया है—

विनीताध्वश्रमाः तस्य सिन्धुतीरविचेष्टनैः ।
दुधुवुर्वाजिनः स्कन्धाल्लग्नकुङ्कुमकेसरान् ॥

सम्भवतः प्राचीन कालमें केसर बहुत अधिक मात्रामें मिलती होगी और इसका लेप-उपयोग सामान्य रहा होगा। कवि राजशेखरने कुंकुमके लेपका कारण यह बताया है कि—

स्त्रियः प्रकृतिपित्तलाः कथितकुङ्कुमालेपनः
नितम्बफलकस्तनस्थलभुजोरुमूलादिभिः ।
इहाभिनवयौवनाः सकलरात्रिसंश्लेषितैः
हरन्ति शिशिरज्वरारतिमतीव पृथ्वीमपि ॥

भर्तृहरिका निम्न वचन केसरके लेपके लिए बहुत प्रसिद्ध है—

कुङ्कुमपङ्ककलङ्कितदेहा गौरपयोधरकम्पितहारा—शृंगार० ६ ।

२१—कुटज

आयुर्वेदमें कुटजका उपयोग रक्तस्तम्भन गुणके लिए तथा प्रवाहिकामें बहुत अधिक मिलता है। अर्श चिकित्सामें तो रक्तको बन्द करनेके लिए कुटजकी छाल अमोघ है।

कालिदासने कुटजके फूलोंसे ही मेघको अर्घ्य दिया था—

स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ॥ पूर्वमेघ. ३ ।

कुटजके फूल वर्षाऋतुमें खिलते हैं। इसीसे कालिदासने कहा है कि शरद् ऋतुमें कुटजकी श्री चली गई—

मुक्त्वा कदम्बकुटजार्जुनसर्जनीपान्
सप्तच्छदानुपगता कुसुमोद्गमश्रीः ॥ ऋतु० ३।१३ ।

रामायणमें भी वर्षाऋतुमें इसके पल्लवित होनेका उल्लेख है। यथा—

क्वचिद् बाष्पाभिसंरुद्धान्वर्षागमसमुत्सुकान् ।
कुटजान्पश्य सौमित्र पुष्पितान्गिरिसानुषु ॥ ४।२१।२४ ।
जलगर्भा महामेघा कुटजार्जुनगन्धिनः । ४।३०।२५ ।
उन्मीलन् कुटजप्रहासिषु गिरेरालम्ब्य सानूनतः
प्राग्भारेषु शिखण्डिताण्डवविधौ मेघैः वितानाय्यते ॥
—मा. मा. ९।१५ ।

कुटजके फूल श्वेत होते हैं। यथा कादम्बरीमें—"**कुटजकुन्दसिन्धुवारकुसुमच्छविभिरिवोल्लसिताम्**—पूर्वभाग; **कुसुमधवलैः कुटजैरपि रागपरवशोऽक्रियत**—उत्तरभाग ।

२२—कुरबक

कुरबकके संस्कृत नाम कुरण्टक, वाण और आर्त्तगल हैं, गुजरातीमें इसे कांटासरैया कहते हैं। इसके फूल लाल, नीले और पीले होते हैं। आयुर्वेदमें इसका उपयोग अश्मरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ् और वातरोगमें हुआ है। [सुश्रुत, सूत्र, अ. ३८।१२]

कुरबककी सुन्दरताने ही कवियोंको अपनी ओर खींचा है। वैसे तो इसमें काँटे रहते हैं, केवल फूल ही सुन्दर हैं—सम्भवतः इसकी सुन्दरताके लिए ही कामसूत्रमें इसकी माला शय्यागृहमें रखनेको कहा है। यथा—

नागदन्तावसक्ता वीणा, चित्रफलकं वर्त्तिकासमुद्गकौ, यः कश्चित्पुस्तकः कुरण्टमालाश्च ।—कामसूत्र. ४।१० ।

कुरण्टमालाश्चेति । तासां शोभामात्रफलानां सुरतसंमर्दनाप्यम्लायमानत्वात्, तद्धारणे च सौभाग्यश्रुतेः विशेषाभिधानम्—जयमंगलाटीका ।

कालिदासने भी इसकी शोभाका उल्लेख किया है—

कान्तामुखद्युतिजुषामपि चोद्गतानां शोभां परां कुरबकद्रुममञ्जरीणाम् ।
दृष्ट्वा प्रिये सहृदयस्य भवेन्न कस्य कन्दर्पबाणपतनव्यथितं हि चेतः॥
—ऋतु० ६।१९ ।

कुरबकके फूलको स्त्रियां जूड़ेमें लगाती थीं—"**नवकुरबकपूर्णः केशपाशो मनोज्ञः**—ऋतु० ६ । मेघदूतमें यक्षकी पत्नीके वर्णनमें १—**चूडापाशे नव कुरबकं चारु कर्णे शिरीषम्**' । २—**प्रत्यासन्ने कुरबकवृतेर्माधवीमण्डपस्य** । कुरबककी बाढ़ भी बनती थी, क्योंकि इसमें काँटा है ।

जिस प्रकार अशोकमें दोहद स्त्रीके पादके आघातसे होता है, उसी प्रकार कुरबकमें दोहद स्त्रीके आलिंगनसे होता है । कुरबक चैत्रमें फूलता है, जैसा कविने कहा है—

नालिङ्गितः कुरबकस्तिलको न दृष्टो
नो ताडितश्च चरणैः सुदृशामशोकः ।
सिक्तो न वक्त्रमधुना बकुलश्च चैत्रे
चित्रं तथापि भवति प्रसवावकीर्णः ॥ राजशेखर ।

२३—कुश

आयुर्वेदमें कुश और दर्भ दो वस्तुएँ आती हैं । सामान्यतः कुशा और दर्भको एक माना जाता है, परन्तु कुशा छोटी रहती है, और दर्भ बड़ी होती है । दर्भको बिजनौर जिलेमें चण्डीकी तरफ़-नजीबाबादके प्रदेशमें भाभड़के नामसे पहिचानते हैं, इससे काग़ज़ बनता है । आयुर्वेदमें पंचतृणमूलके अन्दर दोनोंका उपयोग होता है । कुशासे कुशावलेह नामक योग बनाया जाता है । इसका मुख्य उपयोग मूत्रमार्गकी जलनमें या मूत्रमार्गसे पूय आनेमें होता है—

[प्रमेहान् विंशतिं हन्ति मूत्राघातांस्तथाऽश्मरीन् । वातिकान् पैत्तिकांश्चापि श्लैष्मिकान् सान्निपातिकान् । हन्त्यरोचकमत्युग्रं बलपुष्टिकरं परम् ।।] कुशाग्रघृत भी इसीसे बनता है, कुशाग्र तैल भी प्रयोगमें आता है।

कुशा पानीमें या पानीके पासवाली जगहमें होती है। कुशाका नाम दर्भ और पवित्र भी है। महाभाष्यकार पतञ्जलिने पाणिनिके लिए कहा है कि—

"प्रमाणभूत आचार्यो दर्भपवित्रपाणिः शुचावकाशे प्राङ्मुख उपविश्य महता प्रयत्नेन सूत्रं प्रणयति स्म ।"

प्रमाण कोटिमें पहुँचे हुए आचार्यने कुशासे हाथ पवित्र करके पूर्वाभिमुख बैठकर बड़े प्रयत्नसे सूत्रोंका निर्माण किया। इससे स्पष्ट है कि कुशा या दर्भ पवित्र वस्तु है। इसीलिए ब्रह्मचारी रूपमें शिव भी पार्वतीसे पूछते हैं कि—

अपि क्रियार्थं सुलभं समित्कुशं जलान्यपि स्नानविधिक्षमाणि ते ।
अपि स्वशक्त्या तपसि प्रवर्त्तसे शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ॥

—कुमार० ५।

कुशाकी धार-किनारी बहुत तेज होती है, इसलिए इसका कटाव बहुत तेज होता है। चाणक्यके पैरमें भी इसी कुशासे क्षत हो गया था, जिससे वे कुशा उखाड़कर उनमें छाछ डालते थे। इसी कुशासे हरिणके मुखमें क्षत हो गये, जिसपर शकुन्तला इंगुदीका तैल लगाती है—

यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां
तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे ।

—शाकुन्तल ४।१४।

हरिण कुशाको खाते हैं [**उद्गलितदर्भकवलाः मृग्यः—शाकुन्तल ४।१२**]; इस कुशासे मुखका कटना स्वाभाविक है। इसी प्रकार पैरों पर भी इससे क्षत हो जाते हैं—

दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे
तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा ॥

—शाकुन्तल २।१२ ।

जल्हणने कुश और दर्भमें भेद यह बताया है कि—"**कुशा ह्रस्वदर्भः । कासः चामरपुष्पः । दर्भः पृथुलखरपत्रः दीर्घः ।**" कुशाका पत्ता छोटा रहता है, दर्भका पत्ता लम्बा, मोटा और खर होता है, यही भाभड़ घास है; जिस घासके कारण ही नैनीतालकी तराई, नजीबाबादके पासमें चण्डीके आसपासका पहाड़ भाभड़का प्रदेश कहलाता है। अमरकोषमें कुश और दर्भको एक माना है—

किरातार्जुनीयमें भी दर्भशय्या तथा कुशा पर चलनेका उल्लेख आता है। यथा—

पुराधिरूढः शयनं महाधनः विबोध्यसे यः स्तुतिगीतमङ्गलैः ।
अदभ्रदर्भामधिशय्य स स्थलीं जहासि निद्रामशिवैः शिवारुतैः ॥

१।३८ ।

अनारतं यौ मणिपीठशायिनावरञ्जयद् राजशिरःस्रजां रजः ।
निषीदतस्तौ चरणौ वनेषु ते मृगद्विजालूनशिखेषु बर्हिषाम् ॥

—किरात० १।४० ।

दमयन्ती और नलके पाणिग्रहणमें विदर्भके राजा भीमने अपनी पुत्री और अपने जामाताके हाथ कुशासे बाँधे—

वरस्य पाणिः परघातकौतुकी वधूकरः पङ्कजकान्तितस्करः ।
सुराज्ञि तौ तत्र विदर्भमण्डले ततो निबद्धौ किमु कर्कशैः कुशैः ॥

—नैषध० १६।१४ ।

कुशा या दर्भसे दमयन्तीको शिवकी पूजा करनेका उपदेश दिया गया है—

वैदर्भि दर्भदलपूजनयापि यस्य गर्भे जनः पुनरुदेति न जातु मातुः ।
तस्यार्चनां रचय तत्र मृगाङ्कमौलेः तन्मात्रदैवतजनाभिजनः स देशः ॥
११।५१ ।

आगे श्रीहर्षने सुन्दर मालाको दर्भसे गूँथनेके लिए मना किया है—

संदर्भ्यते दर्भगुणेन मल्ली माला न मृद्वी भृशकर्कशेन ॥

दमयन्तीके कुशा पर सोनेका उल्लेख नलचम्पूमें आता है—

हरिचरणसरोजद्वन्द्वमाराधयन्ती
शुचि कुशशयनीये साथ निद्रां जगाम ।

२४—कुसुम्भ

कुसुम्भके फूलोंका उपयोग रंगके लिए होता है, इससे वस्त्र रंगे जाते हैं। आयुर्वेदमें कुसुम्भके तैलका नाम आता है, परन्तु यह तैल अहितकारी है; खानेके अयोग्य है। यथा—'**कुसुम्भस्नेहो स्थावरस्नेहानाम्**'—चरक० सूत्र० २५।३९ ।

परन्तु इसका फूल तो कुसुम्भ रंगका देखनेमें सुन्दर है। इसीसे कवि लोगोंकी आँखमें बैठ गया, उनको इसके तेलसे क्या मतलब। कुसुम्भ चैत्र-बैशाखमें खिलता है। इसीसे ग्रीष्म वर्णनमें कवि कहता है—

विकचनवकुसुम्भस्वच्छसिन्दूरभासा प्रबलपवनवेगोद्भूतवेगेन तूर्णम् ।
तटविटपलताग्रालिङ्गनव्याकुलेन दिशि दिशि परिदग्धा भूमयः पावकेन ॥

कुसुम्भके रंगसे रंगे कपड़ोंकी प्रशंसा भी कालिदासने की है—

कुसुम्भरागारुणितैर्दुकूलैः नितम्बबिम्बानि विलासिनीनाम् ।
—ऋतु० ३।५ ।

कादम्बरीमें भी इसके रंगसे रंगे हुए वस्त्रोंका उल्लेख है—**विरलकुसुम्भकुसुमरसरक्तदुकूलकोमलेन**—पूर्वभाग ।

२५—केसर—बकुल

बकुलका पर्य्याय केसर है—[**बकुलस्तु सीधुगन्धः······स्थिरकुसुमः केसरश्च शारदिकः**—राजनिघण्टु]।

कालिदासने भी बकुलके लिए केसर शब्दका प्रयोग किया है। **यथा—**

मालाः कदम्बवनकेसरकेतकीभिः आयोजिता शिरसि बिभ्रति योषितोऽद्य ॥

—ऋतु० २।२०।

बकुलका वृक्ष बहुत धीरे-धीरे बढ़ता है और चिरस्थायी होता है। इसीसे इसके फल भी पारिजात या हरसिंगारके फूलोंकी भाँति जल्दी नहीं झड़ते। इसीसे इसका नाम स्थिरकुसुम है। इसकी इस स्थिरता—टिकाऊपनको ही देखकर सम्भवतः रसिक कवि वैद्य लौलिम्बराजने कहा है—

एषः सुगन्धिमुकुलो बकुलो विभाति वृक्षाग्रणीः प्रियतमे मदनैकबन्धुः।
यस्य त्वचा च चिरचर्वितया नितान्तं दन्ता भवन्ति चपला अपि वज्रतुल्या ॥

बकुलकी शाखासे दातुन करना कठिन होता है, इसलिए इसकी छालको ही चबाना चाहिये। इसके सिवा व्रणोंको धोनेके लिए इसकी छालका क्वाथ उत्तम व्रण-शोधक है, मुखके रोगोंके लिए बकुलाद्य तैल बनता है।

बकुलमें दोहद स्त्री मुखकी मदिरासे होता है—

मुखमदिरया पादन्यासैः विलासविलोकितैः।
बकुलविटपीरक्ताशोकस्तथा तिलकद्रुमः ॥

मेघदूतमें भी कालिदासने इसका उल्लेख किया है। यथा—

रक्ताशोकश्चलकिसलयः केसरश्चात्र कान्तः
प्रत्यासन्नौ कुरबकवृतेर्माधवीमण्डपस्य।
एकः सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी,
काङ्क्षत्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छद्मनाऽस्याः ॥मेघदूत।

बकुलका उपयोग गलेके लिए भी होता है, इसीलिए तथा बकुलके फूल आसवमें पड़े रहनेसे आसवके पीने पर मुखसे बकुलकी गन्ध आती है—

तव निःश्वसितानुकारिभिर्बकुलैरर्धचितां समं मया।
असमाप्य विलासमेखलां किमिदं किन्नरकण्ठि सुप्यते ॥

स्त्रियोंने अपने पतियोंके साथ मद्यपान किया, स्त्रियोंके मद्यपान करनेसे उनमें विशेष लावण्य आ जाता है। इसीसे संग्रहमें कहा है कि मद्य पीकर स्त्रीको मद्य अवश्य पिलाये—

रहसि दयितामङ्के कृत्वा भुजान्तरपीडनात्
पुलकिततनुं जातस्वेदां सकम्पपयोधराम्।
यदि सरभसं सीधोर्वारं न पाययेत् कृती
किमनुभवति क्लेशप्रायं तदा गृहतन्त्रताम्॥ संग्रह।

इसलिए उनके मुखसे बकुलकी सुगन्ध आने लगी—

ललितविभ्रमबन्धविचक्षणं सुरभिगन्धपराजितकेसरम्।
पतिषु निर्विविशुर्मधुमङ्गनाः स्मरसखं रसखण्डनवर्जितम्॥
—रघु० ९।३६।

जयदेव कविने बकुलके लिए शब्दरचना भी सुन्दर दी है—

उन्मदमदनमनोरथपथिकवधूजनजनितविलापे।
अलिकुलसंकुलकुसुमसमूहनिराकुलबकुलकलापे॥

बकुलके फूलों पर भ्रमर मँडराते हैं—यह बात कालिदासने भी कही है—

सुवदना वदनासवसंभृतस्तदनुवादिगुणः कुसुमोद्गमः।
मधुकरैरकरोन्मधुलोलुपैर्बकुलमाकुलमायतपंक्तिभिः॥
—रघु० ९।३३।

भवभूतिने भी बकुलका उल्लेख किया है—

अतिमुक्तमद्ग्रथितकेसरावली सतताधिवाससुभगार्पितस्तनम्।
अपि कण्ठजाहविनिवेशिताननं प्रियया तदङ्गपरिवर्तमाप्नुयाम्॥
—मालती० ५।८।

मोतीकी मालाको छोड़कर जिसने मेरी गूंथी बकुलमालाको धारण किया है और सतत अधिवाससे जिसके स्तन सुवासित बने हैं, अपनी ऐसी प्रियाके

कर्णमूलके पास अपना मुख रखकर मैं उसके अंगके परिवर्त्तनको कब प्राप्त करूँगा।

त्वदर्थमिव विन्यस्तः शिलापट्टोऽयमग्रतः।
यस्यायमभितः पुष्पैः प्रवृष्ट इव केसरः॥ मा० ९।३६।

मौलसरीके वृक्षके ऊपरसे फूल चारों तरफ बिखरे पड़े हैं, इसी मौलसरीके आगे तुम्हारे बैठनेके लिए ही यह शिलापट्ट बिछाया गया है; उसीपर तुम बैठो।

जितमिह भुवने त्वया यदस्याः सखि बकुलावलिवल्लभासि जाता।
परिणतबिसकाण्डपाण्डुमुग्धस्तनपरिणाहविलासवैजयन्ती॥

माल. ३।१५.

हे सखी बकुलावली--बकुल पुष्पोंकी माला, वास्तवमें तुम ही इस भुवनमें विजयी हो। तुमको ही मेरी सखीका प्रियपात्र बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। परिणत बिसकाण्ड जैसे श्वेत और सुन्दर स्तनोंके विस्तार विलासकी तू ही अकेली वैजयन्ती है।

रतिपतिप्रहितेव कृतक्रुधः प्रियतमेषु वधूरनुनायिका।
बकुलपुष्परसासवपेशलध्वनिरगान्निरगान्मधुपावलिः॥

अपने प्रियतमोंके ऊपर कुपित बनी स्त्रियोंका क्रोध भ्रमरोंके इस गुंजन ध्वनिसे उत्पन्न कामके कारण जाता रहा। इन कुपित हुई स्त्रियोंके मनाने के लिए ही मानों कामदेवने भ्रमरावली रूप दूतियोंको भेजा है।

२६—खदिर

खदिरसे कत्था बनता है। यह वृक्ष बहुत ही कड़ा वृक्ष है। आयुर्वेदमें खदिरका उपयोग बहुत है, विशेषतः मुखरोगमें और कुष्ठरोगमें। [देखिये—क्लिनिकल मैडिसिन-पृष्ठ ११८३, संग्रहमें कुष्ठ चिकित्सा] खदिरादि वटी, खदिरादि घृत और खदिरारिष्ट इसके मुख्य योग हैं। रामायणमें इसका

उल्लेख [३।१५-१८] आया है। संस्कृत काव्योंमें शिशुपालवधमें माघ कविने भी इसका उल्लेख किया है--

पयसि सलिलराशेर्नक्तमन्तर्निमग्नः स्फुटमनिशमतापि ज्वालया वाडवाग्नेः।
यदयमिदमिदानीमङ्गमुद्यन्दधाति ज्वलितखदिरकाष्ठाङ्गारगौरं विवस्वान् ॥
—शिशुपाल० ११।४५।

सूर्य रातके समय समुद्रमें डूब गया। समुद्रमें रहनेवाली वाड़वाग्निकी ज्वालाओंसे रात भर ख़ूब तपाया गया, जिससे यह सूर्य प्रातःकालमें खैरके लाल अंगारोंके समान सुर्खी धारण करके निकल रहा है।

खैरकी लकड़ीकी आँच बहुत तेज होती है। इसीसे जेन्ताक आदि स्वेद देनेके लिए गृहको या शिलाको इसीकी लकड़ीसे गरम किया जाता है [चरक० सू० अ० १४]।

२७—गुग्गुलु

गुग्गुलु एक गोंद है, परन्तु इसका उपयोग वातरोगोंमें होनेके साथ-साथ धूपन कार्यमें होता है। धूपन कार्य जर्मस्—जीवाणुओंके नाशके लिए होता है। रोगीके व्रणोंको धूप देनेके सिवाय इससे बच्चेके वस्त्रोंको भी धुआँ दिया जाता है [चरक० शा० अ० ८।६५, व्रणधूपनमें गुग्गुलु—सुश्रुत सूत्र. ५।१८]।

कादम्बरीमें इसी धूपके लिए गुग्गुलुका उपयोग आता है। यथा—**अनवरतदह्यमानगुग्गुलुबहुलधूपान्धकारितेषु चण्डिकागृहेषु**"—[कादम्बरी पूर्व] २—**अनवरतगलद्गुग्गुलुद्रुमद्रवार्द्रीकृतदृषदः** [कादम्बरी. पूर्व] गुग्गुलुके वृक्षोंमें से निरन्तर झरते हुए रसके कारण नीचेके पत्थर भी गुग्गुलुके द्रव वाले हो गये। चण्डिकामन्दिरमें निरन्तर गुग्गुलुका धूप दिया जाता था। गुग्गुलुसे नीले रंगका धूम निकल रहा था। [**सम्पिण्डित-नीलगुग्गुलुधूपधूमारुणीकृताभिः**—कादम्बरी. पूर्व]।

२८—चन्दन

सामान्यतः चन्दन शब्दसे श्वेत चन्दनका और लालचन्दनका चिकित्सामें व्यवहार मिलता है। इसके लिए परिभाषा बना दी गई कि जहाँपर चन्दनका अन्तःप्रयोग हो वहाँ पर लालचन्दन लेना चाहिए और जहाँपर बाह्य प्रयोग हो वहाँ पर श्वेत चन्दन लेना चाहिए। परन्तु इस नियमका बहुत स्थानों पर अपवाद है; श्वेत चन्दनके बुरादेसे चन्दनका शर्बत बहुत सुन्दर बनता है। श्वेत चन्दनसे ही तैल निकलता है, तेलयुक्त तथा भारवाला चन्दन उत्तम है। सामान्यतः चन्दनका लेप दाह, ज्वरकी जलन, ग्रीष्मके संतापको कम करता है। परन्तु इसी चन्दनका घट्ट लेप दाह, उष्णिमा उत्पन्न करता है, इसीलिए चन्दनका पतला लेप ग्रीष्म ऋतुमें करना चाहिये [चरक. चि. अ. ३०।३२४]। ग्रीष्म ऋतुमें अंगों पर चन्दनका लेप करना चाहिए। **[भजेच्चन्दनदिग्धाङ्गः प्रवाते हर्म्यमस्ते—चरक. सू. अ. ६।३०]**।

लेपके सिवा मूत्रकृच्छ्र रोगमें भी चन्दनके तेलका व्यवहार होता है। चन्दनसे भद्रश्री, हरिचन्दन, कुचन्दन, कालानुसारी आदिका भी सामान्यतः ग्रहण होता है। संस्कृतमें चन्दन इसी एक शब्दसे शेष सब चन्दनोंका ग्रहण हो जाता है। चन्दनके पेड़ दक्षिण दिशामें ही होते हैं; रघुकी जययात्राके समय भी वहाँ पर चन्दनके वृक्ष थे। चन्दनके वृक्षों पर साँप रहनेकी कवि-प्रसिद्धि है [वास्तवमें ऐसी कोई बात नहीं है] कालिदासने इसीका उल्लेख किया है। यथा—

भोगिवेष्टनमार्गेषु चन्दनानां समर्पितम्।
नास्रसत्करिणां ग्रैवं त्रिपदीच्छेदिनामपि ॥रघु० ४।४८।

ग्रीष्म ऋतुके वर्णनमें कालिदासने चन्दनका स्तनों पर लेप करनेका उल्लेख कई स्थानों पर किया है। यथा—

पयोधराश्चन्दनपङ्कचर्चितास्तुषारगौरार्पितहारशेखराः ।
नितम्बदेशाश्च सहारमेखलाः प्रकुर्वते कस्य मनो न सोत्सुकम् ॥

—ऋतु० १।६ ।

नितम्बबिम्बैः सदुकूलमेखलैः स्तनैः सहाराभरणैः सचन्दनैः ।
शिरोरुहैः स्नानकषायवासितैः स्त्रियो निदाघं शमयन्ति कामिनाम् ॥

—ऋतु० १ ।

तं पयोधरनिषिक्तचन्दनैर्मौक्तिकग्रथितचारुभूषणैः ।
ग्रीष्मवेषविधिभिः सिषेविरे श्रोणिलम्बिमणिमेखलैः प्रियाः ॥

—रघु० १६।४५ ।

चन्दनके साथ कालिदास तथा दूसरे कवियोंने काला अगुरुको भी लिया है। इसका भी चन्दनके साथ मिलाकर लेप करनेका उल्लेख किया गया है; परन्तु आयुर्वेदकी दृष्टिसे काला अगुरु गरम होता है। इसका लेप शीतनाशके लिए होता है [यथा- ज्वर चिकित्सामें- शीतनाशके लिए अगुर्व्वादि तैल; २—**शीतकृच्चान्यथाऽगुरोः—चरक. चि. अ. ३०।२२५**]। अगुरुका पतला लेप भी शरीरमें शीतलता उत्पन्न करता है। सामान्यतः काला अगुरु और चन्दन इन दोनोंका मिश्रित लेप साधारण ऋतुओंमें—वसन्त, प्रावृट् और शरद्में किया जाता है। यथा, वसन्तचर्यामें—

चन्दनागुरुदिग्धाङ्गो यवगोधूमभोजनः—चरक. सू. अ. ६।१५ ।

वर्षाऋतुमें—

कालागुरुप्रचुरचन्दनचर्चिताङ्ग्यः पुष्पावतंससुरभीकृतकेशपाशाः ।
श्रुत्वा ध्वनिं जलमुचां त्वरितं प्रदोषे शय्यागृहं गुरु गृहात्प्रविशन्ति नार्यः ॥

—ऋतु० २।२१ ।

अगुरु चन्दनमें अधिक सुगन्ध और गरमी बढ़ानेके लिए कस्तूरीका भी मेल किया जाता था—

चन्दनेनाङ्गरागं च मृगनाभिसुगन्धिना ।
सभापथ्यं ततश्चक्रुः पत्रं विन्यस्तरोचनम् ॥

कस्तूरीके साथ मिलाये चन्दनरूपी अंगराग चर्चित अंगोंका वर्णन मिलता है। कालिदासने ऐसे लेपके लिए कलिन्दकन्या—यमुनाका स्मरण किया है। यह लेप जब नदीके जलमें घुलकर बहने लगा तो मानो ऐसा लगा कि मथुरामें रहनेवाली यमुना ही यहाँ आ गई—

यस्यावरोधस्तनचन्दनानां प्रक्षालनाद् वारिविहारकाले।
कलिन्दकन्या मथुरागतापि गङ्गोर्मिसंसक्तजलेव भाति ॥

—रघु० ६।४८।

त्रिविक्रम भट्टने भी कृष्ण अगुरुके लेपका उल्लेख किया है—

कृष्णागुरुचन्दनामोदबहुलकुचाभोगभूषणा— नलचम्पू।

उत्तररामचरितमें भवभूतिने कहा है—

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्त्तिर्नयनयो-
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहलश्चन्दनरसः ॥

—उत्तर० १।३८।

इसके दक्षिणदेशमें उत्पन्न होनेका उल्लेख करते हुए राजशेखरने कहा है—

आमूलयष्टेः फणिवेष्टितानां सचन्दनानां जननन्दनानाम्।
कक्कोलकैलामरिचैर्युतानां जातीतरूणां च स जन्मभूमिः ॥

—राजशेखर अ० १७।

कादम्बरीमें बाणने चन्दनको पहिले ही याद किया है—

विवृण्वतो यस्य विसारि वाङ्मयं दिने दिने शिष्यगणा नवा नवा।
उपस्सु लग्ना श्रवणेऽधिकां श्रियं प्रचक्रिरे चन्दनपल्लवा इव ॥

—कादम्बरी।

चन्दनके भेद—भद्रश्री [मलयज, गोशीर्ष] श्वेत चन्दन है। लाल चन्दन—कुचन्दन, कालीयक, वर्वरिक, हरिचन्दन। द्वारकाकी तरफ

गोपीचन्दन नामकी एक मिट्टी मिलती है। इसमें भी ठण्डक रहती है, इसीसे इसका चन्दन नाम प्रचलित हुआ है।

२६–जामुन–जम्बू

आयुर्वेदमें जम्बूमें कषाय रस रहनेसे संकोचक गुणके लिए या स्तम्भक गुणके लिए इसका व्यवहार होता है। इसके लिए जामुनके पत्तोंका या छालका उपयोग होता है। इसलिए छर्दि और अतिसारमें इसका उपयोग मिलता है। बहुमूत्र रोगमें इसकी गुठलियों का चूर्ण व्यवहार किया जाता है।

संस्कृत काव्योंमें तो इसकी सुन्दरताके लिए ही कवियोंने इसे स्मरण किया है—

फलभरपरिणाहश्यामजम्बूनिकुञ्ज-
स्खलनमुखरभूरिस्रोतसो निर्झरिण्यः ॥

—उत्तररामचरित।

त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः
संपत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः ॥

—मेघदूत पूर्व. मेघ।

वर्षाऋतुमें जब बादल आकाशमें झूमते हों, तब जामुनका वृक्ष अपनी काली रंगकी जामुनोंसे लदा पासमें झर झर करता हुआ कुछ समयके लिए मनको समाधि अवस्थामें पहुँचा देता है। ऐसा सुन्दर दृश्य कवि कैसे छोड़ता। इसीसे भारविने कहा—

व्यथितमपि भृशं मनो हरन्ती परिणतजम्बूफलोपभोगहृष्टा।
परभृतयुवतिः स्वनं वितेने नवनवयोजितकण्ठरागरम्यम् ॥ १०।११।

राहगीर—चलते व्यक्ति इसीको खाते हुए अपनी मुसाफिरीके श्रमको भूलकर अपना रास्ता पूरा कर लेते हैं। इसीसे कवि कहता है--

जम्बूलते सुकवितेव सुकोमलासि, पान्थप्रियासि रसिकेव मनोहरासि ॥

मनुष्य ही इनके फलोंका स्वाद लेते हों, यह बात नहीं, भ्रमर भी इनपर टूटते हैं।

अङ्गारचूर्णोत्करसंनिकाशैः फलैः सुपर्याप्तरसैः समृद्धैः।
जम्बूद्रुमाणां प्रविभान्ति शाखा निपीय माला इव षट्पदौघैः॥

—रामायण ४।२७।३०।

३०—जाती

जातीको जई कहते हैं। यह वस्तु मालती और चमेलीसे भिन्न है। अमरकोशमें सुमना, मालती और जाती ये तीनों पर्यायवाची बतलाये गये हैं, परन्तु वास्तवमें ये तीनों अलग वस्तुएँ हैं। सुमना—चमेली, मालतीको अंग्रेज़ीमें जस्माईनम्—कुन्द कहते हैं, जातीको जई या जुही कहते हैं। सामान्य रूपमें इन तीनोंमें कोई विशेष अन्तर नहीं गिना जाता। विशेष करके मालती-चमेली और जाती जूहीमें। इसीसे चरकमें **सुमनप्रवालाः** शब्दसे दोनोंके पत्ते लिये जाते हैं [देखिये द्रव्यगुणविज्ञान श्रीयादवजी त्रिक्रमजीका]। मालती वसन्तमें नहीं खिलती, जाती भी वर्षा या शरद् ऋतुमें ही पुष्पित होती है, इसीसे इनको एक माना होगा। वास्तवमें दोनोंके पत्तोंमें अन्तर रहता है, परन्तु प्रयोगमें दोनों समान हैं। यथा नेत्र रोगके अंजनमें—

स्थितं दशाहत्रयमेतदञ्जनं कृष्णोरगास्ये कुशसंप्रवेष्टिते।
तन्मालतीकोरकसैन्धवायुतं सदाऽञ्जनं स्यात्तिमिरेऽथ रागिणि॥

—सुश्रुत० ३९-१७।३६।

वदने कृष्णसर्पस्य निहितं मासमञ्जनम्।
ततस्तस्मात् समुद्धृत्य सुशुष्कं चूर्णयेद्बुधः॥
सुमनःकोरकैः शुष्कैरर्धांशैः सैन्धवेन च।
एतन्नेत्राञ्जनं कार्यं तिमिरघ्नमनुत्तमम्॥

—चरक० चि० अ० २६-२५६।२५७।

कर्षं च श्वेतमरिचाज्जातीपुष्पान्नवात् पलम् ।
चूर्णं क्षिप्त्वा कृतावर्त्तिः सर्वघ्नी दृक्प्रसादनी ॥

—चरक० चि० अ० २६।२४५ ।

इससे यह पता लगता है कि मालती, सुमन और जाती ये तीनों वस्तुएँ एक ही हैं या एक ही जातिकी हैं। श्रीबापालाल भाईने तीनोंको पृथक् माना है, जो वनस्पति शास्त्रकी दृष्टिसे ठीक ही है। संस्कृत काव्योंमें जाती और मालतीमें परस्पर विशेष भेद नहीं। दोनों ही शरद्में खिलती हैं—

जलसमयजायमानां जातिं या कार्दमीति निगदन्ति ।
सा शरदि महोत्सविनी गन्धान्वितषट्पदा भवति ॥

—काव्यमीमांसा अ० १८ ।

स्थूलावश्यायविन्दुद्युतिदलितबृहत्कोरकग्रन्थिभाजो
जात्या जालं लतानां जरठपरिमलप्लावितानां जजृम्भे ॥

—राजशेखर ।

अतिथिसेवाके विषयमें यूथिका—जूहीको सम्बोधन करके कवि कहता है—

यूथि यथोचितविधिना विधेयमातिथ्यमेतस्मिन् ।
मालतिकाप्राणेशः प्राघुणिकस्ते घुणाक्षरन्यायात् ॥

—सुभाषित ।

जाती वर्षामें खिलती है परन्तु वसन्तमें नहीं खिलती, जैसा कादम्बरीमें **'मधुमासकुसुमसमृद्धिमिव विजातिम्'**—[पूर्व भाग]। जातीको छोड़कर शेष वृक्ष—लताएं वसन्तमें पुष्पित होती हैं। मालती भी वसन्तमें नहीं खिलती—जैसा नलचम्पूमें **"विकसति न वसन्ते मालती कोऽत्र हेतुः"** इसलिए भी दोनोंको एक मानकर चिकित्सामें व्यवहार होता है।

आयुर्वेदमें वसन्तकुसुमाकर प्रसिद्ध औषध है। इसके निर्माणमें मालतीके फूलोंकी भावना दी जाती है [**शतपत्ररसेनैव मालत्याः कुसुमैस्तथा**]। व्रण चिकित्सामें जात्यादि तैल या घृतका प्रयोग होता है।

३१—ताम्बूल

ताम्बूल एक सम्मानकी वस्तु है। भगवान्से लेकर अतिथिके सत्कार तक इसका गौरव है। श्रीहर्ष कविने तो इस पत्तेको बड़े गौरव—आदरकी वस्तु माना है [**ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्।**] राजपूत कालमें पानका बीड़ा ही लड़ाईका नेता चुनवाता था। इतने महत्त्वकी वस्तुका इस देशमें इस बहानेसे उपयोग न करना कि इससे दाँत खराब होते हैं, केवल दूषित मनोवृत्ति तथा अपने अज्ञानका ही परिचय देना है। चरकमें तो पानका खाना दिनचर्याका अङ्ग बताया है। यथा—

धार्याण्यास्येन वैशद्यरुचिसौगन्ध्यमिच्छता।
जातीकटुकपूगानां लवङ्गस्य फलानि च॥
कक्कोलस्य फलं पत्रं ताम्बूलस्य शुभं तथा।
तथा कर्पूरनिर्यासः सूक्ष्मैलायाः फलानि च॥

—चरक० सू० अ० ५।७६-७७।

पानसे मुखमें सुगन्ध रहती है। इसीसे दूसरे व्यक्तिके सम्पर्कमें आनेके लिए, जिससे मुखकी दुर्गन्ध बुरी न लगे या मुखसे दुर्गन्ध न आये, पान खानेका विधान है। इसी दृष्टिसे कामसूत्रमें पानकी पिटारीका उल्लेख मिलता है—

तत्र रात्रिविशेषमनुलेपनं माल्यं सिक्थकरण्डकं सौगन्धिकपुटिका, मातुलुङ्गत्वचस्ताम्बूलानि च स्युः। कामसूत्र।

आजकल जो लोग पान नहीं खाते या जिन देशोंमें पान खानेकी प्रथा नहीं; वे सुवासित टूथपेस्टका प्रयोग करते हैं, अथवा सिगारके धूम्रसे मुखकी दुर्गन्धको कम करते हैं। प्राचीनकालमें ताम्बूल—पानका व्यवहार इसी अर्थमें मिलता है, यथा—

गृहीतताम्बूलविलेपनस्रजः सुखासवामोदितवक्त्रपङ्कजाः।
प्रकामकालागुरुधूपबासितं विशन्ति शय्यागृहमुत्सुकाः स्त्रियः॥

—ऋतु० ५।५।

कालिदासने ताम्बूलका उल्लेख दक्षिण दिशा तथा वंग-कलिंगमें किया है, परन्तु पञ्जाब, काश्मीर तथा राजपूतानेको छोड़कर प्रायः सर्वत्र यह वस्तु मिलती है। मुख्यतः आनूप देशोंमें इसकी उत्पत्ति प्रचुर परिमाणमें है, यथा—

ताम्बूलवल्लीपरिणद्धपूगास्वेलालतालिङ्गितचन्दनासु ।
तमालपत्रास्तरणासु रन्तुं प्रसीद शश्वन्मलयस्थलीषु ॥

—रघु० ६।६४।

ताम्बूलानां दलैस्तत्र रचितापानभूमयः ।
नारिकेलासवं योधाः शात्रवं च पपुर्यशः ॥

—रघु० ४।४२।

ताम्बूलका पत्ता पकने पर थोड़ा सा श्वेत वर्ण या पाण्डु वर्णका हो जाता है। इसको भवभूतिने बहुत बारीकीसे पहिचाना—

गाढोत्कण्ठकठोरकेरलवधूगण्डावपाण्डुच्छदैः ।
ताम्बूलीपटलैः पिनद्धफलिनव्यानम्रपूगद्रुमाः ॥

—मा० मा० ६।१९।

स्त्रियाँ भी पानको चावसे खाती हैं—

इमाः सविलासकवलितताम्बूलवीटिकापूरितकपोलमण्डलाभोगव्यतिकर-स्खलितमधुरमङ्गलोद्गीतबद्धकोलाहलैः—मालतीमाधव ६।

मुखमें पानकी गिलौरी भरी रहनेसे मधुर गानकी आवाज़में कहीं-कहीं व्यतिकर—चूक हो जाती है। पानमें कत्था-चूना रखकर खानेका रिवाज था, जिससे ओठों पर लाली आती थी। यथा—"**ताम्बूलताम्रमवलम्ब्य तवाधरोष्ठम्**—नैषध २२।१३८। खाली पान खानेसे ओठों पर लाली नहीं आती। पानके साथ सुपारीको मुखमें लेकर जो सोते हैं, भर्तृहरिने उनको बहुत धन्य कहा है—**ताम्बूलीदलपूगपूरितमुखा धन्याः सुखं शेरते ॥**

३२–तिल

तिल प्रसिद्ध वस्तु है। तिलका अन्तः उपयोग अर्शमें मक्खनके साथ होता है, व्रणोंमें आलेपनके लिए उत्तम है। तिल मूत्रके बार-बार आनेको कम करता है। संस्कृत काव्योंमें तिलको इतना महत्त्व नहीं मिला जितना तिलपुष्पको। सुन्दर नाककी उपमाके लिए तिलपुष्पको चुना गया है। यथा—

भ्रूश्चित्रलेखा च तिलोत्तमास्या नासा च रम्भा च यदूरुसृष्टिः।
दृष्टा ततः पूरयतीयमेकानेकाप्सरःप्रेक्षणकौतुकानि॥

—नैषध० ७।९२।

दमयन्तीकी भ्रू चित्रलेखा अप्सराके समान या चित्रमें चित्रित वस्तुकी भाँति थी, नाक तिलोत्तमा अप्सराकी भाँति या तिलपुष्पके समान उत्तम थी और उसकी ऊरु रम्भा अप्सराके समान सुन्दर थी या केलेके समान मनोहर थी।

नासा तदीया तिलपुष्पतूणं जगत्त्रयन्यस्तशरत्रयस्य।
श्वासानिलामोदभरानुमेयां दधाद् द्विवाणीं कुसुमायुधस्य॥ ७।३६।

कामदेव पाँच बाणवाले हैं। उन्होंने तीनों लोकोंको जीतनेके लिए अपने तीन बाण छोड़ दिये, शेष दो बाण दमयन्तीकी तूणीर जैसी नाकमें रख दिये। ये दोनों बाण दमयन्तीकी प्रश्वास वायुसे सुगन्धित होनेपर अनुमान-द्वारा ही जाने जाते हैं।

अस्मिन्वपुष्मति न विस्मयसे गुणाब्धौ
रक्ता तिलप्रसवनासिकि नासि किं वा॥ —नैषध० ११।६७।

हे तिलपुष्पके समान नासिकावाली दमयन्ती! तू इस गुणोंके समुद्र सुन्दर शरीरवाले शरीरमें अनुरक्त क्यों नहीं होती।

राजमार्गमें भीड़ इतनी जमा थी कि यदि ऊपरसे तिल गिराये जायें तो वे भूमि पर नहीं गिरते—

तलं यथेयुर्न तिला विकीर्णाः सैन्यैस्तथा राजपथा बभूवुः॥ १०।९।

३३—तिलक

तिलकके पर्यायोंमें मुखमण्डक शब्द आता है। इसीसे काव्योंमें इसका अर्थ लोध्र किया जाता है, परन्तु आयुर्वेदके निघण्टुमें तिलकका पर्याय लोध्र स्पष्ट रूपमें नहीं मिलता। तिलकका वृक्ष जरूर सुन्दर होता है। तभी रामायणमें तथा कालिदास और अश्वघोषने उसका उल्लेख अनेक बार किया है। सीताको तिलक बहुत प्रिय था, इसीसे उसके लिए कविने तिलक-प्रिया सम्बोधन किया है—

भ्रमरैरुपगीतश्च यथा द्रुमवरो ह्यसि।
एष व्यक्तं विजानाति तिलकस्तिलकप्रियाम्॥ —रामा० ३।६०–१६।

तिलकका वृक्ष बड़ा होना चाहिये। इसपर भ्रमर मँडराते हैं—

विक्षिप्तां पवनेनैतामसौ तिलकमञ्जरीम्।
षट्पदः सहसाभ्येति मदोद्धूतामिव प्रियाम्॥ —रामा० ४–१।५८।

तिलक जरूर सुन्दर वृक्ष है। इसीसे बुद्धके लिए स्त्रियाँ तिलक वृक्षको आमसे आलिंगन करता हुआ कहती हैं; मानो कोई श्वेतवस्त्रधारी पुरुष पीत अंग रागवाली स्त्रीसे आलिंगन कर रहा हो—

चूतयष्ट्या समाश्लिष्टो दृश्यतां तिलकद्रुमः।
शुक्लवासा इव नरः स्त्रिया पीताङ्गरागया॥ बुद्धचरित।

इससे इतना स्पष्ट है कि तिलकका वृक्ष श्वेत होता है। इसीसे इसका चूर्ण मुखों पर लगाया जाता है। सामान्यतः लोध्रकी छालका चूर्ण मुख-सौन्दर्यके लिए प्रयोग होता है। तिल्वकका पर्याय लोध्र है। [**तिल्वकस्तु-मतो लोध्रो**—चरक० सू० अ० ४।३]। तिल्वककी छाल विरेचन गुणके लिए चरक और सुश्रुतमें बतलाई गई है। इसीसे कुछ व्यक्ति तिलक, तिल्वक और लोध्र ये तीनोंको एक मानते हैं। परन्तु लोध्र विरेचक नहीं, स्तम्भक है। इसीसे प्रमेह या सोम रोगमें लोध्रासवका उपयोग होता है। व्रणके स्रावों-

को कम करनेके लिए भी लोध्रकी छालके कषायको काममें लाया जाता है; इसलिए लोध्र स्तम्भक माना जाता है। वास्तवमें तिलक और तिल्वक दोनों वृक्ष आज अनिर्णीत कोटिमें हैं। परन्तु तिलकका वृक्ष सुन्दर होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। तभी तो कालिदासने कहा है—

अलिभिरञ्जनबिन्दुमनोहरैः कुसुमपंक्तिनिपातिभिरङ्कितः।
न खलु शोभयति स्म वनस्थलीं न तिलकस्तिलकः प्रमदामिव ॥—रघु० ९।४१

जिस प्रकार तिलकके विना स्त्री शोभित नहीं होती। स्त्रीकी शोभा तिलकसे है। उसी प्रकार वनस्थलीकी शोभा भी तिलक वृक्षसे ही है; क्योंकि इस वृक्षकी कुसुम-पंक्तियों पर बैठनेके लिए भ्रमर नीचे उतरते थे। इससे ये काजलके बिन्दुओंकी भाँति लगते थे।

आक्रान्ता तिलकक्रियापि तिलकैर्लग्नद्विरेफाञ्जनैः
सावज्ञेव मुखप्रसाधनविधौ श्रीर्माधवी योषिताम् ॥

—मालवि० ३।५।

स्त्रियाँ मुखके सौन्दर्यके लिए मुख-प्रसाधन विधिका सहारा लेती हैं, परन्तु वसन्तकी शोभा मानो मुखप्रसाधनविधिका तिरस्कार कर रही हो; ऐसी सुन्दर लगती थी। तिलकके फूलों पर भ्रमर बैठे हों तो वे ऐसे मालूम पड़ते हैं, मानों प्रमदाओंके तिलक पर कज्जल बिन्दुके छींटे हों।

वसन्तके वर्णनमें कालिदास कहते हैं—

लग्नद्विरेफाञ्जनभक्तिचित्रमुखे मधुश्रीतिलकं प्रकाश्य।
रागेण बालारुणकोमलेन चूतप्रवालोष्ठमलंचकार ॥

—कुमारसम्भव।

वसन्तकी शोभा तिलक वृक्षके फूलों पर बैठे भ्रमरोंके कारण स्त्रियोंके काजलकी भाँति शोभित हो रही थी।

अश्वघोषने इसका उल्लेख दूसरे रूपमें किया है—

पुष्पावनद्धे तिलकद्रुमस्य दृष्ट्वान्यपुष्टां शिखरे निविष्टाम्।
संकल्पयामास शिखां प्रियायाः शुक्लांशुकेऽट्टालमपाश्रितायाः ॥

—सौन्दर० ७।७।

तिलकके विषयमें कवि-प्रसिद्धि है कि तिलकमें दोहद स्त्रियोंकी कटाक्ष पूर्ण दृष्टिसे होता है—

(१) नालिङ्गितः कुरबकः तिलको न दृष्टो
………चित्रं तथापि भवति प्रसवावकीर्णः ॥

(२) मुखमदिरया पादन्यासैः विलासिविलोकितैः ।
बकुलविटपी रक्ताशोकस्तथा तिलकद्रुमः ॥

—काव्यमीमांसा ।

ऐसा यह तिलक वृक्ष आज अनिर्णीत है, ऐसी मेरी मान्यता है।

३४—देवदारु

देवदारु बहुत प्रसिद्ध वृक्ष है। इसका उपयोग चिकित्सामें अन्तः और बाह्य दोनों रूपोंमें मिलता है। लकड़ीकी दृष्टिसे इसका महत्त्व यह है कि इसकी लकड़ीमें दीमक नहीं लगता। इस वृक्षका महत्त्व इसीसे स्पष्ट है कि महादेवजीने इस वृक्षकी रक्षा अपने पुत्रके समान की थी। पार्वतीने स्तनरूपी स्वर्णके घड़ोंसे इसका सिंचन किया था—

अमुं पुरः पश्यसि देवदारुं पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन ।
यो हेमकुम्भस्तननिःसृतानां स्कन्दस्य मातुः पयसां रसज्ञः ॥

—रघु० २।३६ ।

भवानपीदं परवानवैति महान् हि यत्नस्तव देवदारौ ॥रघु० ।

रघुकी दिग्विजयके प्रकरणमें कविने कहा है—

तस्योत्सृष्टनिवासेषु कण्ठरज्जुक्षतत्वचः ।
गजवर्ष्म किरातेभ्यः शशंसुर्देवदारवः ॥ —रघु० ४।७६ ।

रघुके चले जाने पर हाथियोंकी कण्ठरज्जुके द्वारा देवदारु वृक्षोंकी त्वचा छिल जानेसे किरातोंने रघुके हाथियोंकी ऊँचाईका अनुमान किया।

कैलाश या हिमालयका वर्णन हो, उसमें कालिदास देवदारुका उल्लेख न करें : यह असम्भव है। देखिये—

भागीरथीनिर्झरसीकराणां वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः ।
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्हः ॥

—कुमार० १।१५।

स देवदारुद्रुमवेदिकायां शार्दूलचर्मव्यवधानवत्याम् ।
आसीनमासन्नशरीरपातस्त्रियम्बकं संयमिनं ददर्श ॥

—कुमार० ३।४४।

भित्वा सद्यः किसलयपुटान्देवदारुद्रुमाणां
ये तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः ।
आलिङ्ग्यन्ते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाताः
पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदङ्गमेभिस्तवेति ॥

—मेघदूत उत्तर० ।

कालिदासकी भाँति अश्वघोषने भी हिमालयमें देवदारुका उल्लेख किया है—

तौ देवदारूत्तमगन्धवन्तं नदीसरःप्रस्रवणौघवन्तम् ।
आजग्मतुः काञ्चनधातुमन्तं देवर्षिमन्तं हिमवन्तमाशु ॥

—सौन्द० १०।५।

नगान्नगस्योपरि देवदारूनायासयन्तः कपयो विचेरुः ।
तेभ्यो फलं नापुरतोऽपजग्मुः मोघप्रसादेभ्य इवेश्वरेभ्यः ॥

—सौन्द० १०।१४।

जिस प्रकार बन्दर पर्वतकी एक चोटीसे दूसरी चोटी पर छलांग मारते हैं, उसी प्रकार वे देवदारुके एक वृक्षसे दूसरे वृक्ष पर कूद रहे थे; परन्तु जिस प्रकार श्रीमन्तकी कृपाके विना अर्थी निष्फल लौटता है; उसी प्रकार ये बन्दर भी देवदारु वृक्षसे कोई फल प्राप्त नहीं कर सके। इनका कूदना व्यर्थ हुआ।

३५–नागवृक्ष [नागकेसर]

चिकित्सामें नागकेशरका उपयोग अर्श आदि रोगोंमें रक्तस्तम्भनके लिए तथा चतुर्जातकके रूपमें सुगन्धित, अग्निवर्धक द्रव्यके रूपमें पुष्कल होता है। देवदारुकी भाँति नागकेसर मुख्यतः पर्वत पर होता है, परन्तु देवदारुसे कम ऊँचाई पर। यह कूचविहार और अल्मोडामें प्रायः मिलता है; इसे बागोंमें भी लगाते हैं। अश्वघोषने सौन्दरनन्द काव्यमें इसका उल्लेख किया है—

पुष्पोत्कराला अपि नागवृक्षा दान्तैः समुद्गैरिव हेमगर्भैः।
कान्तारवृक्षः इव दुःखितस्य न चक्षुराचिक्षिपुरस्य तस्य ॥७।९।

हेमगर्भवाले नागवृक्षोंके फूलोंमें सोने जैसे पुंकेसर झलक रही थी; परन्तु नन्दने उधर देखा भी नहीं।

नागकेसर वृक्षके अति सुन्दर पुष्पोंसे झरते हुए परागकी उपमा श्री-हर्षने शाणमेंसे निकलती लाल चिनगारियोंसे दी हैं—

गलत्परागं अमिभङ्गिभिः पतन्प्रसक्तभृङ्गावलि नागकेसरम्।
स भारनाराचनिघर्षणस्खलज्ज्वलत्कणं शाणमिव व्यलोकत् ॥१।९२।

३६–विल्व

विल्व प्रसिद्ध वृक्ष है। इसके फलका कच्चा और पक्क दोनों रूपसे चिकित्सामें उपयोग किया जाता है। कच्चा फल जहाँ पर संग्राहि, आम पाचक है, वहाँपर पका फल मृदुरेचक है।

रामायणमें तथा नैषधमें इसका उल्लेख स्तनोंकी उपमाके रूपमें आता है; यथा—

स्निग्धपल्लवसंकाशां पीतकौशेयवासिनीम्।
शंसस्व यदि सा दृष्टा बिल्व बिल्वोपमस्तनी ॥

—रामायण ३।६०–१३।

**मरुल्ललत्पल्लवकण्टकैः क्षतं समुच्छलच्चन्दनसारसौरभम् ।
स वारनारीकुचसंचितोपमं ददर्श मालूरफलं पचेलिमम् ॥**
—नैषध० १६।५ ।

मालूर पर्याय बिल्वका है। पके हुए बिल्वफलमेंसे चन्दन जैसी सुगन्ध आती है। भवभूतिने भी बिल्वफलकी सुगन्धसे भरे अरण्यगिरियोंका उल्लेख किया है—"**परिणतमालूरसुरभयः अरण्यगिरिभूमयः—मालती-माधव ६**] ।

कादम्बरीके चण्डिकावर्णनमें—"**रक्तचन्दनखचितस्फुरत्फलपल्लवकलितैश्च बिल्वपत्रदामभिः बालकमुण्डप्रालम्बैरिव**"—बिल्वपत्र और फलोंसे बनाई मोटी माला गलेसे पैर तक चण्डिकाके गलेमें पहनाई गई थी। बिल्वके पत्र महादेवजी पर चढ़ते हैं।

आयुर्वेदके प्रसिद्ध दशमूलमें और वातहर बृहत्पंचमूलमें बिल्वका उपयोग आता है।

३७—बीजपूरक

सामान्य भाषामें इसे बिजौरा नीबू कहते हैं। देहरादूनमें यह नीबू पर्य्याप्त बड़ा होता है, इसमें अतिशय अम्लता रहती है। किंवदन्ती है कि इसमें घुसी हुई सूईका भाग—जितना भाग फलके अन्दर पहुँचा होता है, वह रात भरमें गल जाता है। यही इसकी तीक्ष्णताका द्योतक है। इसी तीक्ष्णताके कारण इसका उपयोग अग्निवर्धक रूपमें औषधियोंको भावित करनेमें होता है। इसकी छालको सुखाकर तैल या चूर्ण रूपमें मुख पर कान्तिके लिए मलते हैं।

कामसूत्रमें इसका उपयोग दुर्गन्धित वायुको दूर करनेके लिए बताया है। इसीसे नायकके शय्यागृहमें इसे रखनेका विधान है। यथा—

"**तत्र रात्रिशेषमनुलेपनं माल्यं सिक्थकरण्डकं सौगन्धिकपुटिका मातुलुङ्गत्वचः ताम्बूलानि च स्युः ॥१।४।८ ।**

इसकी टीकामें—**मातुलुङ्गत्वचो मुखवैरस्यापनोदनार्थं दुष्टमारुतनिवारणार्थं च। तथोक्तम्—**

सायं लीढ्वा कामी मध्वक्तं मातुलुङ्गदलकल्कम्।
स्त्रीभुजपञ्जरसंस्थः खलेन न हि क्लिश्यते मरुता॥

मालविकाग्निमित्रके तीसरे अंकमें—उपहार देनेके लिए बीजपूरकका उल्लेख मिलता है; यथा—

"आज्ञप्तास्मि भगवत्या—समाहितके देवस्योपवनस्थं बीजपूरकं गृहीत्वागच्छेति।

समाहितका—सखि भगवत्याज्ञापयति। अरिक्तपाणिनास्मादृशजनेन तत्रभवती देवी द्रष्टव्या। तद्बीजपूरकेण शुश्रूषितुमिच्छामि इति॥ मालविका० ३।.

सामान्यतः मातुलुङ्ग और बीजपूरक एक ही माने जाते हैं; परन्तु कुछ विद्वान् मातुलुङ्गको गलगलका वाचक मानते हैं। वास्तवमें बिजौरा [बीजपूरक), गलगल [मातुलुङ्ग] आकारमें—नाममें—पृथक् पृथक् हैं; परन्तु गुण धर्मसे दोनों बहुत ही मिलते हैं। इसलिए दोनों एक मान लिये जाते हैं। मातुलुङ्गका फल सामान्यतः गोल होता है, बिजौरेका फल लम्बा-लम्बूतरा होता है।

३८—भूर्ज

भूर्ज पत्रका उपयोग व्रण चिकित्सामें [**एरण्डभूर्जपूतीकहरिद्राणां तु वातजे—सुश्रुत. चि. १।११३**], अपरा निकालनेके लिए तथा योनिमें धूपनकार्यके लिए इसका व्यवहार होता है [**चरक. चि. अ. ८।४५**]। साथ ही स्निग्ध वटी आदिको सूखनेसे बचानेके लिए, औषधियोंमें नमी न आये, इसलिए भूर्जपत्रोंका उपयोग होता था। भूर्जपत्रके वृक्ष हिमालयमें ही होते हैं; यथा—

न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र भूर्जत्वचः कुञ्जरबिन्दुशोणाः ।
व्रजन्ति विद्याधरसुन्दरीणामनङ्गलेखक्रिययोपयोगम् ॥

—कुमार० १।७.

विक्रमोर्वशीयमें भूर्जपत्र पर—भूर्ज वृक्षकी छाल पर लिखकर पत्र भेजनेका उल्लेख मिलता है।

प्रभावनिर्मितेन भूर्जपत्रेण संपादितोत्तराभावितुमिच्छामि" । **अंक. २ ।** **भूर्जगतोऽयमक्षरविन्यासः ।**

उर्वशीदर्शनविस्मितेन मया तं भूर्जपत्रं प्रभ्रष्टमपि हस्तात्प्रमादेन न विज्ञातम् ॥ उपनयतु भवान् भूर्जपत्रम् ॥ विक्रमोर्वशीय ।

भूर्जपत्रका उपयोग वस्त्रके लिए भी होता था। यथा—

गणा नमेरुप्रसवावतंसा भूर्जत्वचः स्पर्शवतीर्दधानाः ।
मनःशिलाविच्छुरिता निषेदुः शैलेयनद्धेषु शिलातलेषु ॥

—कुमार० १।५५ ।

भूर्जकी त्वचा बहुत मोटी होती है, इसको मनःशिलासे चित्रित करके या लेप करके पहिना जाता था। कादम्बरीमें भी भूर्जपत्रपर लिखे मन्त्रोंके पिटारोंका उल्लेख है—"**गोरोचनालिखितभूर्जपत्रगर्भान्मन्त्रकरण्डकानुवाह**— **कादम्बरी पूर्व भाग ।**

३६—मन्दार

मन्दारका पर्याय धन्वन्तरि निघण्टुमें राजार्क दिया है, इसीलिए कुछ लोग मन्दारसे आकका भी अर्थ बोध करते हैं। बर्माके मचीना शहरमें कुछ घरोंके द्वार पर आकका बड़ा वृक्ष [क्षुप नहीं, जैसा हम खेतोंमें देखते हैं] मैंने देखा भी है। इस वृक्षको देखकर कालिदासका यह वचन याद आता था—

यस्योपान्तः कृतकतनयः कान्तया वर्धितो मे
हस्तप्राप्यस्तवकनमितो बालमन्दारवृक्षः ॥ उत्तर मे० ।

कालिदासने मेघदूतमें ही मन्दारका तीन चार स्थानों पर उल्लेख किया है, इसलिए इतना तो निश्चित है कि यह वृक्ष मुख्य था। यथा—

[१] **मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः सेव्यमाना मरुद्भि-**
र्मन्दाराणामनुतटरुहां छायया वारितोष्णाः॥—मेघ० उत्तर० ६।

[२] **गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पैः**
पत्रच्छेदैः कनककमलैः कर्णविभ्रंशिभिश्च।
मुक्ताजालैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारै-
र्नैशो मार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम्॥—मेघ० उत्तर० ११

विक्रमोर्वशीयमें [**मन्दारपुष्पैरधिवासितायाम्—अंक ४**] तथा कुमारसम्भवमें [**आप्लुतास्तीरमन्दारकुसुमोत्करवीचिषु— ६।५**] कालिदासने मन्दारका उल्लेख किया है। इन सभी वर्णनोंमें एक बात स्पष्ट है कि मन्दार हिमालयमें होता था। सम्भवतः ऊँचाई पर होनेवाला यह वृक्ष है। मचीना भी बर्माका उत्तरीय स्थान है। इसीसे कुछ स्थानों पर मदार तथा मन्दार दोनों शब्द आकके लिए आते हैं। मदारसे सामान्य आकका क्षुप तथा मन्दारसे आकका बड़ा वृक्षका अर्थ लेना ठीक है, ऐसी मेरी मान्यता है।

अमरकोषमें पाँच देवतरु माने हैं—मन्दार, पारिजात, सन्तानक, कल्पद्रुम और हरिचन्दन। मन्दारके पर्य्यायोंमें सुरद्रुम, पारिभद्र और अर्कपत्र दिये हैं। इसलिए कुछ व्यक्ति मन्दारका अर्थ पारिभद्र या फरहद कहते हैं [गुजरातीमें पांटरवो]। कुछ लोग पारिभद्रसे बकायनका अर्थ भी लेते हैं [**पारिभद्रे निम्नतरुः मन्दारः पारिजातकः**]।

प्रसन्नराघवमें मन्दार-पुष्पोंको केशपाशोंमें लगानेका उल्लेख है—**मन्दोदरीकुटिलकोमलकेशपाशमन्दारदाममकरन्दरसं पिबन्तः** १।५८। इसी प्रकार कालिदासने मेघदूतमें [उत्तर ११] और भर्तृहरिने बालोंमें मन्दार पुष्प लगानेका उल्लेख किया है—

प्रोद्यत्प्रौढप्रियङ्गुद्युतिभृति विकसत्कुन्दमाद्यद्द्विरेफे,
काले प्रालेयवातप्रचलविलसितोदारमन्दारधाम्नि ।
येषां नो कण्ठलग्ना क्षणमपि तुहिनक्षोददक्षा मृगाक्षी
तेषामायामयामा यमसदनसमा यामिनी याति यूनाम् ॥

—शृङ्गार० ४८ ।

४०—मालती

मालती वसन्तमें नहीं खिलती, अपितु शरद् ऋतुमें ही विकसित होता है। यथा—

भवति हृदयहारि क्वापि कस्यापि हेतो-
र्न खलु गुणविशेषः प्रीतिबन्धप्रयोगे ।
किसलयति वनान्ते कोकिलालापरम्ये
विकसति न वसन्ते मालती कोऽत्र हेतुः ॥—नलचम्पू ।

कालिदासने भी मालतीका उल्लेख वर्षा और शरद् ऋतुमें ही किया है। यथा—

शिरसि बकुलमालां मालतीभिः समेतां
विकसितनवपुष्पैर्यूथिकाकुड्मलैश्च ।
विकचनवकदम्बैः कर्णपूरं वधूनां
रचयति जलदौघः कान्तवत्काल एषः ॥ —ऋतु० २।२५ ।

मेघदूतमें भी—तामुत्थाप्य स्वजलकणिकाशीतलेनानिलेन
प्रत्याश्वस्तां सममभिनवैः जालकैः मालतीनाम् ॥ उत्तर० ।

शरद् ऋतुके वर्णनमें—

काशैर्मही शिशिरदीधितिनो रजन्यो
हंसैर्जलानि सरितां कुमुदैः सरांसि ।
सप्तच्छदैः कुसुमभारनतैर्वनान्ताः
शुक्लीकृतान्युपवनानि च मालतीभिः ॥

शिशुपालवधमें मालतीपुष्प कामोत्तेजक कहा गया है—

अविरतरतलीलायासजातश्रमाणा-
मुपशममुपयान्तं निःसहेऽङ्गेऽङ्गनानाम् ।
पुनरुषसि विविक्तैर्मातरिश्वावचूर्ण्य
ज्वलयति मदनाग्निं मालतीनां रजोभिः ॥ ११।१७ ।

आयुर्वेदमें भी वसन्तकुसुमाकर आदि वृष्य योगोंमें मालतीपुष्पोंका उपयोग होता है—

शतपत्ररसेनैव मालत्याः कुङ्कमोदकैः ।
पश्चाद् मृगमदैर्भाव्यं सुसिद्धो रसराड् भवेत् ॥
वलिपलितहृन्मेध्यं कामदः सुखदः सदा ।
मेहघ्नं पुष्टिदं श्रेष्ठः पुत्रप्रसवकारणम् ॥

४१—मुस्ता

मुस्ताका आयुर्वेदमें बहुत उपयोग है। मुस्ता—मोथासे नागरमोथा और केवड़ीमोथ दो वस्तुएँ ली जाती हैं। तीसरी जाति भद्रमुस्ता है। इन तीनोंके गुण प्रायः समान हैं। मुस्ता मूत्रल, ज्वरनाशक, पित्तको कम करनेवाला और शीतल है। मुस्ता और वराहका एक सम्बन्ध है। सुअरोंको मुस्ता बहुत पसन्द है और वे अपनी थूथनी द्वारा कीचड़मेंसे मुस्ताको निकालते हैं। गरमियोंमें कीचड़ कम हो जाता है—

सभद्रमुस्तं परिशुष्ककर्दमं सरःखनन्नायतपोतृमण्डलैः ।
रविर्मयूखैरभितापितो भृशं वराहयूथो विशतीव भूतलम् ।

—ऋतु० १।८ ।

उत्तस्थुषः शिशिर पल्वलपङ्कमध्याद्
मुस्ताप्ररोहकवलावयवानुकीर्णम् ।
जग्राह स द्रुतवराहकुलस्य मार्गं
सुव्यक्तमार्द्रपदपंक्तिभिरायताभिः ॥ —रघु० ६।५६ ।

मुस्ताका नाम क्रोडेष्टा और वराही भी है। कालिदासने वराह समूहका वर्णन करते समय मुस्ताको भुलाया नहीं—**मुस्ता प्ररोहकवलावयवानुकीर्णं वराहकुलस्य मार्गम्** । शाकुन्तलमें भी वराहका मुस्ताके साथ वर्णन मृगया प्रसंगमें किया गया है। यथा—

विश्रब्धं क्रियतां वराहपतिभिः मुस्ताक्षतिः पल्वले
विश्रामं लभतामिदं च शिथिलज्याबन्धमस्मद्धनुः ॥

—अंक २।६ ।

४२—लवङ्ग

लवंगको द्वीपान्तरानीत—दूसरे द्वीपसे लाया—कालिदासने कहा है वैसे दक्षिणमें भी लवंगकी उत्पत्ति होती थी, ऐसा कालिदासके काव्यसे पता चलता है। यथा—

तस्य जातु मलयस्थलीरते धूतचन्दनलतः प्रियाक्लमम् ।
आचचाम सलवङ्गकेसरश्चाटुकार इव दक्षिणानिलः ॥

—कुमार० ८।२५ ।

अनेन सार्धं विहराम्बुराशेस्तीरेषु तालीवनमर्मरेषु ।
द्वीपान्तरानीतलवङ्गपुष्पैरपाकृतस्वेदलवा मरुद्भिः ॥

—रघु० ६।५७ ।

इन्दुमती-स्वयंवरमें प्रगल्भा सुनन्दा एक राजाका परिचय देते हुए कहती है—तालीवनकी मर्मरध्वनि जहाँ सदा कानके ऊपर होती रहती है। उस देशके इस राजाके साथ तू विहार कर, समुद्र पारसे आती हुई वायु अन्य द्वीपमें होनेवाले लवंग पुष्पोंकी सुगन्ध लेकर यहाँ पर रात दिन आकर तेरे स्वेद-बिन्दुओंको दूर करेगी।

मालतीमाधव [१०।३] में भी लवंगका उल्लेख है। शिशुपालवधमें श्रीकृष्णके सैनिक समुद्रके किनारेपर जाकर लवंगके सुगन्धियुक्त पुष्पोंकी माला धारण करके, नारियलका पानी पीते और हरी सुपारियोंको खाते हैं—

लवङ्गमाला कलितावतंसा ते नारिकेलान्तरपः पिबन्तः।
आस्वादितार्द्रक्रमुकाः समुद्रादभ्यागतस्य प्रतिपत्तिमीयुः॥
—३।८१।

४३–लाजा

लाजा आयुर्वेदमें बहुत प्रसिद्ध है। लाजा हल्की है इससे लाजा-मण्ड, लाजापेया बनती है। विवाह कार्यमें लाजा होम होता है—

ओम् इयं नार्युपब्रूते लाजानावपन्तिका। आयुस्मानस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम।

ओम् इमांल्लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव। मम तुभ्यं च संवननं तदग्निरनु मन्यतामियँ स्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम॥ पार० कां० १। कं० ६।

शिव पार्वतीके विवाहमें कालिदास लाजाहोमका उल्लेख कैसे छोड़ सकते थे!

तौ दम्पती त्रिः परिणीय वह्निमन्योन्यसंस्पर्शनिमीलिताक्षौ।
स कारयामास वधूं पुरोधास्तस्मिन्समिद्धार्चिषि लाजमोक्षम्॥
सा लाजधूमाञ्जलिमिष्टगन्धं गुरूपदेशाद् वदनं निनाय।
कपोलसंसर्पिशिखः स तस्या मुहूर्त्तकर्णोत्पलतां प्रपेदे॥ ७।८०-८१।

लाजा मांगलिक कार्यमें—प्रस्थान या यात्राके समय भी बिखेरी जाती हैं। यथा—

अवाकिरन्वयोवृद्धास्तं लाजैः पौरयोषितः॥ रघु० ४।२७।

अज और इन्दुमतीकी विवाह-विधिमें भी लाजाहोमका कविने वर्णन किया है—

नितम्बगुर्वी गुरुणा प्रयुक्ता वधूर्विधातृप्रतिमेन तेन।
चकार सा मत्तचकोरनेत्रा लज्जावती लाजविसर्गमग्नौ॥
—रघु० ७।२५।

वशिष्ठकी नन्दिनी गायके पीछे चलते हुए दिलीपका सत्कार लताओंने अपने पुष्प गिराकर लाजा रूपमें किया—

मरुत्प्रयुक्ताश्च मरुत्सखाभं तमर्च्यमारादभिवर्त्तमानम् ।
अवाकिरन्बाललताः प्रसूनैराचारलाजैरिव पौरकन्याः ॥

—रघु० ७।२५ ।

व्रीहिसे लाजा बनती है। [लाज भर्जने] इनको ही अक्षत कहते हैं। इनका पर्याय भृष्टव्रीहि है, क्योंकि ये धान्योंको सेककर—भाड़में भूनकर बनाये जाते हैं, ये पचनेमें हल्के होते हैं। यथा—

ये के च व्रीहयो भृष्टाः ते लाजा इति कीर्त्तिताः ॥ राजनिघण्टु ।

लाजाके गुण—

लाजपेया श्रमघ्नी तु क्षामकण्ठस्य देहिनः ।
तृष्णातीसारशमनो धातुसाम्यकरः शिवः ॥
लाजमण्डोऽग्निजननो दाहमूर्च्छानिवारणः ।
मन्दाग्निविषमाग्नीनां बालस्थविरयोषिताम् ॥
देयश्च सुकुमाराणां लाजमण्डः सुसंस्कृतः ॥

—चरक० सू० अ० २७।२५६-३५७ ।

श्रीहर्षने लाजाका उल्लेख सुन्दर रूपमें किया है—

सखीं नलं दर्शयमानयाङ्कतो जवादुदस्तस्य करस्य कङ्कणे ।
विषज्य हारैस्त्रुटितैरतर्कितैः कृतं कयापि क्षणलाजमोक्षणम् ॥

—नैषध० १५।७५ ।

सखी द्वारा नलको दिखाये जाने पर दमयन्तीके घबड़ाकर खड़े होने पर हाथके कंकणका सूत्र टूट गया, जिससे हीरा, माणिक्य, पुखराज आदि रत्न सब हाथमेंसे गिर पड़े । मानो उसने नलके ऊपर लाजा बखेरी ।

४४—लोध्र

लोध्रसे सामान्य भाषामें पठानी लोध्र लिया जाता है। इसकी छाल काममें आती है। लोध संग्राही है, इसलिए व्रणोंको धोने, अतीसार और

प्रमेहमें काम आता है। लोधका बाह्य उपयोग वर्ण्य–वर्णको स्वच्छ करनेमें होता है। लोधका रंग पाण्डु वर्ण–थोड़ी सी सफेदी लिये मटमैला होता है। भर्तृहरिने शक युवतियोंके कपोलोंको पके हुए ताम्बूलके साथ मिलाया है [**शकयुवतिकपोलापाण्डुताम्बूलवल्ली—शृङ्गार० ३४**], सम्भवतः इसी श्वेतिमाकी तुलनामें लोधके साथ पटानी विशेषण मिला दिया हो।

कालिदासने लोध्रका उल्लेख कई स्थानों पर किया है, यथा—

स पाटलायां गवि तस्थिवांसं धनुर्धरः केसरिणं ददर्श।
अधित्यकायामिव धातुमय्यां लोध्रद्रुमं सानुमतः प्रफुल्लम्॥
—रघु० २।२९।

दोहद लक्षणोंके वर्णनमें—

शरीरसादादसमग्रभूषणा मुखेन सालक्ष्यत लोध्रपाण्डुना—रघु० ३।

अलकापुरीमें स्त्रियोंके मुखकी शोभा लोध्रके फूलोंकी रजसे फीकी पड़ गई—**नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः**"। हेमन्तमें लोध्र पुष्पित होता है। यथा—

नवप्रवालोद्गमसस्यरम्यः प्रफुल्ललोध्रः परिपक्वशालिः।
विलीनपद्मः प्रपतत्तुषारो हेमन्तकालः समुपागतोऽयम्॥

राजशेखरने भी हेमन्तके वर्णनमें लोधका उल्लेख किया है—

पुन्नागरोध्रप्रसवावतंसा वामभ्रुवः कञ्चुककुञ्चिताङ्ग्यः।
वक्त्रोल्लसत्कुङ्कुमसिक्थकाङ्का सुगन्धतैलाः कवरीर्वहन्ति॥

लोधके फूलमें सुगन्ध होती है। किरातके निम्न श्लोकमें लोधके फूलोंमें सुगन्धका वर्णन है—

निचयिनि लवलीलताविकासे जनयति लोध्रसमीरणे च हर्षम्।
विकृतिमुपययौ न पाण्डुसूनुः चलति नयान्न जिगीषतां हि चेतः॥ १०।२६।

मालतीमाधवमें भवभूतिने मालतीका सौन्दर्य लोध्रके फूलोंमें पहुँचा बताया है—

नवेषु लोध्रप्रसवेषु कान्तिः दृशः कुरङ्गेषु मतङ्गजेषु ।
लतासु नम्रत्वमिति प्रमथ्य व्यक्तं विभक्ता बिपिने प्रिया मे ॥ ६।२७ ।

लोध्रमें कषाय रस है, इसीसे संग्राही है। इसलिए तैलाभ्यंगके पीछे तैलका चिकनापन निकालनेके लिए प्राचीनकालमें लोध्रका चूर्ण व्यवहारमें आता था। यथा पार्वतीको विवाहके समय स्नान कराते समय कुमारसम्भवमें-

तां लोध्रकल्केन हृताङ्गतैलामाश्यानकालेयकृताङ्गरागाम् ।
वासो वसानामभिषेकयोग्यं नार्यश्चतुष्काभिमुखं व्यनैषुः ॥

—कुमार० ७।६ ।

कानोंमें जौके अंकुर और मुख पर लोध्रका चूर्ण लगा होनेसे लोगोंकी आंखें वरबस ही पार्वतीकी ओर जाती थीं—

कर्णार्पितो लोध्रकषायरूक्षे गोरोचनाक्षेपनितान्तगौरे ।
तस्याः कपोले परभागलाभाद् बबन्ध चक्षूंषि यवप्ररोहः ॥

—कुमार० ७।१७ ।

ब्रह्मामें आज भी औरतें एक वृक्षकी छालको घिसकर मुख पर लेप करती हैं। प्राचीनकालमें इसका उपयोग मुखकी कान्तिको बढ़ानेमें, पद्मिनी-कण्टक, युवानपिड्किा, झांई [नीलिका-व्यङ्ग] आदि मुखको दूपित करनेवाली स्थितियोंसे बचानेमें होता था। इसीसे नलचम्पूमें भी कहा है—

देव ! भवद्वैरिवधूवदने वने च नारंगतरूपशोभे भान्ति गण्डशैलस्थलालंकारधारिण्यो लोध्रलताः ॥" नलचम्पू अ० ६-२ ।

४५—शाल्मली

शाल्मलीका मुख्यउपयोग आयुर्वेदमें प्रसिद्ध पिच्छावस्तिमें मिलता है [**परिवेष्ट्य कुशैरार्द्रैरार्द्रवृन्तानि शाल्मलेः" इत्यादि चरक० चि० अ० १६।६८** तथा चरक सि० अ० ७।६१ में]। इसके अतिरिक्त युवान-पिडिकाकी फुंसियोंकी उपमा शाल्मलीकण्टकके साथ दी है। रामायणमें भी इसके काँटोंका उल्लेख है—

तप्तकाञ्चनपुष्पां च वैदूर्यप्रवरच्छदाम् ।
द्रक्ष्यसे शाल्मलीं तीक्ष्णामायसैः कण्टकैश्चिताम् ॥ ३।५३-२० ।

शाल्मलीका पेड़ ग्रीष्म ऋतुमें—वसन्तमें खिलता है—

बहुतर इव जातः शाल्मलीनां वनेषु
स्फुरति कनकगौरः कोटरेषु द्रुमाणाम् ।
परिणतदलशाखानुत्पतन्प्रांशुवृक्षा-
न्भ्रमति पवनधूतः सर्वतोऽग्निर्वनान्ते ॥

सिम्बलके फूल वनमें लगी दावाग्निका भ्रम कराते हैं। कादम्बरीमें शाल्मली वृक्षके लिए सुन्दर विशेषण आये हैं। यथा—"**महान् जीर्णः शाल्मली वृक्षः**, बड़ा भारी वृक्ष, **२—नायक इव सर्ववनस्पतीनाम्**—सब वनस्पतियोंका नायक, **३—अखिलभुवनतलावलोकनप्रासाद इव वनदेवतानाम्**—वनदेवताओंके प्रासाद पर चढ़कर सम्पूर्ण पृथ्वीतलको देखनेके लिए प्रासाद रूपमें खड़ा सिम्बलका वृक्ष है। सिम्बलका वृक्ष, बहुत ऊँचा तथा दीर्घायु होता है। सिम्बलके गोंदको मोचरस या मोचा कहते हैं। मोचरस उत्तम रक्तस्तम्भक है।

४६—शिरीष

आयुर्वेदमें शिरीषको विषघ्न द्रव्योंमें सर्वश्रेष्ठ कहा है [**शिरीषो विषघ्नानाम्—चरक. सू. अ. २५।४०**]। कवियोंने शिरीषको कोमलताके रूपमें उपस्थित और चित्रित किया है। यथा—

सद्यः पुरीपरिसरेऽपि शिरीषमृद्वी सीता जवात् त्रीचतुराणि पदानि गत्वा ।
गन्तव्यमस्ति कियदित्यसकृद्ब्रुवाणा रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम् ॥

कुमारसम्भवमें भी पार्वतीकी कोमलताका उल्लेख करते हुए कालिदासने कहा है—

शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यौ बाहू तदीयाविति मे वितर्कः ।
पराजितेनापि कृतौ हरस्य यौ कण्ठपाशौ मकरध्वजेन ॥

—कुमार० १।४१ ।

सुदर्शन बालकका राजारूपमें वर्णन करते हुए उसकी कोमलताके लिए कविने कहा कि—

शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यः खेदं स यायादपि भूषणेन ।
नितान्तगुर्वीमपि सोऽनुभावाद् धुरं धरित्र्या बिभरांबभूव ॥

—रघु० १८।४५।

शिरीषपुष्पको कानमें भी पहिना जाता था—

स्वेदानुविद्धार्द्रनखक्षताङ्के भूयिष्ठसंदष्टशिखं कपोले ।
च्युतं न कर्णादपि कामिनीनां शिरीषपुष्पं सहसा पपात ॥

—रघु० १६।४८।

शिरीषपुष्पकी कोमलता कालिदासके—**पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः**—इस पद्यसे स्पष्ट है। यही बात भवभूतिके मालतीमाधवमें कहे "..............**ललितशिरीषपुष्पहननैरपि ताम्यति यत्**"–५।३१ वचनसे स्पष्ट है। किरातमें [४।३६] भारविने तथा नैषधमें [७।४७] श्री हर्षने भी शिरीषकी कोमलताका उल्लेख किया है।

४७–शैवाल

शैवालका अन्तःउपयोग सुश्रुतमें एक स्थान पर मिलता है—**शुक्रमेहिनं दूर्वाशैवालप्लवहठकरंजकसेरुकषायम्**–चि० ११।६। शैवालका बाहर भी लेप करते हैं, विशेषतः जलनेमें। इसके लेपसे त्वचासे वाष्पीभवन [Evaporation] होना रुक जाता है। देहातोंमें राबसे खांड बनानेमें इसका व्यवहार बहुत होता है।

काव्योंमें शैवालका उल्लेख तालाबोंके प्रसंगमें या कमलके साथ आता है। यथा—

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्मलक्ष्मीं तनोति ॥

—शाकु० १।१८।

दिने दिने शैवलवन्त्यधस्तात् सोपानपर्वाणि विमुञ्चदम्भः ।
उद्दण्डपद्मं गृहदीर्घिकाणां नारीनितम्बद्वयसं बभूव ॥

—रघु० १६।४६ ।

चलीकृता यत्र तरङ्गरिङ्गणैरबालशैवाललतापरम्पराः ॥

—नैषध० १।११४ ।

४८—शोभाञ्जन

शोभाञ्जनका व्यवहार आयुर्वेदमें शोथ या विद्रधिके लिए विशेष रूप में है—**पानालेपनभोज्येषु मधु शिग्रुद्रुमोऽपि वा । दत्तावापो यथा दोष-मपक्वं हन्ति विद्रधिम् ॥ सु० चि० १६।३१ ।**

शोभांजन वसन्तमें फूलता है—**तरुणीजन इवाधिगतशोभाञ्जनो वसन्त-समयः प्रादुरासीत् ।** सहजन जब फूलता है तब इसके फूलोंके भारसे टहनी टूट जाती हैं । इसीसे हिन्दी कविका कहना है कि—**सहजन अति फूले तरु डार पातकी हान ॥**

४९—सप्तपर्ण

सप्तपर्णका आयुर्वेदमें उपयोग मुख्यतः पित्तशामक या रक्तशोधक रूप में होता है । काव्योंमें इसका उल्लेख इसके फूलोंकी सुन्दरताके लिए है । यह वृक्ष शरद् ऋतुमें खिलता है । इसकी गन्धको भ्रमर विशेष पसन्द करते हैं ॥ हाथीके मदकी गन्ध भी सप्तपर्णके फूलोंकी गन्धसे मिलती है । भ्रमर इस गन्ध पर भी आकर्षित होते हैं । यथा—

[१] **‘मुक्त्वा कदम्बकुटजार्जुनसर्जनीपान्सप्तच्छदानुपगता कुसुमोद्गमश्रीः**

[२] **शाखासु सप्तच्छदपादपानां प्रभासु तारार्कनिशाकराणाम् ।**
लीलासु वा चोत्तमवारणानां श्रियं विभज्याद्य शरत्प्रवृत्ता ॥

[३] **त्वं प्रमत्तो न जानीषे कालं कालविदां वर ।**
फुल्लसप्तच्छदश्यामा प्रवृत्ता तु शरच्छुभा ॥

हाथियोंके मदके समान गन्ध सप्तपर्णमें होती है—

सप्तच्छदक्षीरकटुप्रवाहमसह्यमाघ्राय मदं तदीयम् ।
विलङ्घिताधोरणतीव्रयत्ना सेनागजेन्द्रा विमुखा बभूवुः ॥

—रघु० ५।४८ ।

सप्तपर्णके फूलोंपर भ्रमर मँडराते हैं—

सप्तच्छदानां कुसुमोपगन्धि षट्पादवृन्दैरनुनीयमानः ।
मत्तद्विपानां पवनानुसारी दर्पं विनेष्यन्नधिकं विभाति ॥

सप्तपर्णमें सात पत्ते होते हैं। इसलिए इसका एक नाम अयुग्मच्छद भी है। यथा—

अनेकराजन्यरथाश्वसंकुलं तदीयमास्थाननिकेतनाजिरम् ।
नयत्ययुग्मच्छदगन्धिरार्द्रतां भृशं नृपोपायनदन्तिनां मदः ॥

—किराता० १।१६ ।

५०—सरसों [सिद्धार्थ]

सरसोंका एक नाम रक्षोघ्न है। रक्ष शब्दसे राक्षस या निशाचरका ग्रहण होता है। आजकलकी दृष्टिसे इनको जर्म्स (Germs) कह सकते हैं क्योंकि जर्म्स और निशाचरोंकी प्रकृति समान है। दोनों ही प्रकाशसे भागते हैं, दोनों अन्धकारको पसन्द करते हैं; दोनोंको ही मांस-शोणित प्रिय है। दोनों ही मनुष्य पर आक्रमण करते हैं। सरसोंसे इन कृमियोंका नाश होता है, इसीसे सरसोंको रक्षोघ्न कहते हैं। सूतिकागार आदिमें इसके छिड़कनेका उल्लेख चरक संहितामें है [शा० अ० ८]। कादम्बरीमें भी विलासवतीके घरमें सरसोंके बिखेरनेका उल्लेख है [देखिये इसी पुस्तकमें बाणभट्ट]। स्कन्द ग्रहमें सरसोंसे धूप देना लिखा है [उत्तर० २८।६]। कुमारसम्भवमें पार्वतीके सजानेमें सिद्धार्थका उपयोग किया है—

सा गौरसिद्धार्थनिवेशवद्भिर्दूर्वाप्रवालैः प्रतिभिन्नशोभम् ।
निर्नाभि कौशेयमुपात्तबाणमभ्यङ्गनेपथ्यमलंचकार ॥

—कुमार० ७।७ ।

भवभूतिने मालतीमाधवमें सर्षपका उल्लेख एक अन्य रूपमें किया है—

अकारणस्मेरमनोहराननः शिखाललाटार्पितगौरसर्षपः ।
तवाङ्कशायी परिवृत्तभाग्यया मया न दृष्टः तनयः स्तनन्धयः ॥

—मा० मा० १०।६ ।

५१—हरिद्रा

हरिद्राका उल्लेख आयुर्वेदमें वर्ण्य तथा विषनाशक, त्वच्य रूपमें आता है। इसके सिवाय ग्रहबाधासे बच्चेकी रक्षा करनेके लिए हल्दीकी गाँठका उपयोग होता है। यात्रामें हल्दीकी गाँठको शिरके बालोंमें बाँधनेकी प्रथा है। षष्ठी देवीकी पूजा करनेमें हल्दीका उपयोग होता था। इसका उल्लेख बाणने किया है—**हरिद्राद्रवविच्छुरणपरिपिन्जराम्बरधारिणी ।**

कादम्बरीमें एक अन्य स्थानपर भी हरिद्राका उल्लेख आया है। हरिद्रासे रंगे वस्त्रको धारण करके बच्चेको गोदमें लेकर षष्ठी देवीकी पूजाका उल्लेख है—

कदा हारिद्रवसनधारिणी सुतसनाथोत्संगा द्यौरिवोदितरविमण्डला सबालातपा मामानन्दयिष्यति देवी—कादम्बरी ।

षष्ठी देवीकी पूजाके लिए काश्यप संहितामें स्पष्ट किया है। यथा—

भ्रातृणां च चतुर्णां वै पञ्चमो नन्दिकेश्वरः ।
भ्राता त्वं भगिनी षष्ठी लोके ख्याता भविष्यति ॥
यथा मां पूजयिष्यन्ति तथा त्वां सर्वदेहिनः ।
अस्मत्तुल्यप्रभावा त्वं भ्रातृमध्यगता सदा ॥

षण्मुखी नित्यललिता वरदा कामरूपिणी।
षष्ठी च ते तिथिः पूज्या पुण्या लोके भविष्यति ॥काश्यप० ।

आज भी बच्चेकी छठी पूजनेमें बच्चेके माथे पर हल्दीका लेप या टीका किया जाता है। वाणके समयमें हल्दीसे रंगे वस्त्र पहिनकर बालकको गोदीमें लेकर छठीकी पूजा होती होगी।

आयुर्वेद साहित्यमें काव्य

•

आयुर्वेद साहित्यमें काव्य

काव्यका लक्षण—साहित्यदर्पणके कर्ता श्री विश्वनाथने काव्यकी परिभाषा दी है—

वाक्यं रसात्मकं काव्यम् ।

रसात्मक वाक्य ही काव्य है। पण्डितराज जगन्नाथने अपने रसगंगाधरमें—

रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम् ।

रमणीय अर्थको व्यक्त करनेवाले शब्दको काव्य कहा है। इसमें रमणीय शब्दको स्पष्ट करनेके लिए कहा है कि—

रमणीयता च लोकोत्तराह्लादजनकज्ञानगोचरता

लोकोत्तर आह्लादको उत्पन्न करनेवाली प्रतीतिका नाम रमणीयता है। सामान्य रूपमें जिस शब्द या काव्यसे लोकोत्तर आह्लाद—अतिशय आनन्दकी अनुभूति चित्तमें हो वह काव्य है। वेद भी एक काव्य है, जिसके लिए कहा है—

पश्य देवस्य काव्यं यो न ममार न जीर्यति ।

परमेश्वरके काव्यको देखो, जो कभी नष्ट नहीं हुआ और न कभी जीर्ण होता है। वास्तवमें वेदका ज्ञान ऐसा ही काव्य है, क्योंकि इससे ऋषियोंको लोकोत्तर आह्लाद मिलता था।

इस दृष्टिसे आयुर्वेद शास्त्रोंमें भी ऐसी रचना, ऐसे शब्द और ऐसे वाक्य हैं; जिनके पढ़ने या सुननेसे मनुष्यमें अतिशय आह्लादका अनुभव होता है। पाठकको रचनामें आनन्द आता है तथा रसके कारण वह उसे बार बार पढ़ता है। इसी प्रकारकी कुछ रचनाएँ चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, अष्टांगसंग्रह और अष्टांगहृदयमेंसे यहाँ प्रस्तुत की गई हैं। इनके सिवाय वैद्य लोलिम्बराजका वैद्यजीवन इतना रसमय है कि वैद्य समाजमें लोलिम्ब-

राज रसिकशिरोमणिके नामसे प्रसिद्ध हैं। सिद्धभैषज्यमणिमालाके कर्त्ता श्री श्रीकृष्णभट्टने भी अपने इस आधुनिक ग्रन्थमें काव्यका आनन्द भरा है। इसी प्रकार दूसरे कवि भी हैं। इतने बृहत् वाङ्मयमेंसे प्राचीन संहिताओं तक ही यहाँ इस विषयको सीमित रक्खा गया है क्योंकि विस्तारसे विषयके अत्यन्त बृहत्काय हो जानेका भय था। इन संहिताओंमेंसे भी उदाहरण रूपमें कुछ ही स्थल यहाँ पर दिये हैं क्योंकि कई स्थानोंके प्रकरण बहुत लम्बा होनेसे चाहते हुए भी देना सम्भव न था। अनुवाद भी संक्षेपमें दिया है। इन संहिताओंका विस्तृत अनुवाद मेरा किया हुआ है, उसे वहीं पर देखना सुविधाजनक होगा। यहाँ पर तो केवल उदाहरणके रूपमें ही वचन संग्रहीत किये गये हैं। ऐसे रमणीय, आह्लाददायक काव्य रूपी वचन आयुर्वेद संहिताओंमें पीछे प्रकीर्ण वचनोंके रूपसे वैद्यजीवन एवं सिद्धभैषज्यमणिमालासे तथा कुछ सुन्दर काव्य सिद्धभैषज्यमंजूषासे इसमें संग्रहीत हैं। इसीसे चित्र काव्य भी उदाहरण रूपसे आगये हैं। यह सब केवल इस विषयको पूर्णता प्रदान करनेके लिए ही है।[1]

तेषामभिव्यक्तिरभिप्रदिष्टा..............

पराधिकारे तु न विस्तरोक्तिः शस्तेति तेनात्र न नः प्रयासः ॥

—चरक।

हिमालयका वर्णन

रोगोंसे दुःखित जनोंके कल्याणके लिए पुण्यकर्मा ऋषि हिमालयके पार्श्वमें एकत्र हुए। हिमालयको चुननेका कारण यही था कि वहाँपर सब

१. हिन्दीमें पं० रामचन्द्र शुक्लने काव्यमें प्राकृतिक दृश्यकी बड़ी महत्ता स्वीकृत की है और प्राकृतिक वर्णनकी वास्तविकताके अभावमें या केवल नाम-परिगणनके कारण कितने ही अच्छे अच्छे कवियोंकी आलोचना की है और प्रकृतिके स्वतंत्र या आलंबन रूपमें वर्णनको भी अपने मतसे सुन्दर काव्य माना है। देखिए उनके निबन्ध—"कविता क्या है?" तथा "काव्यमें प्राकृतिक दृश्य"।

औषधियाँ मिल जाती हैं तथा देवयोनियोंके सिद्ध ऋषि वहाँ रहते थे। इसीलिए हिमालय पवित्र था। वहाँपर अपुण्यकर्मा मनुष्य नहीं जा सकते थे—

"ऋषयः खलु कदाचिच्छालीना यायावराश्च ग्राम्यौषधाहाराः सन्तः सांपन्निकाः मन्दचेष्टा नातिकल्याश्च प्रायेण बभूवुः। ते सर्वासामितिकर्त्तव्यतानामसमर्थाः सन्तो ग्राम्यवासकृतमात्मदोषं मत्वा पूर्वनिवासमपगतग्राम्यदोषं शिवं पुण्यमुदारं मेध्यमगम्यमसुकृतिभिर्गङ्गाप्रभवममरगन्धर्वकिन्नरानुचरितानेकरत्ननिचयमचिन्त्याद्भुतप्रभावं ब्रह्मर्षिसिद्धचारणानुचरितं दिव्यतीर्थौषधिप्रभवमतिशरण्यं हिमवन्तममराधिपतिगुप्तं जग्मुर्भृग्वङ्गिरोऽत्रिवशिष्ठकश्यपागस्त्यपुलस्त्यवामदेवासितगौतमप्रभृतयो महर्षयः।" —चरक०. चि० अ० १।४।३।

नावनीतकमें हिमालयका वर्णन इसी रूपमें है। यथा—

ओं देवर्षिसिद्धगणकिन्नरनागयक्षविद्याधराध्युषितसानुरनन्तरत्नः।
पुण्यस्त्रिपिष्टपतलोद्धृतदेवरम्यः························नुदग्रः ॥ १ ॥
यत्र स्फुटन्मणिसहस्रमयूखजालविक्षोभितं दशसु दिक्षु भयात्प्रलीनम्।
चन्द्रोडुसूर्यहुतभुङ्निलयाभिशंकि प्रवृ···शास्वपि पुनर्न तमोऽभ्युपैति ॥२॥
यः सेव्यते मुनिगणैरनिशं सशिष्यैर्नैकैः समित्कुशफलोदकपुष्पहस्तैः।
स्वर्गाङ्गनाभिरपि च प्रविमृष्टशाखाः कुञ्जेषु यस्य तरवः कुसुमार्थिनीभिः ॥३॥
तस्मिन् गिराववनिमण्डलमण्डभूते सर्वातिथाविव जगद्विभवप्रदानैः।
सर्व्वर्तुपुष्पफलवद्द्रुमरम्यसानावेते विधूततमसो मुनयो वसन्ति ॥ ४ ॥
आत्रेयहारितपराशरभेलगर्ग्गशांबव्यसुश्रुतवशिष्ठकरालकाप्याः।
सर्व्वौषधीरसगणाकृतिवीर्यनाम जिज्ञासवः समुदिताः शतशः प्रचेरुः ॥५॥

हिमालयका वर्णन चरक संहिता तथा कुमारसम्भवके वर्णनसे बहुत अंशोंमें मिलता है। कालिदासने हिमालयका जो चित्र खींचा है, वही चित्र नावनीतकके कर्त्ताने चित्रित किया है [देखिए पृष्ठ ६०—६१]। नावनीतकका यह वर्णन चरक संहिताके ऊपरके वर्णनकी छाया है। वहाँपर भी

अत्रि, वशिष्ठ, काश्यप, अगस्त्य, वामदेव, असित, गौतम आदि ऋषि एकत्र होकर कुछ जाननेकी इच्छासे इन्द्रके पास हिमालयमें पहुँचते हैं।

हिमालय नगरके दोषोंसे रहित, शिव-पुण्य-उदार-मेध्य है। अपुण्यकर्मा व्यक्तियोंकी पहुँचसे बाहर है। गंगाका उत्पत्ति-स्थान, देवता, गन्धर्व, किन्नरोंसे सेवित; अनेक रत्नोंकी खान, अद्भुत प्रभाववाला, ब्रह्मर्षि, सिद्ध चारणोंसे भरा, दिव्य तीर्थ, दिव्य औषधियोंका उत्पत्तिस्थान, शरणमें अतिशय जाने योग्य और देवताओंके राजा इन्द्रसे रक्षित है।

नावनीतकके ऋषि भी ऐसे रमणीय तथा सुन्दर हिमालयमें एकत्र हुए। चरकके प्रारम्भमें भी ऋषि हिमालयके पार्श्वमें मिलते हैं। यथा—**समेताः पुण्यकर्माणः पार्श्वे हिमवतः शुभे—चरक० सू० अ० १।७।** क्योंकि हिमालय शरणमें जाने योग्य है।

ऋतु-वर्णन

आयुर्वेदमें स्वास्थ्यकी दृष्टिसे ऋतुओंका बड़ा महत्त्व है। ऋतुएँ छः हैं, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर और वसन्त। इन ऋतुओंका वर्णन सभी संहिताओंमें किया गया है। यहाँ पर संग्रहसे संक्षेपमें ऋतुओंका वर्णन दिया जा रहा है। यों तो ऋतु वर्णनको लेकर कालिदासने ऋतुसंहार पृथक् काव्य ही रचा है परन्तु आयुर्वेदमें उतना विशद वर्णन नहीं। फिर भी जो भी है, उसमें भी रमणीयता मिलती है, यथा—

हेमन्त ऋतु—

धूमधूम्ररजोमन्दास्तुषाराविलमण्डलाः।
दिगादित्या मरुच्छैत्यादुत्तरो रोमहर्षणः॥
लोध्रप्रियङ्गुपुन्नागलवल्यः कुसुमोज्ज्वलाः।
दृप्ता गजाज-महिष-वाजि-वायससूकराः॥
हिमानीपटलच्छन्ना लीनमीनविहङ्गमाः।
नद्यः सवाष्पाः सोष्माणः कूपापश्च हिमागमे॥

धुँएकी तरह मलिन रजसे दिशाएँ और सूर्य धुँधला दिखाई देता है। इसी प्रकार हिमसे आच्छादित होनेके कारण दिशाएँ और सूर्य मण्डल तुषारसे ढँका है। शीत होनेसे उत्तर दिशाकी वायु शरीरमें रोमांच करती है। इस समय लोध, प्रियंगु, नागकेशर और हरफारेवड़ीके सुन्दर फूल खिले हुए हैं। हाथी, बकरी, भैंस, घोड़ा, कौआ और सूकर इनका मद बहुत बढ़ा हुआ है। मछली और पक्षिगण छिप गये हैं। नदियों पर वाष्प उठ रहा है, कुओंका पानी गरम है।

वसन्त ऋतु—

> वसन्ते दक्षिणो वायुराताम्रकिरणो रविः।
> नवप्रवालत्वक्पत्राः पादपाः ककुभोऽमलाः॥
> किंशुकाशोकचूतादिवनराजिविराजिताः।
> कोकिलालिकुलालापकलकोलाहलाकुलाः॥

वसन्त ऋतुमें दक्षिणकी वायु बहती है[1]। सूर्यमें भी गरमी आ गई, उसकी किरणें लाल हो गईं, वृक्षोंमें नये पत्ते और नई छाल आ गई, तथा दिशाएँ भी निर्मल हो गई हैं। ढाक, अशोक, आम आदिसे वन-पंक्तियाँ शोभित हैं। कोयल तथा भ्रमर-समूहोंके कोलाहलसे दिशाएँ व्याप्त हैं।

ग्रीष्म ऋतु—

> ग्रीष्मेऽतसीपुष्पनिभस्तीक्ष्णांशुर्दावदीपिताः।
> दिशो ज्वलन्ति भूमिश्च मारुतो नैऋर्तः सुखः॥

१—सुश्रुतमें भी—

> सिद्धविद्याधरवधूचरणालक्तकाङ्किते।
> मलये चन्दनलतापरिष्वङ्गाधिवासिते॥
> वाति कामिजनानन्दजननोऽनङ्गदीपनः।
> दम्पत्योर्मानभिदुरो वसन्ते दक्षिणोऽनिलः॥

पवनातपसंस्वेदैः जन्तवो ज्वरिता इव ।
तापार्त्ततुङ्गमातङ्गमहिषैः कलुषीकृताः ॥
दिवाकरकराङ्गारनिकरक्षपिताम्भसः ।
प्रवृद्धरोधसो नद्यः छायाहीना महीरुहाः ॥
विशीर्णजीर्णपर्णाश्च शुष्कवल्कलताङ्किताः ।

इस ऋतुमें सूर्य अलसीके फूलके समान लाल तथा वनाग्निकी भाँति चमक रहा है, दिशाएं जलती हैं, नैऋ्र्त्य दिशाकी वायु सुखदायक है। गरम वायु, धूप और पसीनेसे प्राणी बेचैन बने हैं। गरमीके कारण घोड़े, हाथी और भैंस परेशान हो रहे हैं। सूर्यकी धधकती हुई किरणोंके कारण नदियोंमें पानी कम होनेसे इनके ऊँचे ऊँचे किनारे निकल आये हैं, वृक्षोंमें भी छाया नहीं, उनके पत्ते सूखकर गिर गये, वृक्षोंकी छालें सूखकर लटक गईं तथा सूखी लताएँ उन पर लिपटी हैं।

वर्षाऋतु—

वर्षासु वारुणो वायुः सर्वसस्यसमुद्गमः ।
भिन्नेन्द्रनीलनीलाभ्रवृन्दमन्दाविलं नभः ॥
दीर्घिका नववार्योऽघभग्नसोपानपङ्क्तयः ।
वारिधाराभृशाघातविकासितसरोरुहाः ॥
सरितः सागराकारा भूरव्यक्तजलस्थला ।
मन्द्रस्तनितजीमूतशिखिदर्दुरनादिता ॥
इन्द्रगोपधनुःखण्डविद्युद्द्योतदीपिता ।
परितः श्यामलतृणा शिलीन्ध्रकुटजोज्ज्वला[1] ॥

---

१. तुलना कीजिए—

[क] कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्यां
तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः ॥

—मेघदूत ।

वर्षाऋतुमें वारुण वायु [मौनसून]—समुद्रकी वायु बहती है। सब शस्य उत्पन्न होते हैं। आकाश बीचसे तोड़े इन्द्रनील [नीलम रत्न] के समान नीले बादलोंसे भरा हुआ है। प्रचुर पानीके आनेसे बावड़ीकी सीढ़ियाँ टूट गई हैं। वर्षाके पानीके कारण नदियाँ समुद्रके समान दीखने लगी हैं। पानी के बढ़नेसे पृथ्वी साफ दिखाई नहीं देती। मेघ, मोर और मेढककी गम्भीर ध्वनि सुनाई पड़ रही है। बीरबहूटी, इन्द्रधनुष और विद्युत्की चमकसे दिशाएँ शोभित होती हैं। भूमिपर चारों ओर हरी-हरी घास और छत्रक तथा कुटजके फूल खिले हुए हैं।

शरद् ऋतु—

शरदि व्योमशुभ्राभ्रं किञ्चित्पङ्काङ्किता मही।
प्रकाशकासप्ताहकुमुदा शालिशालिनी ॥[1]
विक्षिप्ततीक्ष्णकिरणो मेघौघविगमाद् रविः।
बभ्रवर्णोऽतिविमलाः क्रौञ्चमालाकुला दिशः ॥
कमलान्तरसल्लीनमीनहंसांसघट्टनैः।
तरङ्गभङ्गतुङ्गानि सरांसि विमलानि च ॥

[ख] स सल्लकीसालशिलीन्ध्रयूथीप्रसूनदः पुष्पितलाङ्गलीकः ॥
—राजशेखर।

[ग] आविर्भूतशिलीन्ध्रलोध्र कुसुमस्मेरा वनानां ततिः ॥
—मालतीमाधव।

१. [क] आपक्वशालिरुचिरानतगात्रयष्टिः प्राप्ताशरन्नववधूरिव रूपरम्या।
—ऋतुसंहार।

[ख] विनम्रशालिप्रसवौघशालिनीरपेतपङ्काः ससरोरुहाम्भसः।
ननन्द पश्यन्नुपसीम स स्थलीरुपायनीभूतशरद्गुणश्रियः ॥
—किरात० ४।२।

शरद् ऋतुमें आकाश सफेद बादलोंसे भरा होता है; भूमिका कीचड़ भी लगभग सूख जाता है और काश, सप्तपर्ण, कमल, शालिके खिलनेसे भूमि शोभित होती है। बादलोंके हट जानेसे सूर्य भी अपनी तीक्ष्ण किरणोंको फेंकता है। दिशाएँ पिंगल, अति निर्मल तथा क्रौञ्च पक्षियोंकी मालासे भरी रहती हैं। कमलोंके अन्दर छिपी मछली, हंसोंके परस्पर कन्धोंके टकरानेसे उत्पन्न तरंगोंके टूटनेसे ऊँचे बने निर्मल तालाब दीखते हैं।

शिशिर ऋतुको हेमन्त ऋतुमें—शीतऋतुमें स्वीकार कर लिया गया है। इसलिए इस ऋतुमें हेमन्तकी चर्चा ही अधिक रूपमें की जाती है [**शिशिर शीतमधिकं मेघमारुतवर्षजम्**] अतएव उसका विशेष रूपसे पृथक् उल्लेख आवश्यक नहीं।

भूमि या देशका वर्णन

चिकित्साकी दृष्टिसे देश तीन प्रकारके हैं। १—जांगल देश—जैसे राजपूतानामें मारवाड़ प्रदेश, २—आनूप देश-जैसे बंगाल-आसाम—३—साधारण देश—जैसा उत्तर प्रदेश या पंजाबका प्रदेश।

अत्रिपुत्रने इन तीनों देशोंका सुन्दर चित्रण किया है; यथा—

"त्रिविधः खलु देशो जाङ्गलोऽनूपः साधारणश्चेति। तत्र जाङ्गलः पर्याकाशभूयिष्ठः तरुभिरपि च कदरखदिरासनाश्वकर्णधवतिनिशशल्लकीसालसोमवल्कबदरीतिन्दुकाश्वत्थवटामलकीगहनः अनेकशमीककुभशिंशपाप्रायः, स्थिरशुष्कपवनबलविधूयमानप्रनृत्यत्तरुणविटपः, प्रततमृगतृष्णिकोपगूढस्तनुखरपरुषसिकताशर्कराबहुलः, लावतित्तिरचकोरानुचरितभूमिभागो, वातपित्तबहुलः स्थिरकठिनमनुष्यप्रायो ज्ञेयः ॥

देश तीन प्रकारके हैं—जांगल, आनूप और साधारण। इनमें जांगल देशमें—आकाश चारों ओरसे खुला दृष्टिगोचर आता है। कदर, खैर, असन,

अश्वकर्ण, धव, तिनिश, शल्लकी, साल, सोमवल्क, बेर, तिन्दुक, पीपल, बरगद, आंवलाके वृक्षोंसे भरा; शमी और शीशमके वृक्ष जहाँ पर बहुतायत से हों, जहाँ पर स्थिर शुष्क वायुके वेगके कारण छोटे-छोटे वृक्ष हिलते रहते हों [झाड़ियाँ अधिक हों] निरन्तर मृगतृष्णाका भ्रम उत्पन्न करनेवाली पतली कर्कश-रेती-धूल जहाँ पर बहुत हो, बटेर-तीतर-चकोर चिड़ियाँ अधिक हों, वात-पित्तकी अधिकता वाला, जहाँके मनुष्य स्थिरकठिन हों, वह जांगल देश है [तभी महाराणा प्रताप सम्राट अकबरसे टक्कर लेते रहे क्योंकि उनका जन्म ऐसी ही भूमिमें हुआ था][1]।

२—"अथानूपो हिन्तालतमालनारिकेलकदलीवनगहनः सरित्समुद्रपर्यन्तप्रायः शिशिरपवनबहुलो वञ्जुलवानीरोपशोभिततीराभिः सरिद्भिरुपगतभूमिभागः क्षितिधरनिकुञ्जोपशोभितो मन्दपवनानुवीजितक्षितिरुहगहनः अनेकवनराजीपुष्पितवनगहनभूमिभागः स्निग्धतरुप्रतानोपगूढो हंसचक्रवाकबलाकानन्दीमुखपुण्डरीककादम्बमद्गुभृङ्गराजशतपुत्रमत्तकोकिलानुनादिततरुविटपः सुकुमारपुरुषः पवनकफप्रायो ज्ञेयः।

आनूप देश—हिन्ताल–श्रीताल, तमाल, नारियल, केलेके वनोंसे भरा, नदियों और समुद्रसे घिरा तथा ठण्डी वायु वाला होता है। वञ्जुल वानीर [बेंत] से शोभित किनारोंवाली नदियोंसे इसका भूमि भाग भरा होता है। पर्वतोंके निकुञ्जोंसे शोभित धीमी वायुसे हिलते हुए वृक्षोंसे घना होता है। अनेक प्रकारके पुष्प जंगलमें खिले रहते हैं, वृक्ष भी स्निग्ध और बहुत शाखा-प्रशाखावाले होते हैं। हंस, चक्रवाक, बलाका, नन्दीमुख, पुण्डरीक, कादम्ब, मद्गु, भृङ्गराज, शतपत्र एवं मत्तकोकिलके कलरवसे वृक्ष गूँजते रहते हैं। यहाँके मनुष्य कोमल–नाजुक प्रकृतिके [विलासी]

---

१. इसीलिए सेनाके लिए रोहतकके इलाकेके जाट अच्छे समझे जाते हैं।

होते हैं [मुर्शिदाबादके नवाब इतिहासमें महत्त्व रखते हैं]। इस देशमें वायु और कफकी अधिकता रहती है।

३—अनयोरेव द्वयोर्देशयोर्वीरुद्वनस्पतिवानस्पत्यशकुनिमृगगणयुतः स्थिरसुकुमारबलवर्णसंहननोपपन्नसाधारणगुणयुक्तपुरुषः साधारणो ज्ञेयः।

साधारण देश—जांगल और आनूप दोनों देशोंके लक्षण जिस देशमें मिलते हों, जहाँ पर वीरुत्-लता, वनस्पति–फल आने पर जो मुर्झा जाती है [यथा गेहूँ], वानस्पत्य–पुष्प आनेके पीछे जिसमें फल आता है [आम आदि] प्रचुरतासे हों, पशु-पक्षी अधिक हों, जहाँके मनुष्य स्थिर, शुभ्र वर्ण–गौर वर्ण, बल–गठनसे युक्त [यथा-मिन्टगुमरी या लायलपुरका प्रदेश या दिल्लीके आसपासका प्रदेश] पुरुषोंवाला देश साधारण देश है।

शरीरके दाह–संतापकी चिकित्सा [रक्तपित्त चिकित्सा]

धारागृहं भूमिगृहं सुशीतं वनं च रम्यं जलवातशीतम्।
वैदूर्यमुक्तामणिभाजनानां स्पर्शाश्च दाहे शिशिराम्बुशीताः॥
पत्राणि पुष्पाणि च वारिजानां क्षौमं च शीतं कदलीदलानि।
प्रच्छादनार्थं शयनासनानां पद्मोत्पलानां च दलाः प्रशस्ताः॥
प्रियंगुकाचन्दनरूषितानां स्पर्शाः प्रियाणां च वराङ्गनानाम्।
दाहे प्रशस्ताः सजलाः सुशीताः पद्मोत्पलानां च कलापवाताः॥
सरिद्ध्रदानां हिमवद्दरीणां चन्द्रोदयानां कमलाकराणाम्।
मनोऽनुकूलाः शिशिराश्च सर्वाः कथाः सरक्तं शमयन्ति पित्तम्॥

—चरक।

धारागृह [जिस घरमें पानीमें फुहारे पड़ रही हों], भूमिगृह [भूमिके तहखाने], शीतल रम्यवन, ठण्डी वायु, ठण्डा जल, वैडूर्य-मुक्ता-मणिके बने, पानीसे शीतल किये—जिनमें ठण्डा पानी भरा हो ऐसे पात्र दाहमें स्पर्श करनेके लिए उत्तम हैं। सरोवरमें उत्पन्न पत्र और पुष्प, अलसी, शीतल

केलेके पत्र; शयन और आसनको ढँकनेके लिए उत्तम हैं; कमलके पत्ते बिस्तर और बैठनेकी गद्दी पर बिछाने चाहिए। प्रियंगु-चन्दनका लेप लगाये प्रिय स्त्रियोंका स्पर्श दाहमें उत्तम है। कमलोंसे आती हुई, जलके कणोंसे शीतल बनी वायु प्रशस्त है।

मनके अनुकूल शीतल वस्तुएँ तथा नदी सम्बन्धी, पर्वतोंकी, पर्वतोंकी कन्दराओंकी, चन्द्रोदयकी, सरोवरोंकी; इसी प्रकारकी अन्य कथाएँ रक्तपित्तका शमन करती है।

छन्दरचना

अष्टांगहृदय और संग्रहमें कुछ रचनाएँ ऐसे सुन्दर ढंगसे की गई हैं, जिससे छन्दका नाम उसी पद्यमें स्वर्णमें नगकी भाँति जड़ गया है। यथा—

स्वागता—

बीजकस्य रसमङ्कुलिहार्यं
शर्करा मधु घृतं त्रिफलां च।
शीलवत्सु पुरुषेषु जरत्ता
स्वागताऽपि विनिवर्त्तत एव॥ —संग्रह।

पुष्पिताग्रा—

मधुमखमिव सोत्पलं प्रियायाः
कलरणना प्रियवादिनी प्रियेव।
कुसुमचयमनोरमा च शय्या
किसलयिनी लतिकेव पुष्पिताग्रा॥ —संग्रह।

पृथ्वी—

नवामलकशुक्तयो मधुघृतं रजश्चायसं
चतुष्टयमयोघटस्थमिति चूर्णितं वत्सरम्।
क्रमेण लिहतः पयोऽनुपिबतश्च पथ्याशिन-
श्चिरं भवति जीवितं क्षयमुपैति पृथ्वी जरा॥ —संग्रह।

शार्दूल—

हिङ्गूग्राविडशुण्ठ्यजाजिविजया वाप्याभिधानामयै-
श्चूर्णैः कुम्भनिकुम्भमूलसहितैः भागोत्तरं वर्धितैः ।
पीतः कोष्णजलेन कोष्ठजरुजो गुल्मोदरादीनयं
शार्दूलं प्रसभं प्रमथ्य हरति व्याधीन् मृगौघानीव ॥—हृदय ।

द्रुतविलम्बित—

सह चरं सुरदारुसनागरं क्वथितमम्भसि तैलविमिश्रितम् ।
पवनपीडितदेहगतिं पिबन् द्रुतविलम्बितगो भवतीच्छया ॥
—वातव्याधि ।

छेकानुप्रास-यमक—

१—कायमाने चिते चूतप्रवालफललुम्बिभिः ।
कदलीदलकह्लारमृणालकमलोत्पलैः ॥
—सू० अ० ३।३५ ।

२—तप्तं तप्तांशुकिरणैः शीतं शीताम्बुरश्मिभिः ।
समन्तादप्यहोरात्रमगस्त्योदयनिर्विषम् ॥
—सू० अ० ३।५१ ।

३—पद्मेन्द्रगोपहेमाविशशलोहितलोहितम् ।
लोहितं प्रभवं शुद्धं तनोस्तेनैव च स्थितिः ॥
—सू० अ० २७।१ ।

४—शनैः शनैः शनैर्मेही मन्दं मन्दं प्रमेहति ॥
—नि० अ० १०।१३ ।

५—भुक्तरक्तविरिक्तस्य रिक्तकोष्ठस्य कुष्ठिनः ।
प्रभञ्जनस्तथाह्यस्य न स्याद्देहप्रभञ्जनः ॥
—चि० अ० ११।१७

६—सिद्धं योगं प्राह यक्षो मुमुक्षोः
भिक्षोः प्राणान् माणिभद्रः किलेमम् ॥
—चि० अ० १९।३२ ।

७—तिलेन सह माषिकेण पललेन सूपेन वा ।
वपुष्करमरुष्करं परममेध्यमायुष्करम् ॥
—उ० अ० ३९।८० ।

८—प्राज्ञाः कलाज्ञा वशगा विनेताः प्रियंवदा प्रीतिकरा वयस्याः ।
विस्रम्भसत्त्वप्रकृतिक्रियैक्याच्छरीरमात्रेण पृथक्त्वभूताः ॥
—उत्तर ५० ।

कान्तावनान्ताः परपुष्टघुष्टा रम्याः स्रवन्त्यः सततं स्रवन्त्यः ।
मद्यं मदामोदकरं विशेषाद्हृद्या प्रसन्ना सुरभिप्रसन्ना ॥

इस प्रकार और भी उदाहरण ढूंढ़े जा सकते हैं, जो काव्यकी दृष्टिसे उत्तम रचनाकी कोटिमें आ जाते हैं ।

उपमाएँ

आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें जो उपमाएँ आई हैं, वे अपनी दृष्टिसे निराली हैं । चरककी उपमाओंके कुछ उदाहरण लेखककी पुस्तक **चरक संहिताका अनुशीलनमें** दिये हैं । यहाँ पर सामान्य रूपसे कुछ उपमाएँ उपस्थित की जा रही हैं—

संतानके प्रेमके विषयमें वाग्भटका निम्न श्लोक कालिदासके अभिज्ञानशाकुन्तलके श्लोकका हठात् स्मरण करा देता है । देखिये—

स्खलद्गमनमव्यक्तं वचनं धूलिधूसरम् ।
अपि लालाविलमुखं हृदयाह्लादकारकम् ॥—हृ० उ० ५०।१० ।

कालिदासका श्लोक—

आलक्ष्यदन्तमुकुलाननिमित्तहासै-
रव्यक्तवर्णरमणीयवचःप्रवृत्तीन् ।
अङ्काश्रयप्रणयिनस्तनयान् वहन्तो
धन्यास्तदङ्गरजसा मलिनीभवन्ति ॥

—शाकु० ७।१७ ।

१—जिस प्रकार कृतज्ञ पुरुषके प्रति एक बार किया भी कोई कार्य चिरस्थायी होता है, उसी प्रकार हरड़को घीमें ऊष्ण कर गरम-गरम खाकर घी पीनेसे शरीरमें बल स्थिर होता है—

हरीतकीं सर्पिषि सम्प्रताप्य समश्नतस्तत् पिबतो घृतं च ।
भवेच्चिरस्थायि बलं शरीरे सकृत्कृतं साधु यथा कृतज्ञे ॥ —संग्रह ।

२—अश्वगन्धा चूर्णको पन्द्रह दिन तक दूधके साथ, घीसे, तैलसे या गुनगुने पानीके साथ पीनेसे कृश बालकमें पुष्टि आती है, जिस प्रकार सुवृष्टि छोटे शस्यको पुष्ट बनाती है—

पीताश्वगन्धा पयसार्द्धमासं घृतेन तैलेन सुखाम्बुना वा ।
कृशस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते बालस्य सस्यस्य यथा सुवृष्टिः ॥—संग्रह ।

३—शतावरीके कल्क और कषायसे सिद्ध घृतको शर्कराके साथ जो व्यक्ति खाते हैं, उनको जीवनके मार्गमें चोररूपी रोग नहीं लूट सकते ।

शतावरीकल्ककषायसिद्धं ये सर्पिरश्नन्ति सितर्द्वितीयम् ।
तान् जीविताध्वानभिप्रपन्नान् न विप्रलुम्पन्ति विकारचौराः ॥

—संग्रह ।

४—जठराग्निके निर्बल होनेपर उत्तम योग भी दिये हुए व्यर्थ होते हैं, जिस प्रकार कृतघ्न व्यक्तिमें किये उपकार व्यर्थ होते हैं। ये ही योग

अग्निके प्रदीप्त होने पर देनेसे अति गुणकारी होते हैं, जिस प्रकार योग्य पात्रमें दिया दान फलवान होता है—

आयुर्योगाः साध्वपि युक्ता मृदुवह्नौ
नैरर्थ्यक्यं यान्ति कृतघ्नेऽप्युपकाराः।
दीप्ते वह्नौ ते तु गुणौघैरपि तुच्छा
विस्तीर्यन्ते पात्रनिसृष्टा इव भोगाः॥ —संग्रह।

५—जिस प्रकार शुष्क लकड़ी भी स्नेह और स्वेदनसे इच्छानुसार मोड़ी जा सकती है, उसी प्रकार स्नेह और स्वेदनसे मनुष्य भी नरम किया जा सकता है—

शुष्काण्यपि काष्ठानि स्नेहस्वेदोपपादनैः।
नमयन्ति यथा न्यायं किं पुनर्जीवतो नरान्॥ —चरक।

६—पानीके निकाल देनेसे जिस प्रकार मछली आदि चर और कमल आदि स्थावर सृष्टिका नाश हो जाता है, उसी प्रकार विरेचनसे पित्त निकाल-देनेपर पित्तजन्यरोग नष्ट हो जाते हैं—

यथौदकानामुदकेऽपनीते चरस्थिराणां भवति प्रणाशः।
पित्ते हृते त्वेवमुपद्रवाणां पित्तात्मकानां भवति प्रणाशः॥

—सुश्रुत।

७—वृक्षके काट देने पर जिस प्रकार पुष्प-फल-अंकुर सब एक साथ नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार वमन द्वारा कफका शोधन कर देने पर कफजन्य सब रोग एक दमसे नष्ट हो जाते हैं—

छिन्ने तरौ पुष्पफलप्ररोहा यथा विनाशं सहसा व्रजन्ति।
तथा हृते श्लेष्मणि शोधनेन तज्जाः विकाराः प्रशमं प्रयान्ति॥

—सुश्रुत

८—शरीरका स्नेहन किये बिना कभी स्वेद नहीं देना चाहिए, क्योंकि लोकमें हम देखते हैं कि लकड़ीको बिना चिकना किये गरम करनेपर मोड़नेसे टूट जाती है—

न नाभ्यक्ते नापि चास्निग्धदेहे स्वेदो योज्यः स्वेदविद्‌भिः कथञ्चित् ।
दृष्टं लोके काष्ठमस्निग्धमाशु गच्छेद् भंग्नं स्वेदयोगैः गृहीतम् ॥

९—जिस प्रकार दिनभर उड़नेपर भी पक्षी अपनी छायाको लांघ नहीं सकता, उसी प्रकार कोई भी रोग वात-पित्त-कफके बिना नहीं हो सकता—

"यथा हि शकुनिः सर्वदिवसमपि परिपतन्स्वां छायां नातिवर्त्तते, तथा स्वधातुवैषम्यनिमित्ताः सर्वविकारा वातपित्तकफान्नातिवर्त्तन्ते । —चरक ।

१०—जिस प्रकार वस्त्र जितना पानी सोख सकता है, उतना ले लेता है, शेष बाकी रह जाता है; उसी प्रकार अग्नि जितने स्नेहको जीर्ण कर सकती है, जीर्ण करती है; शेष अधिक स्नेह निकल जाता है। जिस प्रकार जल मिट्टीके ढेलेको जल्दीसे गीला करके बह जाता है; उसी प्रकार अतिमात्रामें लिया स्नेह शरीरका स्नेहन करके शेष निकल जाता है [शरीरमें नहीं रहता] ।

गृह्णात्यम्बु यथा वस्त्रं प्रस्रवत्यधिकं तथा ।
यथाग्निर्जीर्यति स्नेहस्तथा स्रवति चाधिकः ॥
यथा चाक्लेद्यमृत्पिण्डमासिक्तं त्वरया जलम् ।
स्रवति, स्रंसते स्नेहस्तथा त्वरितसेवितः ॥

—चरक ।

११—जिस प्रकार बहेलिया वनमें जाकर जाल बिछाकर पक्षियोंको फंसाना चाहता है, उसी प्रकार रोगाभिसर-कुवैद्य रोगीके घरमें जाकर रोगी को फँसाना चाहता है। जो व्यक्ति केवल जीविका प्राप्तिके लिए नाम धारण किये हों, उनको वायु पिये हुए साँप समझकर उनसे बचे ।

भिषक्छद्म प्रविश्यैवं व्याधितांस्तर्कयन्ति ये ।
वीतंसमिव संश्रित्य वने शाकुन्तिका द्विजान् ।
वृत्तिहेतोर्भिषङ्मानपूर्णान्मूर्खविशारदान् ।
वर्जयेदातुरो विद्वान् सर्पास्ते पीतमारुताः ॥

—चरक ।

१२–जिस प्रकार जलते हुए घरको पानीसे ठण्डा किया जाता है, उसी प्रकार जीर्ण ज्वरमें घृतका उपयोग लाभकारी है—

यथा प्रज्वलितं वेश्म परिषिञ्चन्ति वारिणा ।
नराः शान्तिमभिप्रेत्य तथा जीर्णज्वरे घृतम् ॥

—चरक ।

१३–आयुर्वेदमें कुछ रोगोंके नाम तुलना रूपमें ही रखे गये है । यथा-वल्मीक (बिम्बी) के समान उभरी गांठको वल्मीक कहा गया है । विदारी कन्दके समान गाँठको विदारिका कहा है । इसी प्रकार वात-पित्त-कफसे भिन्न भिन्न रूप रंगकी जो अश्मरियाँ मूत्राशयमें बनती हैं, उनकी उपमा उसी प्रकारके फलोंसे दी है । यथा–

[क] **कदम्बपुष्पाकृतिरश्मतुल्या श्लक्ष्णा त्रिपुट्यप्यथवाऽपि मृद्वी ॥**

—चरक ।

[ख] **अश्मरी चात्र श्यावा परुषा विषमा खरा कदम्बपुष्पवत्कण्टकाचिता भवति ।** [ग] **अश्मरी चात्र सरक्ता पीतावभासा कृष्णा भल्लातकास्थिप्रतिमा मधुवर्णा वा भवति ।** [घ] **अश्मरी चात्र श्वेता स्निग्धा महती कुक्कुटाण्ड प्रतीकाशा मधूकपुष्पवर्णा वा भवति ।**

गुल्मरोगका नाम भी गुल्मकी भाँति वायुका रूप होनेसे गुल्म कहा जाता है—

गुपितानिलमूलत्वाद् गूढमूलोदयादपि ।
गुल्मवद्वा विशालत्वात् गुल्म इत्यभिधीयते ॥

प्रमेहोंके उदकमेह, ईक्षुमेह, पिष्टमेह, लाला मेह आदि जो नाम दिये गये हैं; वे नाम इन वस्तुओंकी तुलनासे ही रक्खे हैं, जिससे इनका रूप ठीक-ठीक समझमें आ जाए ।

१४—सोमराजीका काले तिलोंके साथ एक साल तक प्रयोग करनेसे शरीर चन्द्रमाकी कान्ति जैसा निर्मल हो जाता है । सोमराजीके चूर्णको दूध में पकाकर इस दूधसे दही बनाये, इस दहीकी मलाई या घीको मधुके साथ खानेसे जिस कुष्ठ रोगीके अंगुली, नासिका आदि गिर चुकी होती है, उसके पुनः निकल आती हैं, जिस प्रकार वृक्ष पुनः नये पत्ते आनेसे शोभित होते हैं ।

तीव्रेण कुष्ठेन परीतमूर्त्तिः यः सोमराजीं नियमेन खादेत् ।
संवत्सरं कृष्णतिलद्वितीयां स सोमराजीं वपुषातिशेते ॥

यः सोमराज्या वितुषीकृताया चूर्णैरुपेतात् पयसः सुजातात् ।
उद्धृत्य सारं मधुना लिहन्ति तक्रं तदेवानु पिबन्ति चान्ते ॥

ते कुष्ठिनः पक्ष्मदरिद्रनेत्रा विशीर्णकर्णाङ्गुलिनासिका वा ।
विहाय वैरूप्यमपास्य रूपं पुनः प्ररूढा इव भान्ति वृक्षाः ॥—संग्रह ।

१५—जिस प्रकार भरे हुए तैल पात्रकी सम्हाल की जाती है, जिस प्रकार तरुण अण्डकी [बच्चेकी या अण्डेकी] देख भाल करनी पड़ती है; और जिस प्रकार ग्वाला अपने गायोंके प्रति चौकस रहता है, उसी प्रकारसे पंचकर्म किये रोगीका ध्यान—उसकी देख रेख करनी होती है—

यथाऽण्डं तरुणं पूर्णं तैलपात्रं यथैव च ।
गोपाल इव दण्डी गाः सर्वस्मादपचारतः ॥ —चरक ।

१६—जिस प्रकार एक गाड़ी ठीक स्वाभाविक गुणोंसे युक्त, ठीक प्रकारसे चलाने पर अपना समय आने पर ही टूटती है, उसी प्रकार मनुष्यकी आयु है। यदि यही गाड़ी ठीकसे न चलाई जाये, विषम रास्तेसे खींची जाये अधिक भार लाद दिया जाये तो समयके पूर्व नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार मनुष्यकी आयु भी ठीक संयमसे न रखने पर समयसे पूर्व ही समाप्त हो जाती है।

"यथा यानसमायुक्तोऽक्षः प्रकृत्यैवाक्षगुणैरुपेतः स च सर्वगुणोपपन्नो बाह्यमानो यथा कालं स्वप्रमाणक्षयादेवावसानं गच्छेत्, तथाऽऽयुः शरीरोपगतं बलवत्प्रकृत्या यथावदुपचर्यमाणं स्वप्रमाणक्षयादेवावसानं गच्छति। स मृत्युकाले। यथा च स एवाक्षोऽतिभाराधिष्ठितत्वात् विषमपथादपथात् अक्षचक्रभंगात् वाह्यवाहकदोषात् अणिमोक्षात् पर्यसनादनुपाङ्गान्तराऽवसानमापद्यते। तथाऽऽयुरप्ययथाबलमारम्भात्.................. ......यावदन्तराऽवसानमापद्यते। स मृत्युरकाले।

१७—संतानरहित पुरुष सूखे हुए तालाबके समान हैं और संतानवाला पुरुष बड़े विशाल वृक्षकी भाँति है—

> **अच्छायश्चैकशाखश्च निष्फलश्च यथा द्रुमः।**[1]
> **अनिष्टगन्धश्चैकश्च निरपत्यस्तथा नरः॥**
> **चित्रदीपः सरः शुष्कमधातुर्धातुसन्निभः।**
> **निष्पुत्रस्तृणपूलीति मन्तव्यः पुरुषाकृतिः॥**

---

१. कौनसा वृक्ष अच्छा है इसका उल्लेख पंचतंत्रमें है—

> छायासुप्तमृगः शकुन्तनिवहैर्विष्वग् विलुप्तच्छदः
> कीटैरावृतकोटरः कपिकुलैः स्कन्धे कृतप्रश्रयः।
> विश्रब्धं मधुपैर्निपीतकुसुमः श्लाघ्यः स एव द्रुमः
> सर्वाङ्गैर्बहुसत्त्वसङ्गसुखदो भूभारभूतोऽपरः॥ —पंचतंत्र।

अप्रतिष्ठश्च नग्नश्च शून्यैश्चैकेन्द्रियश्च ना।
मन्तव्यो निष्क्रियश्चैव यस्यापत्यं न विद्यते॥
बहुमूर्त्तिर्बहुमुखो बहुव्यूहो बहुक्रियः।
बहुचक्षुर्बहुज्ञानो बह्वात्मा च बहुप्रजाः॥ ––चरक।

रसोन-वर्णन

नावनीतकका प्रारम्भ ही रसोनकी उत्पत्तिसे होता है। इसका जो सुन्दर वर्णन किया गया है, वह द्रष्टव्य है—

दृष्ट्वा पत्रैर्हरितहरितैरिन्द्रनीलप्रकाशैः
कन्दैः कुन्दस्फटिककुमुदेन्द्वंशुशंखाभ्रशुभ्रैः।
उत्पन्नास्थो म (मु) निमुपगतः सुश्रुतः काशिराजं
किन्त्वेतत्स्यादथ स भगवानाह तस्मै यथावत्॥
लवणरस [वियोगादा] हुरेनं रशूनमू [रसोनम्]
लशुन इति तु संज्ञा चास्य लोकप्रतीता।
बहुभिरिह किमुक्तैर्देशभाषाभिधानैः
श्रृणु रसगुणवीर्याण्यस्य चैवोपयोगान्॥

चरक और सुश्रुतमें रसोनका उल्लेख सामान्य रूपसे औषधरूपमें है, परन्तु नावनीतक, अष्टांगसंग्रह, अष्टांगहृदय और काश्यप संहितामें इसका विस्तारसे उल्लेख है। इन सब ग्रन्थोंमें इसका उपयोग रसायनके रूपमें बताया गया है। स्त्रियोंके लिए यह विशेष उपयोगी है। यथा—

सौभाग्यं वर्धते चासां दृढं भवति यौवनम्।
प्रमदाऽतिविधायापि लशुनैः प्राप्यते मृजाम्॥
न चैनां संप्रबाधन्ते ग्राम्यधर्मोद्भवाः गदाः।
कटिश्रोण्यङ्गमूलानां न जातु वशगा भवेत्॥
न जातु वन्ध्या भवति न जात्वप्रियदर्शना।
न रूपं भ्रंश्यते चासां न प्रजा न बलायुषी॥—काश्यप।

इस बातकी पुष्टि संग्रह तथा नावनीतकमें हम देखते हैं—इसके सेवनकी विधि विस्तारसे दी गयी है। संक्षेपमें—

विकुंचकप्राज्यरसोनगर्भान् सशूल्यमांसान् विविधोपदंशान्।
निमर्दकान् वा घृतशुक्तयुक्तान् प्रकाममद्याल्लघुतुच्छमश्नन्॥

कुस्तुम्बरीजीरकभृष्टमुद्गसौवर्चलश्लक्ष्णरजोवकीर्णैः।
रसोनकन्दांकुरपत्रचित्रैः सव्यन्जनैः नैकरसानुयातैः॥

कृशोश्वगन्धोद्भवचूर्णकीर्णं सन्नस्वरोयष्टिमधूपधानम्।
तैलेन गुल्मी खदिरेण कुष्ठी खादेत् कृमिघ्नैः कृमिमान् रसोनम्॥

अपथ्य—

आभाम्बुपानेक्षुविकारमत्स्ययानाध्ववातातपभाष्यचिन्ता।
स्वप्नं दिवा जागरणं निशासु कष्टं व्यवायं दधि चात्र नेच्छेत्॥

सेवनविधि—

अथ बहुविधमद्यमांससर्पिर्यवगोधूमभुजां सुखात्मकानाम्।
अयमिह लशुनोत्सवः प्रयोज्यो हिमकाले च मधौ च माधवे च॥

त्यजन्ते कामिनीभिर्जयनसमुचिता यत्र काञ्चीकलापाः
हाराः शैत्यान्न वक्षस्तनतटयुगला पीडनात्संप्रयान्ति।
कान्ता नेन्द्वंशुजालव्यतिकरसुभगा हर्म्यपृष्ठोपभोगाः
काले तस्मिन्प्रयोज्यो ह्यगुरुबहुमतं कुङ्कुमाश्च [?] यत्र॥
हर्म्याग्रेष्वथ तोरणेषु वलभीद्वारेषु चाविष्कृताः
कन्दाद्या लशुनस्रजो विरचयेद् भूमौ [त] थैवार्च्चनम्।
मालास्तत्परिचारकस्य च जनस्यारोपेयत्तन्मयी-
रित्यस्यैष विधिः जनस्य विहितः स्वल्पोव[प]मानामतः॥

—नावनीतक।

मासः परोऽस्य रसकल्कनिषेवणाय
स्वच्छन्दमप्युदिशन्ति निमर्दकैस्तु ।
षण्मासमन्यविधिना न तु शस्तमाहुः
पक्षप्रयोगमपि हीनतरं रसोने ॥ —संग्रह ।

सुरातृतीयांशविमूर्च्छितस्य गण्डूषमेकं प्रपिबेद् रसस्य ।
पूर्वंगलक्क्रीडवि [धान्] हेतोः स्थित्वा मुहूर्त्तञ्च पिबेदशेषम् ॥
—नावनीतक ।

लहसुनके साथ ही पलाण्डुका वर्णन भी उसी प्रकार किया है—

यस्योपयोगेन शकाङ्गनानां लावण्यसारादिविनिर्मितानाम् ।
कपोलकान्त्या विजितः शशाङ्को रसातलं गच्छति निर्विदेव ॥
स्निग्धाङ्गत्वं गौरता कान्तिमत्ता बह्वर्दीप्तिर्वर्णपुष्टिवृष्यत्वम् ।
सम्प्राप्यन्ते यंत्रणोद्वेगमुक्तैर्यस्याभ्यासाद् धारि दीर्घं सुखं च ॥
अप्याहारे शीलितो दीर्घरात्रं वल्यश्चक्षुष्यस्तर्पणः स्थैर्यकारी ।
तैस्तैर्योगैर्योजितोऽयं पलाण्डुस्तांस्तानाङ्कान् मेहिनामुच्छिनत्ति ॥

लहसुन और पलाण्डुका उपयोग द्विज लोग प्रायः नहीं करते। इसका कारण इसकी उत्पत्ति अशुद्ध रूपमें हुई है। यथा—

पुरामृतं प्रमथितमसुरेन्द्रः स्वयं पपौ ।
तस्य चिच्छेद भगवानुत्तमाङ्गं जनार्दनः ॥
कण्ठनाड़ीसमासन्ना विच्छिन्नो तस्य मूर्धनि ।
विन्दवः पतिता भूमावाद्यं तस्येह जन्म तु ॥
न भक्षयन्त्येनमतश्च विप्राः शरीरसंपर्कविनिःसृतत्वात् ।
गन्धोग्रतामप्यत एव चास्य वदन्ति शास्त्राधिगमप्रवीणाः ॥[1]
—नावनीतकम् ।

---

१. काश्यप संहितामें लशुनकी उत्पति दूसरे ही प्रकारसे दी है ।

मद्य-सेवनका वर्णन

आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें विशेषतः गुप्तकालमें ग्रन्थोंमें चिकित्साकी दृष्टि से,स्वास्थ्यकी दृष्टिसे मद्य, मांस और लशुनका उपयोग विशेष रूपसे मिलता है; जिसका कारण यवन देश तथा ग्रीक संस्कृतिका सम्बन्ध होना है। यहाँके निवासी इनका उपयोग करें, इसीलिए इनके वर्णनमें भी लालित्य, काव्य रस भरा है। स्त्रियाँ भी मद्य पीती थीं। इसका उल्लेख संग्रहमें भी है और कालिदासने भी किया है [**पुष्पासवाघूर्णितनेत्रशोभि–विक्रम० ३।३८**]। मद्य पीनेसे स्त्रियोंकी आंखोंमें एक विशेष कमनीयता आती है, ऐसी कालिदासकी मान्यता है। इसीसे यक्षकी पत्नीने वियोगमें जब मद्यपान छोड़ दिया तब उसे भ्रूविलास भी भूल गये। यथा—

"**प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रूविलासम्**" —मेघ० उत्तर ३५।

मद्यपानका वर्णन देखिये—

[१] **मुक्ताकलापाः शशिरश्मिशुभ्राः मृणालपद्मोत्पलपत्ररम्याः।**
सेकावगाहाः सजला जलार्द्रा वाताः सुशीता मणयो महार्हा ॥

शृणु सौम्य ! यथोत्पन्नं लशुनं सपरायणम्।
न लेभे गर्भमिन्द्राणी यथा वर्षशतादपि।
तदेनां खादयामास शक्रोऽमृतमिति श्रुतिः ॥
सव्येन परिरभ्यैनां बाहुना चारुणा स्निहा।
व्रीडन्तीं सान्त्वयन् देवीं पतिः भार्यामपाययत् ॥
....

यदृच्छया च गामागादमेध्ये निपपात च।
ततोऽब्रवीच्छचीमिन्द्रो बहुपुत्रा भविष्यसि ॥
एतच्चाप्यमृतं भूमौ भविष्यति रसायनम्।
स्थानदोषात्तु दुर्गन्धं भविष्यत्यद्विजोपगम् ॥

अलिञ्जराः पद्मपुटाभिधाना प्रवालवर्णा हिमवारिपूर्णाः ।
परिस्रवन्तो दृतयो महान्तपुत्राः प्रियादर्पणमण्डलानि ॥

नार्यश्च नेत्रोत्पलकर्णपूरा मध्यं वयः किञ्चिदिव स्पृशन्त्यः ।
मनोऽनुकूला हरिचन्दनार्द्रास्तृड्दाहमूर्छान् दवथून् जयन्ति ॥

करेणुकाभिः परिवारितेन विक्षोभणं वारणयूथनेन ।
आस्फालनं शीकरवर्षणं च सिन्धोः स्मरन् दाहतृषोरगम्यः ॥

सरिद्ह्रदानां हिमवद्दरीणां चन्द्रोदयानां कमलाकराणाम् ।
मनोरमान्यापि कथा प्रवृत्ता दाहं च तृष्णां च निहन्ति सद्यः ॥

लाजोत्पलोशीरकुचन्दनाम्बुशीताभिधानं मधुशर्कराढ्यम् ।
मद्योद्भवां पित्तकृतां च तृष्णां सदाहशोषां विनिहन्ति पीतम् ॥

प्रियङ्गुपत्रप्लवलोध्रसेव्यह्रीवेरकालेयकनागपुष्पैः ।
शीताम्बुपिष्टैः नवकर्परस्थैः तृड्दाहहा सर्वशरीरलेपः ॥

[२] स्नातः प्रणम्य सुरविप्रगुरून्यथास्वं वृत्तिं विधाय च समस्तपरिग्रहस्य ।
आपानभूगन्धजलावषिक्तमाहारमण्डपसमीपगतां श्रयेत ॥

स्वाप्स्यतेऽथ शयने कमनीये मित्रभृत्यरमणीसमवेतः ।
स्वयशःकथकचारणसंघैः उद्गतं निशमयन्नतिलकोद्भवम् ॥

विलासिनीनां च विलासशोभि गीतं सनृत्तं कलतूर्यघोषैः ।
काञ्चीकलापैश्चलकिङ्किणीकैः क्रीड़ाविहङ्गैश्च कृतानुनादम् ॥

मणिकनकसमुत्थैरावरेयैर्विचित्रैः
सजलविविधभक्तिक्षौमवस्त्रावृताङ्गैः ।
अपि मुनिजनचित्तक्षोभसंपादिनीभि-
श्चकितहरिणलोलप्रेक्षणीभिः प्रियाभिः ॥

स्तननितम्बकृतादतिगौरवादलसमाकुलमीश्वरसंश्रयात् ।
इति गतं दधतीभिरसंस्थितं तरुणचित्तविलोभनकार्मणम् ॥

यौवनासवमत्ताभिः विलासाधिष्ठितात्मभिः ।
संचार्यमाणं युगपत्तन्वङ्गीभिरितस्ततः ॥
तालवृन्तनलिनीदलानिलैः शीतलीकृतमतीव शीतलैः ।
दर्शनेऽपि विदधद्दशानुगं स्वादितं किमुत चित्तजन्मनः ॥
चूतरसेन्दुमृगैः कृतवासं मल्लिकयोज्ज्वलया च सनाथम् ।
स्फाटिकशुक्तिगतं सतरङ्गं कान्तमनङ्गमिवोद्वहदङ्गम् ॥
तालीसाद्यं चूर्णमेलादिकं वा हृद्यं प्राश्य प्राग्वयस्स्थापनं वा ।
तत्प्रार्थिभ्यो भूमिभागे सुमृष्टे तोयोन्मिश्रं दापयित्वा ततश्च ॥
धृतिमान् स्मृतिमान् नित्यमनूनाधिकमाचरन् ।
उचितेनोपचारेण सर्वमेवोपपालयन् ॥
जितविकसितासितसरोजनयनसंक्रान्तिवर्धितश्रीकम् ।
कान्तामुखमिव सौरभहृतमधुपगणं पिबेन्मद्यम् ॥

—संग्रह० चि० ६ ।

मद्यपान उचित है या अनुचित है, उसकी सीमा कहाँ तक है, यह प्रश्न यहाँ विचारणीय नहीं, यहाँ पर तो केवल काव्य-रचनाकी दृष्टिसे ही विचार करना है । शब्दोंका लालित्य, वर्णचयन, शब्द रचना तथा छन्द ही देखने हैं, इस दृष्टिसे यह वर्णन रसात्मक है ।

विविध द्रव्य गुण संग्रह वर्णन

आयुर्वेदमें औषधियोंके कुछ भिन्न भिन्न समूह हैं । इनमें एक ही प्रकारके गुण करनेवाली औषधियोंका नाम कीर्तन किया गया है । ये गुण स्मरण रह सकें इसलिए इन्हें संग्रहमें पद्य रचनाके रूपमें प्रस्तुत किया गया हैं । यह विषय एक दम सूखा और नीरस है, परन्तु वाग्भटने पद्यका रूप देकर इसमें सरसता उत्पन्न कर दी है । इनमेंसे कुछ पद्य उदाहरण रूपमें उपस्थित हैं—

अर्कालर्कौ नागदन्ती विशल्या भार्ङ्गीरास्नावृश्चिकाली प्रकीर्या ।
प्रत्यक्पुष्पी पीततैलोदकीर्या श्वेता युग्मं तापसानां च वृक्षः ॥
सरसयुगफणिज्झं कालमालो विडङ्गः
खरबुसवृषकर्णां कट्फलं कासमर्दः ।
क्षवकखरसिभार्ङ्गीकामुकाः काकमाची
हुलहुलविषमुष्टी भूस्तृणो भूतकेशी ॥
प्रियङ्गुपुष्पाञ्जनयुग्मपद्मा पद्माद्रजोयोजनवल्यनन्ता ।
सालद्रुमो मोचरसः समङ्गा पुन्नागशीतं मदनीयहेतुः ॥
मुस्तावचाग्निद्विनिशाद्वितिक्ता भल्लातपाठात्रिफला विषाख्याः ।
कुष्ठं त्रुटिं हैमवती च योनिस्तन्यामयघ्ना मलपाचनाश्च ॥
एते वर्गा दोषदूष्याद्यपेक्ष्य कल्कक्वाथस्नेहलेहादियुक्ताः ।
पाने नस्येऽन्वासने वा बहिर्वा लेपाभ्यङ्गैर्घ्नन्ति रोगान् सुकृच्छ्रान् ॥

प्रकीर्ण रचनाएँ

वाग्भटने शुष्क विषयमें भी अपने रचनाकौशलसे इसमें जान डाल दी है और सरसता, कमनीयता भर दी है, क्योंकि रसास्वाद तो हृदयकी वस्तु है, रसको प्राप्त करने पर ही मनुष्यको आनन्द मिलता है [**रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति–उपनिषद्**] । इस रससे आयुर्वेद--आयुका ज्ञान होनेसे किस प्रकार अछूता रह सकता है । इसीलिए दूसरे काव्योंकी भाँति इस शास्त्रमें भी रसास्वाद मिलता है ।

उदाहरणके लिए वैद्यजीवनमेंसे कुछ श्लोक उद्धृत किये जाते हैं । वैद्यजीवनके कर्त्ता श्रीलोलिम्बराज हैं । उनकी अपनी सूचनाके विषयमें उक्ति है कि—

येषां न चेतो ललनासु लग्नं मग्नं न साहित्यसुधासमुद्रे ।
ज्ञास्यन्ति ते किं मम हा प्रयासानन्धा यथा वारवधूविलासान् ॥

जिन व्यक्तियोंका मन स्त्रियोंमें आसक्त नहीं हुआ या जिनके मनने साहित्य सुधाके समुद्रमें गोता नहीं लगाया वे मेरे श्रमको क्या समझ सकते हैं ? वे इसे कुछ भी नहीं समझेंगे, जिस प्रकार अन्धा व्यक्ति वार-वधूके विलासोंको नहीं जानता। ऐसे कविकी कविता कितनी सरस होगी। यह इसीसे समझा जा सकता है, देखिये—

पित्त ज्वरकी चिकित्सा—

अमलैः कमलैरथानिलैरलसैः पुष्परसैः समन्वितैः।
जलकेलिकथाकुतूहलैरपि पित्तज्वरजा रुजो जयेत् ॥

खिले हुए कमल, मन्द मन्द सुगन्धित वायु, जलकी क्रीड़ा, और विस्मय पैदा करनेवाली कथाओंका श्रवण पित्त ज्वरकी पीड़ाको नष्ट करता है।

सशिशिरः सधनः समहौषधः सनलदः सकणः सपयोधरः।
समधुशर्कर एष कषायको जयति बालमृगाक्षि तृतीयकम् ॥

हे बालमृगाक्षि ! लाल चन्दन, धनिया, सोंठ, खस, पीपल, मोथा इनके क्वाथमें मधु और शर्करा मिलाकर पीनेसे तृतीयक ज्वर नष्ट होता है।

अबले कमलातनुरक्तकले चलदक्कमले घृतकामकले।
अमृताब्दशिवं मधुमद्विषमे विषमे विषमेषुविलासरते ॥

हे अबले, लक्ष्मीके समान शरीरकी शोभावाली, कमलके समान चञ्चल नेत्रोंवाली, कामकलामें चतुर ! गिलोय, मोथा, आँवला इनके क्वाथमें मधु मिलाकर पीनेसे विषमज्वर नष्ट होता है।

अयि कुशाग्रसमानमते प्रिये मतिमतामतिमन्मथमंथरे।
ज्वरहरं रुगरिष्टशिवावचायवहविर्जतुसर्षपधूपनम् ॥

हे कुशाग्रबुद्धि ! पण्डितोंसे सम्मानित, कामकी अधिकतासे मन्दगति वाली ! नीमके पत्ते, आँवला, वच, इन्द्रजव, घी, लाख और सरसों इनका धूप ज्वरको नष्ट करता है।

रूपं कीदृक्कमलवदने नुः परे सौ गिरेः स्यात्
संबुद्धिः काः मधुरवचने कोऽग्निबीजस्य षष्ठी।
कस्य क्वाथः श्वसनशमनो वल्लभेनेति पृष्टा
विद्वद्वंद्या द्रुतमिदमदात्सोत्तरं नागरस्य ॥

कमलके समान मुखवाली ! नृ शब्दका सु विभक्तिमें कैसा रूप बनता है [ना], गिरि [पर्वत] के वाचक अग शब्दका संबुद्धिमें क्या रूप है [अग], अग्निके बीज र अक्षरका षष्ठीमें क्या रूप है [रस्य], किस औषधिका क्वाथ श्वासको नष्ट करता है, इस प्रकार लोलिम्बराजसे पूछी जाने पर उसकी विद्वद्वंद्या पत्नीने तुरन्त उत्तर दिया कि नागरस्य [सोंठका] क्वाथ यह सब कार्य करता है।

रावणस्य सुतो हन्यात् मुखवारिजधारितः।
श्वसनं कसनं चापि तमिवानिलनन्दनः ॥

जिस प्रकारसे हनुमानने अक्ष [रावणके पुत्रका नाम] को मार दिया था, उसी प्रकार रावणका पुत्र—अक्ष [बहेड़ा] मुखमें धारण करनेसे श्वास और कासको नष्ट करता है।

पुलोमजावल्लभसूनुपत्नीतातात्मभूशेखरवाहनस्य ।
सौन्दर्यदूरीकृतरामरामे कषायकः काससमीरसर्पः ॥

पुलोमजा-शची, इनका पति इन्द्र, इन्द्रका लड़का अर्जुन, अर्जुनकी पत्नी द्रौपदी; द्रौपदीका पिता द्रुपद, इसका पुत्र शिखण्डी, शिखण्ड-बर्ह-चूड़ा होनेसे शिखण्डीका अर्थ सांप भी है, सर्प जिनके शिरका भूषण-शिव महादेव; महादेवका वाहन वृष-बैल है; वृष जिसका नाम है, उस अडूसाका कषाय कासको उसी प्रकार खाता है, जिस प्रकार सांप वायु को खाता है।

इति निगदितमार्ये नेत्ररोगातुराणां
निशि समधुघृताढ्या सेव्यमाना सुखाय ।
अयि नवशिशुलीलालोलदृष्टे त्वमग्र्या
जनयसि बत कस्माद् वैपरीत्यं परन्तु ॥

हे आर्ये ! नेत्ररोगियोंके लिए रातमें मधु और घृतके साथ त्रिफलाका सेवन उत्तम है, परन्तु नवजात शिशुकी लीलाके समान चंचल दृष्टि वाली तू जो स्त्रियोंमें श्रेष्ठ स्त्री है, वह इसमें विपरीत कार्य करती है। यही दुःखकी बात है। स्त्रीसेवन नेत्र रोगीके लिए हानिकारक है।

श्यामेऽश्यामे प्रियश्यामे श्यामाबोधितमानसे ।
शुक्रं शमयति क्षिप्रं माक्षिकं माक्षिकान्वितम् ॥

हे श्यामे ! अश्यामे (गौरांगी); कृष्णको चाहने वाली ! हे श्यामे [सम्बोधन-नामवाली]; स्वर्णमाक्षिकको मधुके साथ घिसकर अंजन करनेसे नेत्रका शुक्र—फुल्ला नष्ट होता है।

भिन्दन्ति के कुञ्जरकर्णपालीः किमव्ययं वक्ति रते नवोढा ।
सम्बोधनं नुः किमु रक्तपित्तं निहन्ति वामोरु वद त्वमेव ॥

हाथियोंके गण्डस्थलको कौन विदीर्ण करता है [सिंह]; नवोढ़ा स्त्री रतिकालमें कौन सा अव्यय कहती है [न]; नुः का क्या सम्बोधन क्या है [नः]। हे वामोरु ! तुम्ही बताओ कि रक्तपित्तको कौन नष्ट करता है—सिंहानन-वांसा अड़ूसा; रक्तपित्तको नष्ट करता है। प्रसिद्ध भी है—

"वासायां विद्यमानायामाशायां जीवनस्य ।
रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति ॥

अयि रत्नकले कुरुमा कलहं कलहंसकलत्रसलीलगते ।
शृणु मद्वचनं वद वैद्यमणे मदिरा मदिराक्षि शुचं शमयेत् ॥

हे रत्नकले ! कलहंसकी स्त्रीके समान चालवाली, तू झगड़ा मत कर। मेरे वचनोंको सुनो; हे वैद्यमणि कहो। हे मदिराक्षि ! मद्य चिन्ताको शान्त करता है।

अमृतामलकत्रिकण्टकानां हविषा शर्करया निषेवणेन ।
अजरा अमरा अपारवीर्या अलकेशा अदितेः सुता बभूवुः ॥

गिलोय, आंवला, गोखुरुके चूर्णमें शर्करा और घी मिलाकर खानेसे अदितिके पुत्र देवता अजर, अमर, अपार वीर्य और अलकाके स्वामी हुए।

नारायणं भजत रे जठरेण युक्ता
नारायणं भजत रे पवनेन युक्ता ।
नारायणं भजत रे भवभीतियुक्ता
नारायणात्परतरं नहि किञ्चिदस्ति ॥

उदर रोगसे पीड़ित व्यक्तियोंको नारायण चूर्णका सेवन करना चाहिए। वातव्याधिसे पीड़ित व्यक्तियोंको नारायण तैलका सेवन उत्तम है। संसार के बन्धनसे डरे हुए लोगोंको नारायण–विष्णुकी शरणमें जाना चाहिए; नारायणको छोड़कर कोई दूसरा साधन नहीं।

इसी प्रकार जयपुर राज्यके राजवैद्य श्रीकृष्णभट्टजीने सिद्धभैषज्य-मणिमालामें सरस-रचना नये रूपमें उपस्थित की है। यथा—

नयनचुलुकनीये ! तानि पेयानि पुंसा
ज्वररयरुचि चत्वार्यौषधानि प्रपाच्य ।
रसिक ! कथय तेषां नामधेयानि मह्यं
शृणु शशिमुखि ! मिश्री सौंफमक्को वनप्सा ॥

हे चंचल नेत्रों वाली ! मनुष्यको ज्वरकी अरुचिमें चार औषधियोंको पकाकर क्वाथ करके पीना चाहिए। हे रसिक ! उन चार वस्तुओंके नाम मुझे बताओ। हे चन्द्रमुखी, सुनो—इनमें सौंफ, मिश्री, मकोय और वनप्सा है। इनको उबाल कर पीना चाहिए।[1]

---

१. संस्कृत और प्राकृत जातिका उदाहरण है, जैसा विदग्धमुख-मण्डनमें—

भाषाभिश्चित्रितं यत् स्यात् संस्कृतप्राकृतादिभिः ।
सन्तश्चित्रं तदिच्छन्ति संशुद्धं त्वेकभाषया ॥

दिवा दिवाकीर्त्तिकुटुम्बिनीभिः प्रमृष्टकेशा धृतपुष्पवेषाः ।
क्लमं कथाभिः श्लथयन्तु कान्ताः समीरलीलालुलितालकान्ताः ॥

दिवाकीर्त्ति—नाईकी स्त्रियों द्वारा बालोंको दिनमें सँवारे हुए, सुन्दर वेशको धारण किये, वायुसे चञ्चल अलकोंवाली स्त्री उत्तम कथाओंसे ज्वर के थकानको दूर करती है।

पित्ततापितशरीरवल्लरी सा सखी वद हकीम दवाई ।
औषधं शृणु मृगाक्षि ! मनोज्ञं जा गुलाब गुलकन्द खवा दे ॥

पित्त ज्वरसे मेरी सखीका शरीर जल रहा है, उसके लिए हे हकीम, दवाई बताओ । हे मृगाक्षि, औषधि सुनो—गुलाबका गुलकन्द खिला दे ।

ज्वरार्दिता या कटुकान् कषायान्नो चेत् पिबेत् किं वद वैद्य देयम् ।
निबोध हंसीमधुरप्रचारे वहां वनप्सा शरबत पिलावे ॥

ज्वर-रोगी यदि कडुवा कषाय न पिये, तब क्या देना चाहिए । हे हंसके समान चालवाली ! सुनो—वहाँ पर बनप्सेका शर्बत देना चाहिए ।

स्त्रीपूत्तमा भवति का रदनच्छदस्य
संबोधनं किमु च किं सुरसंघलभ्यम् ।
पित्तप्रतापतरलस्तरलाक्षि ! रोगी
कृत्वाऽथ किं वद समालभते प्रशान्तिम् ॥

स्त्रियोंमें कौन स्त्री उत्तम है [श्यामा], दाँतोंको कौन ढँकता है [अधर] देवताओंने किसको प्राप्त किया था [सुधा], हे चञ्चल नेत्रोंवाली ! पित्त ज्वरसे बेचैन व्यक्ति क्या करके शान्ति प्राप्त करता है, यह कहो—**श्यामाधर सुधापानम्**—श्यामा स्त्रीके अमृतरूपी अधरका पान करके शान्ति पाता है ।[1]

---

1. व्यस्त समस्त जातिका यह उदाहरण है, यथा—

पृष्टं पदविभागेन समुदायेन यद् भवेत् ।
विदुर्व्यस्तसमस्तं तदुभयार्थप्रदर्शनात् ॥

गत्यर्थो वद कोऽस्ति धातुरबले ! संबोधयारिव्रजं
धीराणामपि मानसं हरति का किं रंगभूमौ भवेत् ।
पित्तव्याकुलितो नरः किमु विलोक्यास्ते सुखं कथ्यतां
पत्योक्तेति विचिन्त्य साऽवददिदं वाराङ्गनानर्त्तनम् ॥

हे अबले ! गति अर्थमें कौन धातु है [वा-गतिगन्धयोः], अरिका सम्बोधन क्या है [अरे], धीर व्यक्तियोंके मनको भी कौन हरती है—चञ्चल करती है [अंगना]; पित्तसे बेचैन व्यक्ति क्या देखकर सुख अनुभव करता है, [नर्तन-नृत्य], इस प्रकार पतिसे पूछी जाने पर स्त्रीने उत्तर दिया वा-अरे-अङ्गना-नर्त्तनम् वाराङ्गनाओंका नृत्य देखकर सुखी होता है ।[1]

---

१. यह अन्तोत्तर जातिका उदाहरण है, यथा—
यत् पृष्टं प्रश्नवाक्ये स्यादादिमध्यान्तसंस्थितम् ।
उत्तरं तत्त्रिधा प्रोक्तमादिमध्यान्तसंज्ञितम ॥

चित्रकाव्य

"पद्माद्याकारहेतुत्वे वर्णानां चित्रमुच्यते" —साहित्यदर्पण

शिशुपालवधमें माघने अपने काव्यमें कुछ चित्र काव्य दिये हैं। उन्हींकी तरह आयुर्वेदमें कुछ श्लोक यहाँपर उदाहरण रूपमें 'सिद्ध भैषज्य-मञ्जूषासे' उपस्थित किये गये हैं। यथा—

मुसलबन्ध-विन्यास

पिडकानुद्गमे मुक्ता मुक्ताख्ये श्लाघिता ज्वरे।
सेवासुमाम्भसामुक्ता मुक्तानां किन्तु पञ्चकम् ॥

पिडकानुद्गमे	मुक्ता	ख्येश्लाघिताज्वरे।
सेवासुमाम्भसा		नां किन्तुपञ्चकम् ॥

गोमूत्रिकाबन्ध

प्रतीते भोजनाजीर्णे संसेवध्वं शिवामृतम्।
प्रतीते भोजनाजीर्णे संसेवध्वं शिवामृतम् ॥
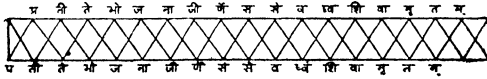
चक्रबन्धचित्रोद्धार

रसकगन्धककज्जलिकाभ्रकैः सकटुकत्रिककर्षफलैर्गुटी।
श्वसनकं कसनं च सुखोदकैः स्यति यथा हरहाटकपर्पटी ॥

—कास ३२।

चक्रबन्ध-विन्यास

रुजति चेन्नर ! रक्तसृतिर्यदि निपिब केसररम्यसुशर्करम् ।
भवजनिं यदि नेच्छसि चात्मनि श्रय तदा करुणाकरमीश्वरम् ॥
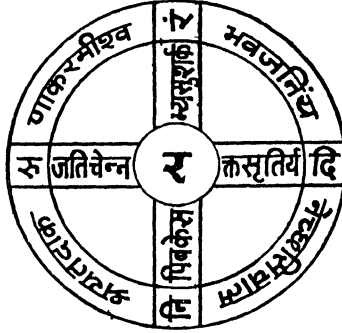
चक्रबन्ध-विन्यास

कल्ये 'काञ्चनपर्पटी' कवलिता चञ्चत्कणामाक्षिका
भद्रावीर्यकरीति शास्त्रवचने विश्वस्य मासं भज ।
दर्पं कुक्षिगदस्य हन्ति वमनातीसारशोषापहा
हानिं लोकमलौजसो विदधती कालीव भक्तार्त्तिहा ॥

ज्ञानपीठके सुरुचिपूर्ण हिन्दी प्रकाशन

श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय
शेरो-शायरी [द्वि० सं०] ८)
शेरो-सुखन [पाँचोंभाग] २०)
जैन-जागरणके अग्रदूत ५)
गहरे पानी पैठ २॥)
जिन खोजा तिन पाइयाँ २॥)

श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर
आकाशके तारे: धरतीके फूल २)
जिन्दगी मुसकराई ४)

श्री मुनि कान्तिसागर
खण्डहरोंका वैभव ६)
खोजकी पगडण्डियाँ ४)

डॉ० रामकुमार वर्मा
रजतरश्मि [नाटक] २॥)

श्री विष्णु प्रभाकर
संघर्षके बाद [कहानी] ३)

श्री राजेन्द्र यादव
खेल-खिलौने [कहानी] २॥)

श्री मधुकर
भारतीय विचारधारा २)

श्री रावी
पहला कहानीकार २॥)

श्री लक्ष्मीशंकर व्यास
चौलुक्य कुमारपाल ४)

श्री सम्पूर्णानन्द
हिन्दू विवाहमें कन्या-
दानका स्थान १)

श्री हरिवंशराय बच्चन
मिलनयामिनी [गीत] ४)

श्री अनूप शर्मा
वर्द्धमान [महाकाव्य] ६)

श्री रामगोविन्द त्रिवेदी
वैदिक साहित्य ६)

श्री नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य
भारतीय ज्योतिष ६)
हिन्दी-जैन-साहित्य परिशीलन २॥)

श्री नारायणप्रसाद जैन
ज्ञानगंगा [सूक्तियाँ] ६)

श्रीमती शान्ति एम० ए०
पञ्चप्रदीप [गीत] २)

श्री 'तन्मय' बुखारिया
मेरे बापू [कविता] २॥)

श्री बैजनाथ सिंह विनोद
द्विवेदी-पत्रावली २॥)

श्री भगवतशरण उपाध्याय
कालिदासका भारत [१-२] ८)

श्री गिरिजाकुमार माथुर
धूपके धान ३)

श्री सिद्धनाथकुमार एम० ए०
रेडियो नाट्य शिल्प २॥)

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
हमारे आराध्य ३)
संस्मरण ३)
रेखाचित्र ४)

प्रो० रामस्वरूप चतुर्वेदी
शरत्के नारीपात्र ४॥)

ज्ञानपीठके महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक प्रकाशन

पं० सुमेरचन्द्र दिवाकर

महाबन्ध [१] १२)
जैन शासन [द्वि० सं०] ३)

पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

महाबन्ध [२,३,४,५] ४४)
सर्वार्थसिद्धि १२)

पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

तत्त्वार्थवृत्ति १६)
तत्त्वार्थराजवार्तिक [१] १२)
न्यायविनिश्चय विवरण [भाग १-२] ३०)

पं० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य

आदिपुराण [भाग १] १०)
आदिपुराण [भाग २] १०)
उत्तरपुराण १०)
धर्मशर्माभ्युदय ३)

पं० हीरालाल शास्त्री न्यायतीर्थ

वसुनन्दि-श्रावकाचार ५)
जिनसहस्रनाम ४)

पं० राजकुमार जैन साहित्याचार्य

मदनपराजय ८)
अध्यात्म-पदावली ४॥)

पं० नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य

केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि ४)

पं० के० भुजबली शास्त्री

कन्नडप्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थसूची १३)

पं० हरिदामोदर वेलणकर

सभाष्य रत्नमंजूषा २)

पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी

नाममाला [सभाष्य] ३॥)

प्रो० ए० चक्रवर्ती

समयसार [अंग्रेजी] ८)
थिरुकुरल [तामिल लिपि] ५)

प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी

करलक्खण [द्वि० सं०] ॥)

श्री भिक्षु धर्मरक्षित

जातकट्ठकथा [पाली] ९)

श्री कामताप्रसाद जैन

हिन्दी जैनसाहित्यका संक्षिप्त इतिहास २॥।=)

श्रीमती रमारानी जैन

आधुनिक जैन कवि ३॥)

पं० गुलाबचन्द्र व्याकरणाचार्य

पुराणसारसंग्रह [भाग १-२] ४)

पं० शोभाचन्द्र भारिल्ल

कुन्दकुन्दाचार्यके तीन रत्न २)

श्री वीरेन्द्रकुमार एम० ए०

मुक्तिदूत [उपन्यास] ५)